श्री हरिषेणाचार्य-रचित

बृहत्कथाकोश

भाग २

अनुवादकर्ता—

श्री पं० राजकुमार शास्त्री साहित्याचार्य

प्रोफेसर दि० जैन कालेज बड़ौत (मेरठ)

प्रकाशक

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ

प्रकाशकीय

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन संघ अपने जन्म कालसे ही एक कार्यशील संस्था है। प्रारम्भमे इसका कार्य जैनधर्मपर किये जानेवाले आक्षेपोका निराकरण करके जनतामे फैले हुए अज्ञानको दूर करना मात्र था। इसके बाद इसी उद्देश्य-को लक्ष्यमे रखकर एक प्रचार विभागकी स्थापना की गई। आज भी इसके प्रचारक भारतवर्षके विभिन्न प्रदेशोमें पहुँचकर जनतामें फैले हुए अज्ञानको दूर करनेमे यथाशक्ति प्रयत्नशील है। तथा सघका मुख पत्र 'जैन सन्देश' प्रति सप्ताह सर्वत्र पहुँचकर इस कर्तव्यमे योगदान देनेमें सहायक होता है। मथुराके पास चौरासी नामक तीर्थक्षेत्रपर सघ भवनमे सस्थाका प्रधान कार्यालय तथा एक विशाल पुस्तकालय है, जिसमें प्रकाशित पुस्तकों और ग्रन्थोका अच्छा सग्रह है।

यत: इस सस्थाका प्रधान लक्ष जैनधर्मका प्रचार कार्य रहा है, अत इसके अन्तर्गत एक ट्रैक्ट विभाग प्रारम्भसे ही चालू था, जिसमें समयोपयोगी आवश्यक ट्रैक्टोका प्रकाशन होता था। सन् १९४१ मे प्रकाशन विभागको बढ़ानेका विचार हुआ और 'सघ ग्रन्थमाला' तथा 'सघ पुस्तकमाला' के नामसे दो मालाएँ चालू की गईं। संघ ग्रन्थमालाका प्रारम्भ सिद्धान्त ग्रन्थ श्री जयधवलजीके प्रकाशनसे हुआ। इसके दो खण्ड प्रकाशित हो चुके हे। पुस्तक मालामे अब तक ६ पुस्तकें प्रकाशित हुईं है, जिनमे 'जैनधर्म' नामकी पुस्तक उल्लेखनीय है। एक वर्ष-में ही इसके दो संस्करण प्रकाशित हो चुके है और दूसरा सस्करण भी समाप्त प्राय है।

इसी वर्षसे क्षुल्लक श्री निजानन्दजीके पूर्वनाम स्वामी कर्मानन्दके आधार पर एक 'स्वामी ग्रन्थमाला' प्रारम्भ की गई

है। इस ग्रन्थ मालामे स्वामीजीकी पुस्तके प्रकाशित हुआ करेंगी। इसकी प्रथम बृहत् पुस्तक 'ईश्वर मीमांसा' प्रकाशित हो गई है। अस्तु,

प्रस्तुत पुस्तक आचार्य हरिषेण रचित बृहत्कथाकोश-का दूसरा भाग है। इस भागमे कुल १८ कथाएं है। जिनमेसे कुछ कथाएं तो एक एक स्वतत्र चरित है। यथा, ५६ वी कथाम करकण्डु चरित आगया है, ६० वी कथामे सुदर्शन चरित आ गया है, ६३ वी कथासे पूरी सम्यक्त्व कौमुदीकी कथाए आगई है और ७३ वी कथामे यशोधर चरित आगया ह। सभी कथानक बहुत रोचक और उपदेशप्रद है। अतः मनोरजनके साथ ही साथ इनसे सत्शिक्षा भी मिलती है। आशा है पाठक इस दूसरे भागको विशेष पसन्द करेंगे।

जयधवला कार्यालय
भदैनी, बनारस

मंत्री
कैलाशचन्द्र शास्त्री,

कथा-सूची

बृहत्कथाकोश

द्वितीय भाग

५६. कर्कण्डु महाराजकी कथा

लङ्कानगरीमे रावणके वंशमे सूर्यप्रभ नामका समृद्धि सपन्न राजा रहता था। सूर्यप्रभकी पत्नीका नाम श्रीषेणा था, जो सौन्दर्यमें लक्ष्मीके समान सुन्दर थी।

एक समयकी बात है। सूर्यप्रभ राजा मनको अत्यन्त प्रिय लगनेवाले मलयदेशके मलयपर्वतपर पहुँचा। वहां मलयाचलके शिखरोपर विखरे हुए प्राकृतिक लावण्यको देखकर इसका मन बड़ा ही संतुष्ट और विस्मित हुआ। उसने अपने मनमें विचारा कि मै इन कूटोपर इस प्रकारके जिनालय वनवाऊं, जो अपनी स्वच्छ कान्तिसे आकाशके प्रदेशको सफेद करें और उनमे ऋषभ आदि जिनेन्द्र भगवानोकी प्रतिमाएँ विराजमान हो। इस प्रकार सोचकर सूर्यप्रभने मलयाचल पर्वतके शिखरोपर भव्य जिनालयोका निर्माण कराया और उनमें जिनभक्तिवश मणि-काञ्चन-निर्मित दिव्य प्रतिमाएँ विराजमान की, जैसा कि भरत चक्रवर्तीने कैलास पर्वतपर जिनायतन वनवाकर उनमे भव्य प्रतिमाएँ विराजमान की थी। उसके वाद सूर्यप्रभने विद्याधरोके साथ महामह पूजा की और पर्वतके चारो ओर खाई खुदवाकर अपने नगरको लौट आया।

विजयार्ध पर्वतकी उत्तरश्रेणीमे देवताओके विमानकी तरह गगनवल्लभ नामका नगर था। उस नगरमें समस्त

विद्याधरोंके अधिपति सुवेग और अमितवेग नामके दो भाई रहते थे। ये दोनों ही भाई सम्यग्दर्शनसे भूषित थे। दोनो ही भाई समस्त पर्वोमे प्रत्येक दिन कृत्रिमाकृत्रिम चैत्यालयोकी बन्दना करने जाते और पृथ्वीमे यथेच्छ विहार करते।

एक बार ये दोनो भाई विहार करते हुए मलयदेशके दक्षिण देशमे स्थित लङ्कापुरीके जिनमन्दिरोकी बन्दना करने आये और यहांकी बन्दनाके पश्चात् दक्षिण पथके मलयदेशमें चंदनके वृक्षोकी पक्तिसे अलकृत भूति पर्वतपर जिनबिम्बोकी बन्दना करनेके लिये गये। उस समय दोनो भाइयोके मनमे भक्तिका सागर उमड़ रहा था। भक्तहृदय दोनो भाई इस पर्वतपर विराजमान जिनबिम्बोके दर्शन करने लगे। इसी समय भगवान् पार्श्वनाथकी दिव्य और भव्य प्रतिमाको देखकर अमितवेगने अपने मनमे सोचा कि मै भी विजयार्धपर्वतपर एक जिनमन्दिर बनवाकर भगवान् पार्श्वनाथकी ऐसी ही प्रतिमा विराजमान करूँगा।

इस प्रकार अमितवेगने वहा कलिकुण्ड पार्श्वनाथकी प्रतिमा तैयार कराई और उसे लेकर अपने नगरकी ओर चल दिया। रास्तेमे वह एक स्थान पर ठहरा और वहाँ उसने एक गुफामे विराजमान करके प्रतिमाकी बडी भक्तिके साथ पूजा की। परन्तु जब वह वहाँसे चलने लगा तो वह प्रतिमा वहाँ ही अचल होकर रह गई। अमितवेगने जब यह देखा तो उसने पिटारेमें विराजमान प्रतिमाकी पूजा की और तेर नामके नगरमे आगया।

इस तेर नगरके समुन्नत सहस्रकूट चैत्यालयमे यमधर नामके स्थिरचित्त साधु ठहरे हुए थे। दोनो भाइयोने बड़ी विनयके साथ मुनिराजकी स्तुति की और उनसे भगवान पार्श्वनाथकी प्रतिमाका सब समाचार सुनाया। वे कहने लगे—मुनिराज, हमने पर्वतपर भगवान् पार्श्वनाथ स्वामीकी पूजा की, वहां पर एक इसी प्रकारकी प्रतिमा तैयार कराई, परन्तु जब हमलोग उसे

लेकर चले तो वह रास्तेके उस पर्वतपर ही अचल हो गइ । सा भगवन्, आप बतलाइए यह घटना किस निमित्त और प्रयोजन से घटी है ? हमे तो कुछ भी समझमे नही आरहा है ।

योगिराजने इन दोनोकी बात सुनी और कहने लगे—अमितवेग, तुम अगले भवमे स्वर्गमें उत्पन्न होगे और यह सुवेग विद्याधर भी पार्श्वनाथ भगवान्‌की पूजाको देखकर दूसरे भवमे निश्चितरूपसे जैनधर्म ग्रहण करेगा । इस प्रकार जब दोनो भाइयोने अपने अन्य भवकी बात सुनी तो दोनो भाई मुनिराजके निकट दीक्षित होकर साधु होगये ।

कुछ दिनोमे सुवेग मुनि परीषहोपर विजय प्राप्त न कर सकनेके कारण मिथ्यात्वी होगया और अन्त समयमे आर्तध्यान पूर्वक मरण करके उसी पर्वतके निकट भगवान् पार्श्वनाथकी पूजाके स्थान पर भयकर आकारधारी श्वेतवर्णका महान् हाथी हुआ । परन्तु महामुनि अमितवेगने घोर तपस्या की और उसके कारण वह स्वर्गमे दिव्य रूपधारी महर्द्धिक देव होगया और इसने पूर्वभवमे जो प्रतिमा (पार्श्वनाथ भगवान्‌की) विराजमान करनी चाही थी उसे लङ्कामे लाकर विराजमान कर दिया । जब निर्मल बुद्धिवाले कर्कण्डु महाराजने इस प्रतिमाके दर्शन किये तो उसने इसे नीचेकी गुफाके मध्यमे प्रतिष्ठित कर दिया ।

जिनागमके पारगामी और तत्त्वोके ज्ञाता आचार्य भव्य जीवोके लिए रुचिकर इस सम्बन्धकी कथा इस प्रकार भी कहते है—

इस बीचमे पूर्वभवके अमितवेगके जीवने, जो स्वर्गमे जाकर देव हुआ था, सोचा—मेरा छोटा भाई सुवेग विद्याधर, जो अत्यन्त दिव्यदेहधारी और गभीर बुद्धिशाली था, देखे तो मिथ्यात्वके कारण कहा उत्पन्न हुआ है ? अवधि ज्ञानसे उसे मालूम हुआ कि सुवेगका वह जीव भूति पर्वतके शिखरपर हिमालयकी तरह महान् शुक्लवर्णका हाथी हुआ है । इस बातका परिज्ञान होते ही वह देव

तुरन्त इस हाथीके पास आया और अपने पूर्वभवकी स्मृति दिलाकर उसे पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ग्रहण कराये। इसके सिवाय रात्रि भोजन, मद्य, मास और मधुके त्यागका उपदेश देकर उस देवने इस हाथीके जीवको सम्यक्त्व ग्रहण करा दिया। हाथीका जीव विचार करने लगा—देखो, मै कितना पापी हूँ, जिसने पूर्वजन्ममे सन्मार्गसे भ्रष्ट होकर पापोके कारण ही तिर्यञ्च गतिमें यह हाथीकी पर्याय पाई। मै इस पर्वतके भीषण जगलमे विचरता हुआ कहाँ जिन-पूजा और मुनिराजके दर्शनोका सौभाग्य प्राप्त करता? परन्तु मेरा सत्पुण्य, जो आज मुझे इस पर्वतपर दोनोका ही दर्शन हो रहा है।

जब पूर्वके अमितवेगके जीवने हाथीके हृदयमे वैराग्यकी धारा उमडती हुई देखी तो उसका मन भी स्नेहसे भर आया और वह कहने लगा—हाथीराज! देखो, इस पर्वतीय प्रदेशमे हम लोगोने पार्श्वनाथ भगवान्की जिस प्रतिमाको खोदा था वह अब भी वही पर विराजमान है। तुम निकटके सरोवरसे कमल लाकर बडी भक्तिके साथ त्रिकाल इस प्रतिमाकी पूजा बन्दना किया करो। जब कोई इस प्रतिमाको यहाँसे उठाकर अन्यत्र ले जायगा, तब तुम उस समय सब प्रकारके आहारको छोड़कर सल्लेखना स्वीकार कर लेना। अमितवेगके भूतपूर्व जीवने अपने पूर्वभवके बडे भाई हाथीके जीवको इस प्रकार उपदेश दिया और आप स्वर्गमे चला गया।

इधर यह हाथी प्रति दिन सरोवर जाता, वहांसे अपनी सूडके द्वारा कमल और एक विस्तृत कमलिनीके पत्रमें स्वच्छ मोती सा जल लाता और प्रतिदिन उस जलसे भगवान् पार्श्वनाथकी प्रतिमाका अभिषेक करता तथा कमलोसे उसकी पूजा किया करता। तथा अन्तमें तीन प्रदक्षिणा देकर और नमस्कार करके प्रसन्नताके साथ वनमें चला जाता।

भरतक्षेत्रके दक्षिण प्रदेशमे विजयार्ध नामका महान् पर्वत

है। इस पर्वतपर एक रथनुपुर नामका नगर है, जो अपनी समृद्धि-से कुबेरकी अलका नगरीको भी जीतनेकी इच्छा करता है।

इस नगरमे नील और महानील नामके दो विद्याधर भाई रहते थे। एक बार इन दोनो भाइयोका कुछ अन्य महान् पराक्रमी और विद्या-बलमे बढे-चढ़े विद्याधर कुमारोके साथ युद्ध छिड गया। इस युद्धमें उन विद्याधर कुमारोने इन दोनो भाइयोको हरा दिया और इनकी विद्याओको छीनकर इन्हे अपने नगर-से निकाल दिया।

दोनो भाइयोने सोचा कि हमलोग धाराशिव नामके पर्वत पर चले। वहाँ स्थापित जिन-प्रतिमाके दर्शन करनेसे हमारी सभी विद्याय फिरसे सिद्ध होजावेगी और तब हमलोग अपने शत्रुओंको परास्त कर सकेंगे। यह सोचकर वे दोनो भाई आभीर देशके तेर नगरकी ओर चल दिये। और इस देशके समस्त राजाओको अपने वशमें करते हुए इस तेर नगरसे भी विदा होगये। तेर नगरसे विदा होकर दोनो भाइयोने इस नगरके दक्षिणकी ओर तीन कोस रास्ता पार किया और फिर भीषण जगलमे प्रवेश कर गये।

इस भीषण वनमें धार और शिव नामके महान् बलवान् समस्त भीलोके अधिपति निवास करते थे। जब इन भिल्ल राजाओने नील और महानीलको अपने यहा आये हुए देखा तो ये दोनो ही राजा इन भाइयोके प्रति बड़े नम्र हुए और खूब धन सम्पत्ति देकर इनका बडा आदर किया।

एक समयकी वात है। सभा लगी हुई थी और उसमे सब लोग उपस्थित थे। उस समय नीलने इन भिल्ल राजाओसे प्रश्न किया कि आप लोग यह बतलाइए कि शूरवीरोके मनमे भी भय-उत्पन्न करने-वाले इस वनमे विहार करते हुए आप लोगोने विद्वानोको भी विस्मयमें डाल देने वाला कोई आश्चर्य तो नही देखा है? नीलकुमारका यह प्रश्न सुनकर धार राजा प्रस-

न्नता और उल्लासके साथ नीलसे बोला—कुमार, हमलोगोने इस वनमें एक अतिशय अवश्य देखा है। वह यह कि इस जगलमें एक महान् शुक्लवर्णका हाथी रहता है। यह हाथी प्रतिदिन निकटके सरोवरसे कमल और जल लाकर जलसे तो अपने आराध्यका अभिषेक करता है और फूलोसे उसकी पूजा करता है। इसके पश्चात् तीन प्रदक्षिणा करके और उसे नमस्कार करके वह मन्द मन्द गतिसे वनमे चला जाता है। इस हाथी को हमलोगोने अनक बार देखा है।

धारकी यह बात सुनकर नील और महानीलने इन दोनो भील राजाओको अपने साथ लेलिया और बनमे एक वामीके पास उस महान् हाथीको देखा। उन लोगोने देखा कि वह हाथी उस समय भी जलसे वामीका अभिषेक कर रहा है और सूण्डमे लिए हुए कमलोसे बडी भक्तिके साथ उसकी पूजन कर रहा है। इसके सिवाय तीन प्रदक्षिणा देकर और पृथिवीपर अपना मस्तक टेककर वह नमस्कार भी कर रहा है। इस प्रकार वामीके सामने बैठे हुए और अपनी सफेदीसे आकाशको शुक्ल करने वाले हाथीको देखकर नील और महानील नामके दोनो भाई वही ठहर गये।

इस प्रकार उस वामीके निकट ठहरे हुए और उपवास करते हुए इन लोगोको ६ दिन व्यतीत हो गये। जब उस स्थानमे रहने वाले देवताने इन भाइयोकी यह भवित देखी तो वह बडा प्रसन्न हुआ और वह अपना रूप दिखाकर इन लोगोंसे कहने लगा—"अरे मनस्वी वत्स, आप लोग इस वामी-के सामने इतने दिनसे किस प्रयोजन-वश उपवास पूर्वक बैठे हुए है? आप लोग अपने मनकी बात बतलाइये।"

देवताकी बात सुनकर दोनों भाई कहने लगे—"भद्र! हम लोग अपने पूर्वपदकी प्राप्तिकी आशामे ही यहा जमे हुए है।" देवताने इन लोगोकी बात सुनी तो वह स्पष्ट

वाणीमे कहने लगा—"भद्रो, आप लोग हमारी सत्य और और सुखकर बातको सुनिए। यहा पर भगवान पार्श्वनाथ-की एक खोदी हुई प्रतिमा विद्यमान है। यह बिलकुल सत्य बात है। अब आप लोग जो चाहे सो करे।"

देवताकी बातके अनुसार नील और महानीलने भगवान् की वह प्रतिमा उखाडी और उसे सहस्र स्तम्भ वाली गुफामे विराजमान कर दिया। इसके पश्चात् दोनो भाइयोने फाल्गुन-की अष्टाह्निकाके महापर्वके सुअवसरपर महामह पूजा की। उनकी विद्याएँ सिद्ध हो गईं और दोनो अपने नगरमें आ गये।

किन्ही आचार्योका यह मत है कि महाराज करकण्डुने वामीसे इस प्रतिमाको निकाला और उन्होने ही इसे सहस्र स्तम्भ वाली गुफामे विराजमान किया। यह मत भी एक आचार्य-परम्परासे चला आ रहा है इसलिए इसे भी मिथ्या नही कहा जा सकता। अस्तु।

जब उस हाथीने देखा कि यहाकी प्रतिमा उखाड ली गई है तो उसने हस्तिकूट गिरिपर बडी श्रद्धा-भक्तिके साथ सल्लेखना लेली और आयुके अन्तमे वह अनेक प्रकारके वादि-त्रोंकी ध्वनिसे मुखरित माहेन्द्र नामके स्वर्गमे हार और कुण्डल आदि आभूषणोसे भूषित महर्द्धिक देव हो गया।

एक समयकी बात है। तेरपुरमें धनमित्र नामका सेठ रहता था। धनमित्रकी पत्नीका नाम धनमति था, जो बड़ी ही रूप-वती थी। इस सेठके यहा गोधनका पालन-पोषण करने वाला एक धनदत्त नामका ग्वाला रहता था।

एक दिनकी बात है। धनदत्त गायोको लेकर मधुर मधुर गाता हुआ नदी और सरोवरोसे सम्पन्न एक घासवाली तराईमे जा पहुचा। वहा उसने जलसे लहराता हुआ और कमलोसे खिला हुआ एक सुन्दर सरोवर देखा। उसके प्रसन्न

और सुगन्धित कमलोंको देखकर उसका जी ललचा गया और उसके मनमे आया कि एक कमल तो तोड़ ही लूँ ।

इस पद्म-पूर्ण सरोवरकी एक देवता रक्षा किया करता था। फलत. अच्छा शूरवीर और बलवान् भी इस सरोवर-मे प्रवेश नही कर पाता था। परन्तु ज्यो ही धनदत्तने इस सरो-वरमे प्रवेश करके एक कमल, जो अपनी सुगन्धसे दिशाओं-को सुवासित कर रहा था, तोडा, उस सरोवरके सरक्षक नाग देवताको बालकके इस भोलेपनपर रोष और सतोष दोनों हुए । वह धनदत्तसे कहने लगा–"बालक, देखो, तुमने जो यह कमल तोड़ा है, उससे तुम सम्पूर्ण ससारमे प्रधान देवोके देवकी बडी तत्परताके साथ भक्ति करना । यदि तुमने मेरी इस सुख-कर बातका भी पालन नही किया तो याद रखना कि इस अपराधकी तुम्हे मेरे हाथसे कडी सजा मिलेगी ।

धनदत्त इस सुगन्धित और खिले हुए कमलको साथ लेकर नगरमे आ गया और देवताकी बातके निर्वाहके लिए बडे विस्मयके साथ इस प्रकार सोचने लगा–"हमारे सेठ धनमित्र सब लोगोमे महान् है, सबके स्वामी है और सभी लोग प्रसन्न हृदयसे उनकी स्तुति करते है। इसलिए मुझे उनके पास पहुंचकर उन्हीकी पाद-पूजा करनी चाहिए।" यह सोचकर हाथमे कमल लिए हुए वह सेठ जीके सामने जा पहुँचा । जब धनमित्रने धनदत्तको हाथमे कमल लेकर बडी विनयके साथ अपने सामने उपस्थित देखा तो वह कहने लगा–"पुत्र, तुम यह कमल हाथमें लेकर क्या कार्य करनेको तैयार हो रहे हो ?"

सेठजीकी बात सुनकर धनदत्त कहने लगा–"सेठजी ! आप सब लोगोमे महान् है और बडे-बडे साधु-सन्त आपका आदर करते है। इसलिए सबलोगोके मनको प्रिय लगनेवाले हे सेठजी! मै इस कमलसे आपके चरणोकी पूजा करना चाहता हू ।" जब धनमित्रने धनदत्तकी यह बात सुनी तो वह कहने लगा–"वत्स,

हमारा स्वामी नील है, जिसे सभी सज्जन पूजते है । इसलिए चलो हम और तुम दोनो ही जल्दीसे उनकी सेवामे पहुचकर इस कमलसे उनकी ही पाद-पूजा करे ।"

इस प्रकार दोनो नील महाराजके पास पहुचे और धनदत्त नीलसे प्रार्थना करने लगा—"महाराज, आप सब लोगोके गुरु है, श्रीमान् है और सब लोग आपको नमस्कार करते है । आपने समस्त शत्रुओको अपने अधीन कर लिया है और आप सम्पूर्ण जनताके स्नेह भाजन है । इसलिए मै इस कमलसे आपके चरण कमलकी पूजा करना चाहता हू ।"

जब जिनभक्तिपरायण नीलने धनदत्तकी विनयपूर्ण बात सुनी तो वह धनदत्तसे कहने लगा—"वत्स, मै न तो सब लोगोका गुरु हू और न समस्त जनोका पूज्य ही । इसलिये तुम इस कमलसे सम्पूर्ण प्राणियोका हित करने वाले मुनिराजकी पूजा करो ।"

नील विद्याधरकी बात सुनकर धनदत्त मुनिराजके निकट पहुंचा और उनसे कहने लगा—"भगवन् ! आप सबके गुरु है । इसलिए मै इस कमलसे आपके चरणोकी पूजा करना चाहता हू ।" मुनिराजने धनदत्तकी यह भोली बात सुनी और कहने लगे—"भाई, मै सबका महान् गुरु नही हू । त्रिलोकके जीवोके गुरु तो जिनेंद्र भगवान् है, जो अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लक्ष्मी-से सुशोभित है, तीन छत्रसे विराजित है, सिहासनपर विरा-जमान है और सुर तथा असुर जिनकी पूजा करते है । इसलिए वत्स, तुम इन्द्रोद्वारा पूज्य और वन्द्य इन्ही त्रिलोकीनाथ जिनेन्द्रदेवकी इस कमलसे भक्तिभावके साथ पूजा करो ।"

मुनिराजकी बात सुनकर धनदत्तने इस एक कमलसे जिनेन्द्र भगवान्‌के चरण-कमलकी बडी भक्तिके साथ पूजा की । और पूजाके अन्तमे बडी विनयके साथ जिनेन्द्र

भगवान्को नमस्कार करके वह धनमित्रके साथ सहर्ष घर चला आया।

भरत क्षेत्रमे श्रावस्ती नामकी उत्तम नगरी थी। श्रावस्ती धन धान्यसे इतनी समृद्ध थी कि कुबेरकी नगरी जैसे मालूम देती थी। इस नगरीमे नागदत्त नामका एक धनी सेठ रहता था। इसकी पत्नीका नाम नागदत्ता था। नागदत्ता नागकुमारी-की तरह मनोहर और मृदुभाषिणी थी। नागदत्तके घरपर एक ब्राह्मण रहता था, जो नागदत्ताके साथ कुकर्म किया करता था। जब नागदत्तको नागदत्ताके इस दुष्टाचरणका पता लगा तो वह विरक्त होकर सागरसेन मुनिराजके निकट दीक्षा लेकर तप करने लगा। नागदत्तने इतनी कठोर तपस्या की जो सामान्य मनुष्योंसे दुष्कर थी और अन्तमें वह इस तपस्याके प्रभावसे स्वर्गमें मनोहर देव हो गया।

पूर्वभवके नागदत्तका यह जीव स्वर्गसे चय कर चम्पा नगरीके वसुपालकी वसुमती पत्नीके पुत्र हुआ। इसका नाम दन्तिवाहन रक्खा गया। यह कला और विज्ञानमे पारंगत था तथा शरीरसे इतना सुन्दर था कि मूर्तिमान् कामदेवके समान प्रतीत होता था। उधर वह ब्राह्मण बहुत समय तक नागदत्ता के साथ सानन्द समय बिताता रहा। परन्तु, खेद कि एक दिन कालने इसे कथाशेष कर दिया। नीतिकारोने ठीक ही कहा है कि "काल बड़ा बलवान् है।" इसके बाद ससारमें परि भ्रमण करके इस ब्राह्मणका जीव कलिङ्ग नामके महान् देशकी दन्तिपुर नामकी अटवीमे नर्मदातिलक नामका हाथी हो गया। एक बार किसी व्यक्तिने इस हाथीको देखा और अपने गौरवका ध्यान रखते हुए दन्तिवाहन राजाके लिए यह हाथी भेटस्वरूप समर्पित कर दिया।

इधर ताम्रलिप्त नामके नगरमे धनदत्त नामका धनी सेठ रहता था। इसकी पत्नीका नाम नागदत्ता था। नागदत्ता

बहुत ही मधुरभाषिणी थी। श्रावस्ती नगरीके नागदत्तकी पत्नी नागदत्ताका जीव चिरकाल तक ससार परिभ्रमण करके इन दोनोके यहाँ धनमती पुत्रीके रूपमे जन्मा।

तथा नालन्दानगरमे धनदत्त नामका धनी सेठ रहता था, जो बडी ही भक्त प्रकृतिका था। इसकी पत्नीका नाम धनमित्रा था। धनमित्रा अत्यन्त सुन्दर और रूपवती थी। दोनोके हृदय खूब ही पारस्परिक प्रेमसे आसक्त रहते थे। इन दोनोके एक धनपाल नामका पुत्र था। धनपाल बडा ही रूपवान् और विनीत था। बाल सूर्यके समान कान्तिमान् और बुद्धिमान् इस धनपालके साथ धनदत्त और नागदत्ताने अपनी परम स्नेहभाजन पुत्री धनमतीका विवाह कर दिया।

धनमतीकी एक बहिन और थी, जिसका नाम धनश्री था। धनश्रीकी कान्ति श्रीके समान थी, सुन्दरतामे वह रतिके सदृश थी और उसकी वाणी कोकिलाकी तरह मीठी थी।

परच, वत्सकावती देशमे कौशाम्बी नामकी सुप्रसिद्ध नगरी थी। इस नगरीका राजा वसुपाल था और रानी वसुमती। वसुपालके नगरसेठका नाम वसुदत्त था। वसुदत्त बडा ही जिन-भक्त था। धनमतीकी बहिन धनश्रीका विवाह इसी राज-सेठ वसुदत्तके साथ उसके माता पिताने कर दिया और यह भी वसुदत्तके ससर्गसे जिन भगवान्की भक्त श्राविका बन गई।

कुछ दिनोके पश्चात् वसुदत्तका स्वर्गवास हो गया। जब यह समाचार धनश्री की माता नागदत्ताको मिला तो वह बहुत शोकातुर हुई और पुत्रीको सान्त्वना देनेके लिए कौशाम्बीमें जा पहुँची। जब धनश्रीने अपनी माताको सामने उपस्थित देखा तो उसका मातृस्नेह उमड पडा और वह उठ कर माताके साथ बडे जोरसे चिपट गई और खूब रोने लगी। जब रोना धोना बन्द हुआ, तो दोनोंने परस्परके सुख दुखके

समाचार पूछे और इस प्रकार नागदत्ता पुत्रीके प्रेमवश बहुत दिनो तक धनश्रीके पास ही रही आई ।

एक दिन धनश्रीने देखा कि माताका मुख कमल शोकके कारण मुरझाता जा रहा है तो वह माँको मुनिराजके पास ले गई । मुनिराजने नागदत्ताको समझाया और रात्रि भोजन न करनेका उसे व्रत दिया । नागदत्ताने मुनिराजके द्वारा दिये गये व्रतको स्वीकार किया और फिर अपनी दूसरी कन्या धनमतीके पास नालन्दानगर चली गई ।

जब नागदत्ता धनमती पुत्रीके यहा आगई तो पुत्रीके ससर्गके कारण यहा उसने रातमे भोजन कर लिया और फिर कौशाम्बी नगरीमे भी इसने रात्रि भोजन किया । इस प्रकार तीन बार इसने रात्रि भोजन त्याग व्रतका भङ्ग किया । फिर चौथी बार कौशाम्बी नगरीमे रहने वाली अपनी कनिष्ठा कन्या धनश्रीके पास यह पहुची और वहाँ रहते रहते एक दिन इसकी मृत्यु होगई, और अपने शुभ-अशुभ कर्मोंके कारण कौशाम्बी नगरीके राजा वसुपालकी वसुमती नामको पत्नीके गर्भमे कन्या रूपसे आगई । ज्यो ही नागदत्ताका जीव वसुमतीके गर्भमे आया वसुमतीको अत्यन्त दुखद श्वास, कास आदिक रोगोने आघेरा और ज्यो ही इसका जन्म हुआ, रानीको इसके प्रति बडा विराग हुआ । इसलिए वसुमतीने इसके लिए एक सुन्दर अंगूठी बनवाई और उसमे यह लेख अङ्कित करा दिया कि यह कौशाम्बीके राजा वसुपालकी वसुमती पत्नीकी पुत्री है । यदि किसी बलवान् पूर्व पुण्यके कारण यह बच जावे और किसीको मिले तो वह इसे कृपापूर्वक पालित-पोषित करे । इस प्रकार इस अंगूठी और एक रत्नकम्बलके साथ इस कन्याको एक पिटारीमें बन्द कराकर रानीने इसे यमुना नदीके प्रवाहमे बहा दिया । वह पिटारी यमुनाके वेगवान प्रवाहके कारण तैरती हुई प्रयाग मे जाकर गङ्गाकी धारामे मिल गई ।

परच, अङ्ग नामके महादेशमें चम्पा नामकी नगरी थी। इस नगरीका राजा दन्तिवाहन था और इसकी पत्नी का नाम वसुमित्रा।

इधर चम्पापुरीके निकट एक कुसुमपुर नामका नगर था। इस नगरमें कुन्ददन्त नामका कच्छिक (मालाकार) रहता था और इसकी पत्नीका नाम कुमुददन्तिका था। कुन्ददन्त नगर से वाहर निकला ही था कि उसे प्रभातके समय गङ्गामें बहती हुई वह पिटारी दिखलाई दी। उसने पिटारी पकड ली और जैसे ही पिटारी खोली, उसमें एक बालिका रक्खी हुई दिखलाई दी। कुन्ददन्त यह देखकर बडा प्रसन्न हुआ। वह इस पिटारी तथा इसके अन्दर रक्खी हुई सुकुमार बालिकाको लेकर अपनी पत्नीके पास आया और उसे अपनी पत्नीके हाथोंमे देकर कहने लगा—"लो, आजसे तुम इसे अपनी पुत्री समझना।" कुमुददन्ताने दूध आदिसे बालिकाका पालन-पोषण करके उसे बढाया और उसका नाम पद्मावती रख दिया।

पद्मावती अवस्थाके क्रमसे यौवनके द्वारपर आ पहुँची। उसका यौवन कामियोंके मनको पीडित करने लगा और वह अपने पुष्ट तथा उन्नत कुचयुगलसे अत्यन्त सुन्दर मालूम देने लगी।

एक बार दन्तिवाहन राजाने इसे देखा तो देखते ही यह कामके वाणोसे आहत होकर सोचने लगा—यह किसकी पुत्री है? उस समय राजाके मनोभावको समझ कर किसीने बतलाया कि राजन् यह एक मालाकारकी कन्या है। राजाने मालाकारसे पद्मावतीकी याचना की और उसके साथ विधिवत् विवाह कर लिया। दन्तिवाहन राजाका मन पद्मावतीके रूप पर इतना आसक्त हुआ कि इसने कलावती पद्मावतीको महादेवी बना दिया।

एक बार राजाने कुन्ददन्तसे पद्मावतीके सम्बन्धमे विशेष

पूछताछ की तो उसने पिटारीके मिलनेका वह सब वृत्तान्त राजाको सुना दिया और बतलाया कि यह कौशाम्बीके राजा वसुपालकी वसुमती नामक रानीकी कन्या है। कुन्ददन्त कहने लगा—राजन्, इसके नामकी एक रत्ननिर्मित अँगूठी और रत्न-कम्बल तथा एक पिटारी हैं, जो सब आपकी सेवामे उपस्थित हैं। यह कर उसने उन वस्तुओको भी राजाके सामने रख दिया। इन सब चीजोको देखकर पद्मावतीके सम्बन्धमे सभी लोगोंको ठीक प्रत्यय हो गया।

इस प्रकार रूप और यौवनसे सम्पन्न दन्तिवाहन राजा पद्मावतीके साथ उत्तम भोगोको भोगता हुआ काल यापन कर रहा था कि इतनेमे वह गोपालकका जीव जिसने कमल-से जिनेन्द्र भगवान्की पूजा की थी, स्वर्गसे चय कर पद्मावती-के गर्भमे आगया। इस समय पद्मावतीके मनमे एक दोहला उत्पन्न हुआ, परन्तु उसकी पूर्ति न हो सकनेके कारण वह दिन प्रतिदिन दुर्बल रहने लगी।

जब राजाने पद्मावतीके दुर्बल शरीरको देखा तो वह उससे कहने लगा—"मेरे हृदय और नेत्रोंको आनन्द देने वाली तथा मेरे जीवनकी आधार प्रिये, तुम यह बताओ कि तुम्हारा शरीर दुर्बल क्यो होता जा रहा है?"

पतिदेवकी बात सुनकर पद्मावती कहने लगी—"प्राणनाथ! जबसे हमारे गर्भमे यह जीव आया है तबसे मेरे मनमे एक इस प्रकारका दोहला उत्पन्न हो रहा है कि मैं मनुष्यका वेष धारण करके नर्मदा तिलक नामके उन्नत हाथीपर आपके साथ सवारी करूँ और जिस समय मेघ मन्द मन्द गर्जनापूर्वक नन्ही नन्ही बूद गिरा रहे हो, चम्पापुरीकी प्रदक्षिणा करूँ।

जब राजाने पद्मावतीका यह दोहला सुना तो उसने अपने मनष्योके द्वारा नर्मदा तिलक हाथीको बुलाकर उसे झूल आदि-से मण्डित कराया और सोलह प्रकारके आभूषणो से भूषित

पद्मावतीको पुरुषके वेषमे सज्जित कर दिया । इस तरह सब प्रकारकी तैयारीके पश्चात् दन्तिवाहन भूपतिने रानीको मदोन्मत्त हाथीके आगे बिठलाया और स्वय उसके पीछे बैठ गया तथा नगरकी प्रदक्षिणा करने लगा ।

पद्मावती और दन्तिवाहन महाराज इसतरह नगरकी प्रदक्षिणा कर ही रहे थे कि इतनेमे राजाका प्रियमित्र वायुवेग नामका एक विद्याधर जो सोलह प्रकारके आभूषणोसे सुशोभित और अत्यन्त रूपवान था, वायुके वेगकी तरह तीव्रगतिसे वहाँ आया । उसने अपनी विद्याके बलसे आकाशमे गर्जना करता हुआ एक मेघ तैयार कर दिया और उसमें इन्द्र धनुषकी शोभासे चित्र विचित्र रग भर दिये । उस समय उस विद्याधरने ऐसा वातावरण प्रस्तुत कर दिया कि सुगन्धित जलकी एक एक बूंदके रूपमे वृष्टि होने लगी और मन्द-मन्द वायु बहने लगी ।

इधर नर्मदातिलक हाथीने ज्यो ही आकाशमे छाये हुए और जलकण बरसाते हुए मेघको देखा और दिशाओको सुगन्धित करने वाली सुगन्धित वायुको सूघा तो उसे अपने चिरवसित और वृक्षमालासे अलकृत विन्ध्याचलके शल्लकी वनकी स्मृति हो उठी और तब यह बलवान् हाथी जनसमूहके देखते देखते ही नगरसे अटवीकी ओर चल दिया ।

जब हाथी उत्तरोत्तार अधिक वेगसे दौडने लगा तो पद्मावती अपने पतिदेव दन्तिवाहनसे कहने लगी—"नाथ, देखो, मेरे द्वारा आपके ऊपर भी यह घोर सकट आ पड़ा । इस समय कदाचित् हमारे साथ आपकी जीवन लीला भी समाप्त हो गई तो समस्त पृथ्वी ही नष्ट हो जायगी । इसलिए आप किसी निकटवर्ती वृक्षकी शाखाको पकड़कर पर्वतके समान इस उन्नत हाथीसे शीघ्र ही उतर जाइए । मैं अपने कर्मोके फलसे प्राप्त हुए दु खोके भारसे दैवके भरोसे हाथीके साथ ही जाऊँगी ।"

राजाने पद्मावतीकी बातको आदरके साथ सुना और वह

मार्गमे आए हुए एक वृक्षकी शाखाको पकडकर, हाथीपरसे उतर पडा। राजाका मन बडा दु खी था और चित्त पद्मावती-की ओर ही लगा हुआ था। फिर भी वह पद्मावतीके गुणों-का स्मरण करता हुआ अपने घर आ गया।

उधर नर्मदातिलक हाथी पद्मावतीको अपनी पीठपर विठाये हुए कलिङ्ग देशके दन्तिपुरके जगलमे जा पहुचा। वहाँ पहुंचकर उसने एक ऐसे सरोवरमे प्रवेश किया जो अनेक प्रकारके पद्मोसे पूर्ण था, हंस और सारसकी बोलियोसे शब्दा-यमान था, और समुद्रकी तरह विशाल लहरोसे लहरा रहा था। ज्यो ही हाथीने इस सरोवरमे प्रवेश किया, पद्मावती उसके ऊपरसे जलमें कूद पडी और पानीसे वाहर निकलकर स्थलपर आ गई। वहा वह सरोवरके तटपर स्थित वटवृक्षके नीचे खडी हो गई और चारों ओर देखने लगी। उस समय वह ऐसी मालूम देती थी जैसे साक्षात् जलदेवी हो। हाथीने भी केवल क्षण भर तक सरोवरमे गोता लगाया और तुरन्त ही वहासे निकलकर अपने इच्छित स्थानकी ओर चल दिया।

इस बीच दन्तिपुरका शतभट नामका सुजन मालाकार उस सरोवर पर पहुचा और उसे पद्मावती दिखलाई पडी। उसे देखकर शतभटको ऐसा मालूम दिया जैसे रूप और यौवन-से मण्डित वनदेवी खडी हो। उसने पद्मावतीसे सब वृत्तान्त पूछा और बहिनके स्नेहवश वह उसे अपने घर ले गया। पद्मा-वती इस प्रकार दन्तिपुरके शतभटके मकानमे ही प्रसन्नता पूर्वक रहने लगी।

एक समयकी बात है। शतभट मालाकार धन-प्राप्तिकी इच्छासे फूल लेकर एक दूसरे गाँवमे बेचने पहुचा। वह लौटकर घर नहीं आ पाया कि इतनेमे उसकी विपरीत मनोवृत्तिवाली पत्नीने उस साध्वीको प्रसवकालके निकट रहने पर भी घरसे बाहर निकाल दिया। अत पद्मावती यहाँसे चलकर दन्ति

पुरके निकटवर्ती अनेक प्रकारके वृक्षो से सघन, महाभयंकर घोर श्मशान भूमिमे जा पहुची और उसने रौरव श्मशान भूमिमे ही एक माङ्गलिक पुत्रको जन्म दिया जो समस्त शुभ लक्षणोसे सम्पन्न था और जिसका अङ्ग प्रत्यङ्ग सौन्दर्यसे निखर रहा था। बाल सूर्यके समान कान्तिमान् पुत्रको देखकर पद्मावतीको सतोष हुआ, परन्तु अपनी दयनीय दशाको देखकर उसका मन बडा ही शोकाकुल और दुखित हुआ।

इस समय ही वहां एक बालदेव नामका विद्याधर मातङ्ग के रूपमें चिताकी रक्षा करता हुआ उपस्थित था। पद्मावती को देखकर यह विनयसे नम्र हो गया और उससे बोला—भगवती, आप मेरे वृत्तान्तको एक चित्त होकर सुनिए। यहकर वह निम्नलिखित कथानक सुनाने लगा——

"जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमे विजयार्ध नामका एक उन्नत पर्वत है। इस पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमे एक विद्युत्प्रभ नामका नगर था, जो मणि-निर्मित प्रासादोसे मण्डित था और जिसमे अनेक विद्याधर निवास किया करते थे। इस नगरके राजाका नाम विद्युत्प्रभ था, जो समस्त विद्याधरोका अधिपति था। इसकी महादेवीका नाम विद्युल्लेखा था जो बडी ही सुन्दरी थी। मै इन दोनोका पुत्र हूँ और बालदेव मेरा नाम है। मेरी पत्नीका नाम हेममाला है। मै दक्षिण दिशामें इसके साथ घूम कर अभी ही वापिस आया हू।

परच, कलिङ्ग और आन्ध्रदेशकी सीमाकी सधिमे अपने शिखरोसे आकाशको छूता हुआ रामगिरि नामका एक पर्वत है। जब वृक्षोकी आवलीसे मण्डित पर्वतके ऊपर होकर मेरा इच्छानुसार गमन करने वाला विमान अचानक एक दम रुक गया तो—भद्रे, मैने तुरन्त ही विमानके रुकनेके कारणको जाननेके लिए दिशाओमे इधर-उधर देखना शुरू किया। परन्तु जब कोई कारण दृष्टिगोचर नही हुआ तो मेरे मनमें बड़ा सभ्रम

हुआ। इसके पश्चात् जब मैने नीचेकी ओर दृष्टि डाली तो मुझे समस्त प्राणियोपर अनुकम्पा करनेवाले निर्दोष मुनिराज दिखलाई दिए। यह मुनिराज ध्यानस्थित थे और मुझे वे इस रूपमे दिखलाई दिए जैसे ध्यानके साक्षात् पर्वत हो या मूर्तिमान धर्म हो। मै इस पर्वतपर अपनी पत्नीके साथ क्रीडा करनेकी भावनासे बहुत तेज गतिसे आकाश मार्गसे जा रहा था। जब सहसा मेरा विमान रुक गया और मुझे मालूम हुआ कि मुनिराजके प्रभावके कारण ही मेरा विमान रुक गया है तो मुझे बडा क्रोध आया। मेरा हृदय पत्थरकी तरह कठोर हो गया और मैने मुनिराजपर उपसर्ग करना प्रारभ कर दिया।

मेरे दुसह उपसर्गके कारण मुनिराजको भी क्रोध हो आया। उनका हृदय प्रतिशोधकी भावनासे भर गया और उन्होने क्रोधके आवेशमे मुझे शाप दे डाला—"अरे, पापी, दुराचारी और अधर्म हृदय, इस असह्य और अमानुषिक उपसर्गके कारण मै तुम्हे शाप देता हू कि इसी क्षण तुम्हारी समस्त विद्याये विलीन हो जावे।"

मुनिराजके मुँहसे इस शाप-वाक्यके निकलते ही मेरी समस्त विद्याये तत्काल ही विलीन हो गई। जब मैने अपने आपको विद्याओसे बिल्कुल ही शून्य पाया तो मेरा मन दीन हुआ और मै योगिराजकी सेवामे निवेदन करने लगा—"समस्त प्राणियोको आनन्द देने वाले और सम्पूर्ण जीवोंपर अनुकम्पा रखने वाले भगवन्! यह बतलानेकी कृपा कीजिए कि अब मुझ अधर्मीका यह शाप किस प्रकार दूर होगा"?

योगिराजने मेरी प्रार्थना सुनी और उनका मन करुणासे द्रवित हो उठा। वे अपने दिव्यज्ञानके बलसे मुझसे इस प्रकार कहने लगे—

"अङ्ग नामके महान् देशमे चम्पा नामकी नगरी है।

वहाँके राजाका नाम दन्तिवाहन है और रानीका नाम पद्मा-वती। नर्मदातिलक नामका हाथी इस गर्भिणी पद्मावतीको अपनी पीठपर बिठाये चम्पानगरीसे भाग दिया और इसे समृद्धि-सम्पन्न कलिङ्ग देशके दन्तिपुरमे ले आया।

इस नगरका राजा बलवाहन है और पत्नीका नाम बलवाहना। बलवाहना बडी ही सुन्दर और विनीत है। यह राजा अपने भूखण्डसे सम्पन्न है, चतुरङ्ग सेनासे अलकृत है और बहुत ही धनवान् है, परन्तु इसके पुत्र एक भी नही है। इसी दन्तिपुर नगरमें एक शतभट नामका मालाकार रहता है। इसकी पत्नीका नाम मारिदत्ता है जो बहुत ही क्रूर और कठोर हृदयकी है।

नर्मदातिलक नामका हाथी उस गर्भिणी पद्मावतीको इसी दन्तिपुरकी अटवीमे ले आया और वहाँ यह उस मालाकार-को दिखलाई दी। वह मालाकार पद्मावतीको बहिन मानकर बडे आदरके साथ उसे अपने घर ले आया। परन्तु मालाकार-की अनुपस्थितिमें उसकी पत्नी पद्मावतीको प्रसवके ऐन मौके-पर घरसे बाहर निकाल देगी। पद्मावती वहाके भयकर श्मशान मे पहुचकर समस्त शुभ लक्षणोसे सम्पन्न एक पुत्रको जन्म देगी। इस कुमारका शरीर अत्यन्त सुकुमार होगा और यह इतना सुन्दर होगा कि इसे देखकर प्रत्येक व्यक्तिका हृदय मुग्ध हो सकता है। आगे चलकर यही बालक इस पृथिवी मण्डलका राजा होगा। मुनिराज कहने लगे–"विद्याधर, तुम शरीरके तेजसे चमकते हुए इस दिव्य बालकको पद्मावतीके पाससे लेकर अपने घर ले जाना। उसे पालना, पोसना और बडा करना। जिस समय यह बालक बडा होकर दन्तिपुरमें विस्तृत राज्यका अधिकारी बनेगा, उसी क्षण तुम्हारी समस्त विद्याएँ पूर्वानुरागवश तुम्हे पुन प्राप्त हो जावेगी।"

बालदेव विद्याधर पद्मावतीसे कहने लगा–"हे सुतनु! मै

मुनिराजके आदेशसे ही इस महाभयकर श्मशानभूमिमे अब तक ठहरा रहा। मुनिराजने जो आदेश दिया था उसका एक भाग तो हमारे सामने आगया और दूसरा भी निकट भविष्यमे आ जावेगा, क्योकि मुनिराज कभी भी अन्यथा नही कह सकते।"

"भद्रे, इस कारण आप इस बालकको मुझे दे दीजिये। मै इसे अभी घर लिये जाता हू और सावधानीके साथ इसका पालन पोषण करूँगा। आशा है, आप इस प्रस्तावको स्वीकार करेंगी और बालककी ओरसे निश्चिन्त रहेगी।"

पद्मावतीने विद्याधरकी बात सुनी तो कहने लगी—"अच्छी बात है, भैया! परन्तु इसका पुत्रके समान ही पालन करना।"

बालदेव विद्याधरने पद्मावतीको प्रणाम किया और बालकको लेकर वह शीघ्र ही घर आ गया। बालदेवका हृदय बालकके स्नेहसे भरा जा रहा था। उसने बडे आदरके साथ उस बालकको अपनी पत्नी हेममालाके हाथोमे सोप दिया। इस तरह बालक बालदेवके भवनमे और हेममालाकी देख-रेखमे बालचन्दकी तरह दिन प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त होने लगा।

इधर पद्मावती भी श्मशान भूमिसे चली आई और आकर दन्तिपुरमे रहने लगी। दन्तिपुरमे भी वह कुछ दिन तक ही रही इसके पश्चात् वह यहाँसे भी चल दी। उसका मन अब भोगोसे विमुख हो चुका था। वह समाधिगुप्त मुनिराजके निकट जा पहुँची और उन्हें नमस्कार करके सुव्रता नामक आर्यिकाके निकट दीक्षा ले ली।

पद्मावतीने इस प्रकार दीक्षा तो ले ली, किन्तु उसके मनसे अपने पुत्रका वात्सल्य और शल्य दूर नही हुए। इसलिये एक दिन वह पुत्रशोकसे व्याकुल होकर घीकी पुडी और लड्डुओको लेकर बालदेवके घर जा पहुँची। उसने अपने प्रेम-पात्र बालकको स्नेहसे देखा और उसे उत्तमोत्तम भक्ष्य पदार्थोंको

देकर वह अपने इच्छित स्थानपर चली गई। एक बार वह फिरसे अपने बालकको देखने आई, परन्तु इस बार उसके हाथों-पैरोमे खाज-खुजली देखकर वह बडी दुखी हुई। उस समय उसने बालदेवके सामने ही अपने इस पुत्रका नाम कर्कण्डु रख दिया और इसके बाद वह चली गई। कर्कण्डु भी इस प्रकार पालित-पोषित होकर बडा होगया।

परच, बालदेव विद्याधरने जिस श्मशानकी पहले रक्षा की थी उसी श्मशानमें पड़े हुए कपालसे तीन बाँस उत्पन्न हुए–एक बाँस इस कपालके मुँहसे निकला और दो बाँस उसकी दोनो आँखोसे।

एक समयकी बात है। एक बडे भारी निर्दोष सघके साथ विहार करते हुये यशोभद्र और वीरभद्र नामके आचार्य जो दिव्य ज्ञानसे सम्पन्न थे और गुणो तथा शीलके महान् समुद्र थे, दन्तिपुरके निकटवर्ती श्मशानमे ठहरे। उनमेसे युवक मुनिराजने इन तीनो बाँसोको देखा तो उन्हे बडा आश्चर्य हुआ वह अपने आचार्यसे कहने लगे–महाराज, लोगोके मनको अतिशय आश्चर्यमे डालनेवाला यह दृश्य तो देखिये, जो एक मनुष्यके कपालको पार करके तीन बाँस निकले हुए है? निर्मल ज्ञानी यशोभद्र आचार्यके ज्ञानमे इस घटनाका रहस्य प्रतिभासित होगया। वे इन्हे देखकर कहने लगे–"जिस मनुष्यके छत्र, ध्वजा और अकुशके डण्डे इन बासोसे बनेंगे वह समस्त भूमण्डलका राजा बनेगा।"

जिस समय आचार्य महाराजने यह वाक्य कहा उस समय वहाँ सुमति नामका ब्राह्मण मौजूद था। आचार्यका यह वाक्य सुनकर वह बडा प्रसन्न हुआ। उसने सोचा–ससारमे मुनिराजका कथन कभी भी अप्रामाणिक नही हो सकता। इसलिये इन बांसोको ले जाकर मै अवश्य ही स्थिरता पूर्वक चिरकाल तक राज्य कर सकता हूँ।

यह सोचकर उसने तीनों ही बाँस काट डाले इन्हें लेकर वह शीघ्रताके साथ अपने नगरकी ओर जा रहा था कि इतनेमे उसे कर्कण्डुने देख लिया और उसके हाथसे वे तीनों बास छीन लिये ।

जब सुमति नामके ब्राह्मणने समस्त प्रशस्त लक्षणोसे सम्पन्न और अत्यन्त सौन्दर्यशाली कर्कण्डु कुमारको देखा तो उसका मन बडा ही विस्मित हुआ और वह सोचने लगा कि मुनिराजने जो समस्त भूमण्डलके भावी राजाका नाम लिया था सो उस प्रकारके राजा होनेकी पात्रता इसी कुमारमे दीख रही है । मै उस पदकी प्राप्तिका पात्र नही हूँ ।

इस प्रकारका विचार करके अत्यन्त विस्मयमें निमग्न उस ब्राह्मणने कर्कण्डुसे कहा---कुमार, आप हमारी बातको जरा ध्यान देकर सुनिये । इन तीन बासोको देखकर श्मशानमे ठहरे हुए एक मुनिराजने मेरे सामने जो आदेश प्रकट किया था वह बहुत ही महत्त्वपूर्ण और सत्य है । वह आदेश यह है कि जो मनुष्य इन बासोको ग्रहण करेगा वह अपने समस्त शत्रुओको अधीन करके सम्पूर्ण ससारका राजा बनेगा । इस समय मुनिराजके द्वारा किया गया आदेश सत्य होता दीख रहा है । आप शीघ्र ही समस्त ससारके अधिपति बनेगे । एक बाँस आपके सफेद छत्रका दण्ड बनेगा, दूसरा अकुशका दण्ड बनेगा और तीसरा आपकी शुक्ल ध्वजाका दण्ड होगा । इसलिये कुमार, इन तीनो ही बासोको सावधानीके साथ रखना । यदि आपने इस सम्बन्धमें कोई प्रमाद नही किया तो आप अवश्य ही राज्य-लक्ष्मीको प्राप्त करेंगे । परन्तु हे धर्मात्मन्, इस अवसरपर आपसे एक बात अवश्य कहना चाहता हूँ और वह यह कि यदि आप राज्यके अधिकारी बने तो मुझे मन्त्रीका पद अवश्य ही प्रदान करना ।" बुद्धिमान् सुमति

नामका ब्राह्मण कर्कण्डु कुमारसे इस प्रकार घटना सुनाकर आनन्दके साथ घर चला गया।

इधर कर्कण्डु कुमार ब्राह्मणके हाथसे इन बाँसोंको लेकर श्मशान भूमिमे आया और वहाँ एक वृक्षके नीचे अपनी थकावट दूर करनेके निमित्त सोगया।

इसके बाद एक अन्य घटना घटित हुई। दन्तिपुरका गुणज्ञ राजा, जिसका नाम बलवाहन था और जिसके एक भी पुत्र न था, अचानक मर गया। इसकी मृत्युके पश्चात् इसके ससार-प्रसिद्ध वशमे एक भी ऐसा योग्य व्यक्ति न था, जिसे दन्ति-पुरके सिंहासनपर बिठलाया जा सकता। ऐसी परिस्थितिमे वहाँकी सम्पूर्ण जनता बहुत ही व्याकुल हो रही थी। अन्त-मे राजाके मन्त्रियोने जनताकी सम्मतिसे एक राज-हाथीको जलसे नहलाया, कुकुमसे चर्चित किया, सुगन्धित पुष्पमालाएँ पहिनायी, धूपसे सुवासित किया और सोनेके मनोहर ध्वनि करनेवाले घटे बाधे। तथा उसकी सूडमे जलसे भरा कलश देकर उसे छोड दिया।

यह हाथी उद्यान, बाजार, प्रासाद, मन्दिर, नदी, वापी, तडाग आदिको लाँघता हुआ श्मशान भूमिमें जा पहुँचा, जहाँ कर्कण्डुकुमार सोया हुआ पडा था। हाथीने कुमारकी तीन प्रदक्षिणा की और सूड़के कलशके जलसे उसका अभि-षेक करके उसे अपनी पीठपर बिठा लिया। कामके समान सुन्दर वाले कर्कण्डुकुमारको लेकर राज-हाथी बाजो और घटोसे माङ्गलिक ध्वनि करता हुआ राज-भवनमे जा पहुँचा और वहाँ मणिमय स्तंभोंसे बने हुए सभा भवनमे पहुँचकर उसने कर्कण्डुकुमारको सिंहासनपर प्रतिष्ठित कर दिया। इसके पश्चात् हाथीने सुवर्ण-कलशोसे उस कुमारका अभिषेक किया, केशरसे लिम्पन किया और पुष्पमालाओसे पूजा करके उसे खूब ही भूषित कर दिया।

उसके बाद उपस्थित राजाओ और मन्त्रियोंने कर्कण्डुको पट्ट बन्ध बाधा और अन्य राजकर्मचारी उसके चरणकमलको प्रणाम करने लगे। इस समय राजमन्त्री इतने प्रसन्न थे कि उन्होने याचकोके लिये रत्न, सोना–चादी, हाथी–घोडे आदि प्रत्येक वस्तु दानमे दी। इस प्रकार धर्मके माहात्म्यसे कर्कण्डु महाराज दन्तिपुरमे शत्रुओको अधीन करके इस प्रकार राज्य करने लगे, जिस प्रकार इन्द्र स्वर्गमे करता है।

भव्यजीवो! देखिये, धनदत्त नामके ग्वालने जिनभक्तिसे प्रेरित होकर एक कमलके द्वारा जिन भगवान्की पूजा की। इस धर्मकृत्यके माहात्म्यसे वह इस प्रकारके स्वर्गमे देव हुआ, जहाँ नित्य ही स्तुति-पाठकोकी श्रुतिमधुर ध्वनि सुनाई पडती है और जो देव और देवियोसे अत्यन्त ही मनोहर है। वह देव वहाँके दिव्य और मानसिक इष्ट सुखको भोगकर दन्तिवाहन राजाकी पद्मावतीके पुत्र हुआ। और वही पुत्र आज दन्तिपुरके सिंहासनपर आसीन है। इसलिये सज्जनो, उस ग्वालके एक कमलके द्वारा कमाये गये पुण्यके विस्तारको देखकर आप लोग भी धर्मको अङ्गीकार करिये, जिससे आप लोग भी उस परम पद मोक्षको प्राप्त कर सके। अस्तु,

इधर कर्कण्डु महाराजके पट्टबन्धको देखकर बालदेवकी विलीन हुई समस्त विद्याएँ एकदम प्रकट होगई। उस समय वह बालदेव विद्याधर कर्कण्डु महाराजके सभा-मण्डपमे बैठे हुये समस्त सभ्योसे कहने लगा–सभासदो, आप लोग आपसका वार्तालाप छोडकर मेरी बातको एकचित्त होकर सुनिये–

"मैने कर्कण्डु महाराज की, जब यह शिशु थे, मातङ्गका रूप धारण करके श्मशान भूमिमे रक्षा की और अपने घर लाकर कुमार अवस्थामे इनका पालन पोषण किया। परन्तु

न तो मैं मातङ्ग हूँ और न यह महाराज ही मातङ्ग पुत्र है। यह सुकुमार कुमार महान् वंशके प्रसूत रत्न है।

अङ्गदेशकी चम्पा नामकी नगरीमें दन्तिवाहन नामका राजा है। जिसकी महादेवीका नाम पद्मावती है। यह रूपवान् कुमार इसी पद्मावती रानीके सुपुत्र है। और मातङ्ग वेषधारी मैंने ही इन्हे अपने घर रखकर इतना बडा किया है। इनकी माता पद्मावतीने जैन दीक्षा लेली और यह इसी नगरमे शील-सम्पन्न साध्वी आर्यिकाके रूपमे विराजमान है।"

बालदेव विद्याधर इस प्रकार सभ्योको कर्कण्डुकुमारका और अपना पूर्व परिचय देकर अपने नगर चला आया।

कर्कण्डु महाराजने कपाल पार करके निकले हुये उन तीन बांसोसे अपने छत्र, अकुश और ध्वजाके मनोहर दड बनवा लिये। तदनन्तर उसने सुमति नामके ब्राह्मणको बुलवाया और उसे विधिवत् महामन्त्रीका पद प्रदानकर दिया।

जब पद्मावती आर्यिकाको कर्कण्डु कुमारके सिंहासनासीन होनेकी खबर लगी तो वह अपने पुत्र-प्रेमके कारण कलिङ्ग-देशके अधिपति कर्कण्डु महाराजके पास आ पहुँची।

ज्योही कर्कण्डु महाराजने अपनी माँको देखा वह तुरन्त अपने सिंहासनसे उठ बैठा और बडी भक्तिके साथ उसने अपनी माँकी पूजा की।

एक समयकी घटना है। कर्कण्डु महाराज सिंहासनपर विराजमान थे। इतनेमे दन्तिवाहन राजाका दूत उसके पास आया और कहने लगा—"महाराज, अङ्गदेशके स्वामी, महा-राजाधिराज दन्तिवाहनने मेरे द्वारा आपके लिये यह सन्देश भिजवाया है कि कलिङ्गदेशके राजा आप अपने सैन्यसमुदायके साथ पवित्र चम्पापुरीमें आवें।"

ज्यो ही कलिङ्गाधिपति कर्कण्डुने दन्तिवाहन राजाके दूतसे

यह समाचार सुना, उन्हें बड़ा क्रोध हो आया और वे दूतसे बोले–"मुझे अगदेशसे क्या मतलब है, चम्पापुरीसे क्या काम है और तुम्हारे राजा दन्तिवाहनसे भी क्या लेना है ? क्या हमारा राज्य, हाथी–घोडे, रथ और पदाति आदि सब हमे तुम्हारी ही कृपासे मिला हुआ है, जिससे तुम्हारा स्वामी इस प्रकारकी अहकारपूर्ण बात कर रहा है ?" कर्कण्डु महाराजने दन्तिवाहनके दूतको इस प्रकार खूब खरी डाँट पिलाकर उसके मालिकके पास वापिस भेज दिया।

दूतने दन्तिपुरसे प्रस्थान किया और चलते चलते वह चम्पानगरीमे दन्तिवाहन राजाके पास आगया। भयके कारण उसका समस्त शरीर कँप रहा था और उसके मनमे इस बातका आश्चर्य होरहा था कि यह कुसमाचार राजाको कैसे सुनाऊँ ? अन्त मे कुछ साहसके साथ वह राजा दन्ति-वाहनसे कहने लगा–"राजन्, कलिगदेशका वह अधिपति कर्कण्डु आप सरीखे नरसिंहको भी तिनकेके समान भी नही समझता।"

दूतके मुहसे यह सन्देश सुनकर राजा दन्तिवाहन चतुरङ्ग सेनाको लेकर नगरसे बाहर निकला। इधर कर्कण्डु महाराजने भी अपने नगरमे युद्धकी घोषणा करवा दी। एक आदमी हाथीकी पीठपर बैठकर हाथसे भेरी बजाने लगा और महा-राजका आदेश सुनाने लगा। भेरीकी उस ध्वनिको सुनकर समस्त राजा, मन्त्री, और सिपाही सबके सब सग्रामके लिये तैयार होकर राजद्वारपर आगये। और इस तरह सम्पूर्ण चतु-रङ्ग सेना युद्धकी भेरीके शब्दको सुनकर तैयार हो गई।

धनुर्धारियोने दिव्य कवच पहिन लिये और कन्धोपर धनुष टागकर वे तुरन्त वहाँसे चल दिये। इसके पश्चात् वे धीर लोग रवाना हुये, जिनके हाथमे पूर्णिमाके चाँदकी तरह चमकता हुआ दिव्य फार और कडितल्ल नामका शस्त्र था। इनके पीछे सग्राम रसिक वे सुभट चले, जिनके हाथमे यम-

राजकी जिह्वाके समान आकारवाले भाले थे। इनके पश्चात् बडे बडे दातवाले मदोन्मत्त हाथी चले। इनके पश्चात् रथ चले जो दमकते हुये सोनेके बने थे और जिनके बीचमे हीरा पन्ना मोती जडे हुये थे। दो दो घोडे इनमे जुते थे और सारथी हाक रहे थे। इनके पीछे अच्छी जातिके घोड़े चले, जिनपर अश्वारोही सवार थे, वायु और मनके वेग-की तरह तीव्रगतिसे चलते थे और अपनी हिनहिनाहटके शब्दोसे दिड्मण्डलको गुञ्जायमान कर रहे थे। इन सबके पीछे चपल घोडोपर सवार हुये अनेक अश्वारोहियोसे वेष्टित कर्कण्डु महाराज चले।

कर्कण्डु महाराज जात्यश्वपर बैठे हुए थे। उनके दोनो ओर चमर ढुर रहे थे। सिर पर उन्नत और शुक्ल छत्र तना हुआ था और वन्दीजन उनका विरुद गान करते जा रहे थे।

इस प्रकार कर्कण्डु महाराज अपनी वहुत विशाल सेनाके साथ मार्गमे आने वाली नदी, सरोवर, कुटीर, गिरि, गहन वन, पवित्र आश्रम, महातीर्थ और असख्य जनोंसे वेष्टित देशको पार करते हुए चम्पा नगरीमे आगये।

जव चम्पा नरेश दन्तिवाहन और उसकी सेनाने अपने प्रतिद्वन्दियोंको उपस्थित हुआ देखा तो दोनो ओरकी सेनाऐ सग्राम रसकी उत्सुकताको वडे उत्साहके साथ प्रकट करने लगी और उत्तेजक शब्दोके साथ परस्परमे लडाई छिड गई।

इसी वीचमे बुद्धिमती पद्मावती आर्यिका शीघ्र ही महाराज दन्तिवाहनके पास आई और कहने लगी—"राजन्, आपने यह क्या ससारका कारण और अपयशको वढ़ाने वाला सग्राम अपने पुत्रके ही साथ छेड़ दिया है?"

जव राजाने पद्मावतीकी यह वात सुनी तो उसका हृदय कौतुकसे भर गया और वह आर्यिकासे अपनी वातको और

अधिक स्पष्ट रूपमे रखनेकी प्रार्थना करता हुआ बोला—"हे आर्ये ! आप कहाँसे आ रही है ? आपका नाम क्या है ? और यह भी बतलाइए कि यह कलिङ्गाधिपति हमारा पुत्र कैसे है ?

आर्यिका बोली—"राजन् ! आप एकचित्त होकर सुनिए। आपने जो प्रश्न किये है मै उनका एक एक कर उत्तर देती हूँ" यह कहकर आर्यिका पिछली घटनाएँ सुनाने लगी। उसने कहा—'राजन् ! आप पूर्वकालकी घटना याद कीजिए, जब आप मेरी सम्मतिसे हाथीपरसे उतर पड़े थे और मै उसीपर बैठी रह गई थी। उस समय वह हाथी मुझे विदेशमे ले गया। जब यह हाथी जगलके एक सरोवरमे घुसा तो मै इस गर्भस्थित पुत्रके कारण उसकी पीठसे जलमे उतर गई और फिर स्थलपर आगई। अन्तमे मैने दन्तिपुरके भयकर स्मशानमें समस्त लक्षणोसे लक्षित इस सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। बालदेव नामके विद्याधर-ने अपने घर लेजाकर इसे पाला पोषा और मैने आपके वियोग-से दुखित होकर यह दीक्षा लेली। इधर दन्तिपुरके बलवाहन राजाके कोई सन्तान नही थी। जब इसका स्वर्गवास हुआ तो यह कुमार अपने ही पुण्यके कारण वहाँका अधिपति बना दिया गया। अपने शैशव कालमे इसके हाथ पैरोमें खाज—खुजली होगई थी अत मैने ही इसका सार्थक नाम कर्कण्डु रखा था।"

आर्यिकाकी यथार्थ बात सुन कर राजा दन्तिवाहनके हृदयसे समस्त वैरभाव दूर होगया और उसमे पुत्र वात्सल्य हिलोरे लेने लगा।

पद्मावती आर्यिका दन्तिवाहनसे पुत्र सम्बन्धकी बात कह कर अपने पुत्रके पास चल दी। कर्कण्डु महाराजके पास पहुँचकर वह बोली—"पुत्र, तुम पिताके साथ युद्ध कर रहे हो? यह ठीक नही है।"

पद्मावतीकी बात सुनकर कर्कण्डुका मन बडा विस्मित हुआ। वह अपनी माँ पद्मावतीसे कहने लगा—माता, तुम मुझे

ठीक ठीक बतलाओ कि यह हमारे पिता कैसे है ? पद्मावतीने अपने पिताके साथ विद्वेष रखने वाले पुत्रसे उसके पिताका परिचय इस प्रकार दिया--

"पुत्र, मै तुम्हारे पिताके देखते देखते ही हाथीके द्वारा एक सरोवरमे ले जाई गई। उस हाथीसे छूटकर मै सरोवरके तट पर आई। वहाँसे दन्तिपुरके भयकर श्मशानमे गई और मेरे पुण्य प्रतापसे वहां तुम्हारा जन्म हुआ। अपने पदपर पुनः प्रतिष्ठित होनेकी इच्छासे बालदेव विद्याधरने तुम्हारा लालन पालन किया और तुम वडे हुए। इसके पश्चात् मैने मोक्ष देनेवाली जैन दीक्षा ले ली। जब दन्तिपुरका राजा वलवाहन परलोक वास कर गया तो इस राज्यके राजहाथीने तुम्हे सहर्ष सिहासनपर प्रतिष्ठित किया। पुत्र, अब तुम्हे अपने पिताका परिचय मिल गया। उठो और उनसे अपने अपराधकी क्षमा मागते हुए प्रसन्न मनसे उनके सामने जाओ और उनके चरणोमे गिरो।"

कर्कण्डु महाराज अपनी माँके कथनानुसार तुरन्त ही हाथीसे उतर पड़े और बडे उल्लासके साथ दन्तिवाहनके सामने जा पहुँचे। इधर जब पिताने अपने पुत्रको आते हुए देखा तो वह भी तुरन्त ही घोडेसे उतर पडे और उसे गोदमे भरनेके लिए आगे बढे। दोनोके हृदय स्नेहसे छलक रहे थे। दोनो ही आपसमे मिले और जनताके सामने ही गाढ आलिङ्गनमे बद्ध होगये।

बडे सतोष और गद्गदवाणीके साथ दोनोने एक दूसरेका कुशलवृत्त पूछा और हर्षसे रोमाञ्चित होकर दोनो यथास्थान बैठ गये। अन्तमे दन्तिवाहनने बाजोकी ध्वनियोके साथ कर्कण्डु महाराजको अपने राज्यका पट्ट बाध दिया। इसके साथ ही उसने अपने सामन्त, मन्त्री, योद्धा और समस्त प्रजा

जन, हाथी घोडे, खजाना, रथ, पदाति, सेना और यहाँ तक कि सम्पूर्ण पृथिवी अपने पुत्रको दे डाली।

अन्तमे दन्तिवाहन महाराज सबके सामने पुत्र कर्कण्डुसे कहने लगे—"तुम नीतिके साथ प्रजाओका पालन करना, सज्जनोके सेव्य बनना और निश्चिन्त होकर चिरकाल तक पृथिवीका पालन करना।"

इस प्रकार पुत्रको उपदेश देकर राजाने प्रत्येक मनुष्यस बात की और वैराग्यसे प्रेरित होकर वह नन्दन वनको चले गये। नन्दन वनमे पहुँच कर वीर मुनिराजके दर्शन किये और उनकी बडी भक्तिके साथ बन्दना की। उनसे धर्मका स्वरूप पूछकर आत्म-हितका परिज्ञान किया। इसके पश्चात् दन्तिवाहनने अन्य बहुतसे राजाओके साथ बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहका त्याग किया और श्रीधर्मसेन मुनिराजके निकट जैन दीक्षा ले ली।

इधर कर्कण्डु महाराजने अपने समस्त विरोधी राजाओंको अपने अधीन कर लिया और इस प्रकार वे बड़े ही आनन्दसे चम्पा नगरीमे राज्य करने लगे। उस समय बङ्ग आदि देशोके सुप्रसिद्ध और यशस्वी राजा भी कर्कण्डु महाराजसे भयभीत होकर इसके शासनको शिरसा स्वीकार करते थे। उस समयके राजाओंमे केवल द्रविड़ देशके चेर चोल और पाण्ड्य नामके राजा ही ऐसे थे, जिन्होने कर्कण्डु नरेशकी अधीनता स्वीकार नही की थी। जब कर्कण्डु महाराजको इन लोगो की उद्दण्डताका पता लगा तो उसने अपने एक कृतज्ञ दूतको उन लोगोंके पास भेजा। वह दूत क्रमश: उन राजाओके पास पहुँचा और कुशल प्रश्न पूछनेके वाद उन लोगोसे बोला—"महाराजाओ, कर्कण्डु महाराजने मेरे द्वारा आप लोगोंके लिए सन्देश भिजवाया है कि आप तीनों नरेश शीघ्र ही कर्कण्डु महाराजकी सेवामें उपस्थित हो।"

ये तीनो ही नरेश सिंहके समान पराक्रमी थे। दूतकी यह बात सुनकर उत्तरमे उन्होने कहा–"दूत, तुम जाकर अपने महाराजसे कह दो कि हम लोग ससारको नष्ट करनेमे प्रमुख कारण अर्हन्त भगवान्‌के पवित्र चरण कमलके सिवाय अन्य किसीकी वन्दना नही कर सकते।"

जब दूतने राजाओकी यह अविनय पूर्ण बात सुनी तो उसे बडा रोष आया। वह चम्पामे आ पहुँचा और उसने बडी विनयके साथ कर्कण्डु महाराजसे निवेदन किया–"राजन्, वे तीनो ही नरेश अपनी सेना और समृद्धिके मदमे इतने उन्मत्त है कि आपके निकट आनेकी तो कौन कहे, वे अपने स्थानसे एक कदम भी हटना नही चाहते।"

यह सुनकर कर्कण्डु क्रोधसे लाल होगया और अपनी चतुरङ्ग सेना लेकर इन विरोधी राजाओके देशकी ओर चल दिया। कर्कण्डु महाराजके साथ वायुके समान वेगवान् घोडे थे, मदोन्मत हाथी थे, सोनेके रथ थे और अस्त्र–शस्त्रोसे सुसज्जित पदाति थे। इन सबको साथ लेकर चम्पापुरका अधिपति इनके दर्पको चूर करनेके लिए दक्षिणा पथके तेर नगरमे जा पहुँचा और तेर नगरके आसपास मार्गकी थकावट दूर करनेके लिए अपना पड़ाव डाल दिया।

जब वहाँके भिल्लाधिपति शिवको मालूम पडा कि हमारे नगरके निकट कर्कण्डु महाराज अपनी सेनाके साथ पडे हुए है तो वह अपनी विशाल सेनाके साथ उनसे भेट करनेके लिए आया। आते ही उसने राजाके द्वारपालसे कर्कण्डु महाराजके पास अपने आनेकी खबर भिजवाई और आज्ञा प्राप्त होते ही वह कर्कण्डुकी सेवामे हाजिर होगया।

ज्यो ही शिवने कर्कण्डु महाराजको सभाके बीच बैठा हुआ देखा, उसने दूरसे ही हाथ जोडकर और पृथ्वीपर मस्तक

रखते हुए उन्हे प्रणाम. किया और आकर जमीनपर बैठ गया ।

कर्कण्डु महाराजने शिवके साथ कुशल प्रश्न पूर्वक वार्तालाप किया और उसे ताम्बूल भी दिया । इसके पश्चात् कर्कण्डु महाराज शिवसे पूछने लगे--भिल्लाधिपति ! तुम तो इस जगलमे रात्-दिन घूमते रहते हो । इसलिए यह तो बतलाओ कि इस जगलमे तुमने कभी कोई आश्चर्य जनक दश्य तो नही देखा ?

कर्कण्डु महाराजकी बात सुनकर भिल्लाधिपति कहने लगा-राजन् ! इस जगलमे एक आश्चर्य पूर्ण दृश्य तो अवश्य देखा है । इस नगरसे दक्षिण दिशाकी ओर पर्वतके ऊपर एक सहस्र स्तम्भ वाली गुफा है । इसके ऊपर एक वामी है, जिसे कोई भी देव, असुर या नरेश लाघ नही सकता । समस्त जनताके मनको वह प्यारी है और एक देवता उसकी रक्षा किया करता है । राजन्, हिमालयके समान एक सफेद हाथी निकटवर्ती सरोवरसे जल लाकर अपनी सूड़के द्वारा रोज ही इस वामीका भाव-पूर्वक अभिषेक किया करता है, कमलोसे पूजा करता है और पृथ्वीपर अपने मस्तकको टेककर तीन प्रदक्षिणा देता है ।

इस प्रकार राजन् ! मैने वृक्ष और लताओसे भरे हुए और मनसे भी दुर्गम इस वनके मध्यमे यही एक आश्चर्य देखा है । सो यदि आपको मेरे कथनपर विश्वास न हो अथवा आपके मनमे भी इस आश्चर्यको देखनेका कौतुक हो तो आप मेरे साथ चलिए । मै अवश्य ही आपको इस आश्चर्य का प्रत्यक्ष करा दूंगा ।

शिवकी यह बात सुनकर कर्कण्डुका मन बडा विस्मित हुआ । उनके शरीरमे भक्तिसे रोमाञ्च हो आये और वह बड़ी

प्रसन्नताके साथ कहने लगे–वत्स, तुम मेरे आगे आगे चलो। मैं इस आश्चर्यको बडे ही आदरके साथ देखना चाहता हूँ; क्योंकि प्रत्येक प्राणीको सुन्दर वस्तुके देखनेमे आदर रहता है।

इस प्रकार धर्मानुरागी कर्कण्डु भिल्लाधिपति शिवके साथ एक हजार स्तम्भवाली गुफामे जा पहुंचा। उसने इसमे विराजमान जिन प्रतिमाओके दर्शन किए और भक्तिके साथ उनकी पूजा तथा बन्दना करके वह कौतुक पूर्वक पर्वतके शिखरपर चढ गया। पर्वतके शिखरसे ही उसने कमलोसे वामीकी पूजा करने वाले सफेद हाथीको देखा। फिर हाथीके कमलकी तरह मनोहर वामीको देखा और उपवास पूर्वक उसने पुष्प, धूप और अक्षत चढाकर उस वामीकी पूजा की। पश्चात् उसने माङ्गलिक बाजोंकी ध्वनिके साथ भगवान पार्श्वनाथकी प्रतिमाको वहासे निकाला और नीचेकी गुफाके बीचमे स्थापित करके उसकी पूजा की।

इस प्रकार राजा कर्कण्डु सिंहासनपर विराजमान भगवान पार्श्वनाथकी मनोहर प्रतिमाकी पुष्पमालाओसे पूजाकरके उनका दर्शन कर ही रहे थे कि उन्हे विचित्र मणियोके बने हुए जिन-सिंहासनमे एक छोटीसी गाठ दिखलाई दी। राजाने सोचा कि भगवान्के सिंहासनमे तो जरा भी गाठ न होनी चाहिए। यह सोच कर उसने एक प्रस्तर-कलाके विशेषज्ञ विद्वान्को बुलवाया। शिष्टाचारके बाद उससे कहा–"ओ उपाध्याय! तुम प्रस्तरकला विज्ञानमे निष्णात हो और प्रतिमाके लक्षणोसे परिचित हो। इसलिए इस सिंहासनमे जो यह गाठ दिख रही है, उसे निकाल दो।"

राजाकी बात सुन कर उपाध्याय कहने लगा–राजन्! सिंहासनकी इस गांठमे एक जलवाहिनी नाडी है। अगर यह पाषाणकी गाठ निकाल दी जावेगी, तो राजन्, यह गुफा जलसे भरकर नष्ट हो जावेगी।"

परन्तु राजाने उस विशेषज्ञकी एक न सुनी और उससे आग्रह किया कि तुम इस गाठको जरूर ही निकाल दो। भगवान्के सिंहासनमें जरा भी गाठ न होनी चाहिए।

कर्कण्डुके आग्रहसे उपाध्याय अपनी इच्छाके विरुद्ध भी इस गाठको निकालनेके लिए विवश हो गया। परन्तु ज्योंही उसने टाकी मारी उस जलवाहिनी गाठसे पानीकी धारा फूट पड़ी और उससे सारी गुफा जलमग्न हो गई।

जब राजाने इस सम्पूर्ण गुफाको इस प्रकारसे तत्काल विनष्ट होते हुए देखा तो वह बहुत ही दुखी हुआ। उसने वहाँसे आकर स्नान किया, पवित्र होकर सफेद स्वच्छ वस्त्र पहिने और तीन दिन तक उपवास पूर्वक बराबर कुशासन-पर बैठा रहा। उस समय इसका मन बहुत ही व्याकुल था।

कर्कण्डु महाराज इस प्रकारसे चिन्तामग्न दशामें बैठे हुये थे कि इसी समय कार्यवश नागकुमार वहा आ निकला। उसने कर्कण्डु महाराजसे गुफाकी पूर्व कथा इस प्रकार कही—'विजयार्ध पर्वत पर नील और महानील नामके दो विद्याधर भाई रहते थे। दोनों भाई एक दूसरेसे बडा स्नेह रखते थे, दोनों सुन्दर और जवान थे। इनके नगरके कुछ पराक्रमी किन्तु विरोधी विद्याधरोने इनकी विद्याएँ छीन ली और इन्हे इनके नगरसे निकाल दिया। चलते-चलते दोनों भाई तेर नगरमें आये। यहाँ आकर इन लोगोने समस्त भूमिगोचरी जनताको अपने वश मे किया और वे इसी तेर नगरमे बडे आनन्दके साथ रहने लगे।

एक बार दोनो भाइयोने एक मुनिराजके श्रीमुखसे भव्य जीवोंके लिए पुण्यप्रद और अतिशय महत्त्वपूर्ण भगवान् पार्श्वनाथका जीवन चरित सुना और उन्ही दोनो भाइयोने इस पर्वतपर भगवान् पार्श्वनाथकी यह एक हजार स्तम्भ वाली गुफा बनवाई। इस गुफामे भगवान् पार्श्वनाथकी सब

प्रतिमाएँ रत्न और सुवर्णकी बनी हुई है। दोनो भाई अपने बन्धु बान्धवोके साथ उन प्रतिमाओकी त्रिकाल पूजा किया करते थे।

एक समयकी बात है। नील और महानीलका एक मित्र विद्याधर जिसका नाम अमित वेग था, विजयार्ध नगरसे चल कर लङ्कामें आया। उस विद्याधरने वहाकी समस्त रत्नमयी प्रतिमाओंकी बन्दना की और उनमेसे एक रत्नमयी प्रतिमाको लेकर वह चल दिया।

जैसे ही वह इस प्रतिमाको अपने साथ लेकर आकाशमार्ग से जा रहा था, उसे गुफा दिखलाई दी। इसे देखते ही उसका हृदय भक्तिसे द्रवित हो उठा और वह तुरन्त ही दर्शन करनेके लिये आकाशसे भूतल पर उतर आया। उसने भगवान् पार्श्वनाथकी उस प्रतिमाको जिसे वह अपने साथमें लिए था, गुफाके उपरकी वामीमे विराजमान कर दिया और आप अकेला ही भक्तिके साथ नीचेकी गुफाके दर्शन करने चल दिया।

इस अमितवेग विद्याधरने बडी भक्तिके साथ इन प्रतिमाओंके दर्शन और बन्दना की और फिर वह शीघ्रतासे उक्त वामीके पास आ पहुचा। परन्तु जैसे ही उसने भक्ति और विनयके साथ प्रतिमाको उठाया, वह टससे मस नही हुई और उसी स्थान पर अचल होकर रह गई। विद्याधरके बहुत प्रयत्न करने पर भी जब वह पूर्ववत् अचल बनी रही तो अमितवेग उसे वही छोड़कर अपने नगरकी ओर चल दिया।"

नागकुमार कर्कण्डु महाराजसे बोला—"भद्र, इस प्रकार इस प्रतिमाके ऊपर कालके प्रवाहने वामी खड़ी कर दी और मै तबसे लेकर आजतक बड़े प्रयत्नसे इस वामीकी रक्षा करता आ रहा हूँ। मणिखचित हजार स्तम्भ वाली गुफा उन्हीं नील और महानील नामक भाइयोने बनवाई थी। वही, आज

जलकी वेगवान् धारासे नष्ट हो गई है। मुझमे इस धाराको रोकनेकी शक्ति न थी।" इतना कह कर नागकुमार कुछ क्षण तक मौन रहा और मौन भंग करके पुन बोला–"राजन् ! इस गुफाके अन्दर जो सुवर्ण और रत्नोसे बनाई गई जिन प्रतिमाएँ है इस विकराल दुखमा कालमे उनकी रक्षा नही की जा सकती इसलिए इस सारभूत गुफाको जलमग्न और नष्ट होते हुए देखकर मै उदासीन ही बना रहा। राजन् ! अब इसको जलमग्न ही बना रहने दीजिए। हाँ, इसके ऊपर आप एक अन्य गुफा बनवा दे"।

नागकुमार यह कहकर अन्तर्हित होगया। इसके पश्चात् रोजकी तरह वह हाथी वामीके पास पहुँचा, परन्तु जब उसने उसे नष्ट हुई पाया तो वह तुरन्त ही पर्वतपर चढ गया, और सब प्रकारका आहार छोडकर उसने समाधि ले ली। अन्तमे वह मरकर सहस्रार स्वर्गमे महर्द्धिक देव हो गया।

इधर कर्कण्डु महाराजने एक शुभ मुहूर्तमे समस्त शिल्पियोंको बुलवाया और इस नीचेकी जलमग्न गुफाको शिलाओसे ढकवा दिया। इसके पश्चात् उसने वहा अपने, अपनी महादेवीके और क्षुल्लके नामसे तीन गुफा बनवाई। तथा बड़ी भक्ति और गाजे-बाजेके साथ उनकी प्रतिष्ठा भी कराई। इस प्रकार अपना पुण्यकार्य करके महाराज कर्कण्डु द्रविड देशकी ओर रवाना होगये।

द्रविड देशके उन तीनो राजाओने जब चतुरङ्ग सेनाके साथ आये हुये कर्कण्डु महाराजको सुना तो वे भी लडनेके लिये तैयार होकर तुरन्त अपने अपने नगरसे निकल पडे। दोनो ओरसे घमासान युद्ध हुआ। यह युद्ध शस्त्रोंके सघर्षसे निकली हुई अग्निकी ज्वालाकी प्रभासे चमक रहा था, एक दूसरेको मारनेमे संलग्न योद्धाओकी गर्जनाओसे भयकर था, हाथियोकी चिग्घाड, घोड़ोंकी हिनहिनाहट और रथोके चीत्कार-

से आकाश और भूलोक गुञ्जायमान हो रहा था, धनुर्धारियोके द्वारा छोडी गई बाणावलीसे पदाति सैनिक मारे जा रहे थे, वैतालिकोके कलकल आलापसे दिङ्‌मण्डल बहरा हुआ जारहा था, छत्र, चमर और ध्वजाओके कारण सूर्यकी प्रभा छिप गई थी। और यहाँ तक कि अनेक देवी-देवता आकाशमे स्थित होकर इसका निरीक्षण कर रहे थे। कर्कण्डु महाराजने चेटक आदि तीनो राजाओको जीवित अवस्थामे ही पकड़ लिया और ज्योही वह उन्हें लात मारनेके लिये उद्यत हुआ, उसे उन लोगोके मुकुटोमे जिन प्रतिमाये दिखलाई दी। कर्कण्डुको एक धक्कासा लगा। वह रुक गया और सोचने लगा'—

धिक्कार है, मेरे इस हीन और साधुजनोके द्वारा निन्दनीय कृत्यको, जो मै भगवानकी प्रतिमाको लात मारनेके लिये उद्यत हो उठा। उस समय कर्कण्डुको बड़ा वैराग्य हुआ। वह अपनी आलोचना करने लगा।

इधर चेटक आदि तीनो राजा भी बडे विरक्त हुये और इन्होने तुरन्त ही अपने अपने राज-कार्यको सभालने योग्य पुत्रोको बुलवाया। तीनो राजाओने अपने अपने पुत्रको अपने अपने राज्यका पट्ट बाधा और फिर तीनो ही भव्य राजाओने वीरसेन आचार्यके निकट जैन दीक्षा ले ली।

कर्कण्डु महाराजने सम्पूर्ण द्रविड़ देश अपने अधीन किया और फिर तुरन्त ही अपने सैन्य-सागरके साथ वह चम्पापुर आगये। उन्होने अपने प्रजापालक और शूरवीर बुद्धिमान् वसुपाल नामक पुत्रको सम्पूर्ण राज्य-भार सोपा और भगवान् महावीरके तीर्थकालमे आचार्य वीरसेन महाराजके निकट जैन दीक्षा ले ली।

अब कर्कण्डु नरेश कर्कण्डु योगीश बन गये। वे भव्योके चित्त-

को आनन्दित करने लगे और स्वर्ग-मोक्षके फलको देनेवाली कठोर जैन साधनामे सलग्न होगये ।

इस प्रकार महान् भक्त नागदत्त, गोपालक और एक कमल द्वारा श्री जिनेन्द्रकी पूजाके फलसे दिव्य विभव सम्पन्न कर्कण्डु महाराजका कथानक सम्पूर्ण हुआ ।

---

५७. अशोक और रोहिणीकी कथा

मगधदेशमे राजगृह नामका विशाल नगर था । इसके राजाका नाम श्रेणिक था । श्रेणिक महान् धर्मात्मा और सम्यग्दृष्टि था । इसकी महादेवीका नाम चेलना था । चेलना अपने शील सम्यक्त्वम बहुत ही सुप्रसिद्ध थी । इसके पुत्रका नाम वारिषेण था, जिसे सभी विद्वान् एक उत्तम श्रावक मानते थे ।

एक समयकी बात है । विपुलाचल पर्वतपर भगवान् महावीरका समवसरण आया हुआ था और उसमे भगवान् महावीर अपने बारह गणधरोके साथ विराजमान थे । यह समाचार सुनकर श्रेणिक राजा भगवान्के समवसरणमे पहुचा और देव, असुर तथा मनुष्योके द्वारा स्तुत और घातिया कर्मोका नाश करनेवाले भगवान् महावीरको नमस्कार करके निम्न प्रश्न पूछने लगा । वह बोला—भगवन्, आप यह बतलाइये कि आपके ही समान कितने जिन होते है, कितने चक्रवर्ती होते है, कितने बलदेव होते है, कितने वासुदेव होते है और कितने उनसे द्वेष रखनवाले प्रतिवासुदेव होते है ?

कहा भी है —

"त्वत्सदृशा कति नाथ जिनेन्द्राश्चक्रधरा कति केशवरामा ।
तत्प्रतिपन्थिन एव कियन्त सर्वमिदं मम नाथ विधत्स्व ॥

अर्थात् भगवान्, यह बतलाइये कि आपके समान कितने जिनेन्द्र होते है, कितने चक्रवर्ती होते है, कितने बलदेव होते है, कितने नारायण होते है और कितने प्रति नारायण होते है?

श्रेणिक निवेदन करते गये—"हे जिनाधीश, पवित्र और त्रिभुवनके गुरू भगवान्, मै आपके प्रसादसे इन प्रश्नोका समाधान चाहता हूँ।" श्रेणिक इतना कहकर मौन होगये और उत्सुक हृदयके साथ भगवान्की वाणी सुननेकी प्रतीक्षा करने लगे।

भगवान् महावीर श्रेणिकके प्रश्नोंका निम्न प्रकार उत्तर देने लगे। भगवानने कहा—"राजन्! सम्पूर्ण भूखण्डके स्वामी चौवीस जिनेन्द्र होते है। बारह चक्रवर्ती होते है। नौ बलभद्र होते है। नौ वासुदेव होते है और नौ ही वासुदेवोसे द्वेष रखनेवाले तथा तीव्र क्रूरकर्मी प्रति वासुदेव होते है।" श्रेणिक राजाके प्रश्नोका उत्तर देते हुये भगवान्ने श्री ऋषभदेवके चरितसे लेकर शेष महापुरुषोके चरित सुनाने शुरू किये और इस प्रकार सुनाते सुनाते वे अङ्गदेशके वर्णन तक आ पहुचे। एव आगेका कथानक इस प्रकार सुनाने लगे—

"इस अङ्ग देशमे चम्पा नामकी सुन्दर और जनतासे भरी हुई नगरी थी। इस नगरीके राजाका नाम वसुपूज्य था और इसकी सहधर्मिणीका नाम जया था। इन दोनोके अत्यन्त रूपवान् वत्तीस शुभ लक्षणोसे सयुक्त, और भव्यजीवोंको आनन्दित करनेवाले भगवान् वासुपूज्यका जन्म हुआ।" इस प्रकार भगवान् महावीर भगवान् वासुपूज्यके जीवन चरितको जब सम्पूर्ण कर चुके और श्रेणिक भी गुणरत्नोसे भरे हुये इस चरितको सुन चुके तो उन्होने इस बीचमें ही भगवान्से श्री वासुपूज्यके प्रथम गणधर अमृताश्रवका चरित पूछा—और उत्सुकताके साथ भगवान्के उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगे।

भगवान् कहने लगे—"राजन्, जम्बूद्वीपके इसी भरत क्षेत्रमे कुरुजाङ्गल नामका देश है, जो धन-धान्यसे खूब ही समृद्ध है। इस देशमे हस्तिनागपुर नामका सुन्दर नगर है, वहांके प्रजाजन बहुत ही सम्पन्न है। इस नगरमे वीतशोक नामका राजा राज्य करता था। वह अपने सद्गुणोके कारण बड़ा ही जनप्रिय था। इसकी पत्नीका नाम विद्युत्प्रभा था और राजा उससे बहुत ही प्रेम करता था। इन दोनोके एक अशोक नामका पुत्र था, जो सदा ही हंसमुख रहता था।

इसी समय अङ्गनामके समृद्धिशाली देशमे चम्पा नामकी नगरी थी। इस नगरीके राजाका नाम मघवा था और रानीका नाम श्रीमती। श्रीमती महारानीके आठ पुत्र हुये। आठो ही पुत्र अपने अपने सद्गुणोके कारण ससारमें खूब ही यशस्वी बने। उन पुत्रोके नाम इस प्रकार थे—

पहलेका नाम श्रीपाल था, जिससे लक्ष्मी बहुत ही प्रेम करती थी। दूसरेका नाम गुणपाल था, जो बड़ा ही गुणप्रिय था। तीसरेका नाम वसुपाल था, जो बहुत ही धन-सम्पन्न था। चौथे पुत्रका नाम प्रजापाल था, जो सदैव प्रजाके हित-साधनमे सलग्न रहता था। पाँचवेका नाम व्रतपाल था, जो बडा ही व्रती था। छठवेका नाम श्रीधर था, जो बहुत ही श्रीसम्पन्न था। सातवेका नाम गुणधर था, जिसने अपने सद्गुणोके कारण समस्त जनताको मुग्ध कर लिया था। और आठवेका नाम यशोधर था, जो बडा ही यशस्वी था और जिसने अपने पवित्र यशसे आकाश-को भी सफेद कर रक्खा था। इस प्रकार ये सभी भाई सार्थक नामवाले थे।

इस राजाके एक रोहिणी नामकी कन्या भी थी। रोहिणी रूपवती थी, युवती थी, पुष्ट, उन्नत और सघन स्तनोंसे रम-णीय थी, और समस्त कलाओमे कुशल थी।

एक समयकी बात है। कार्तिकका अष्टाह्निक पर्व आया

जानकर रोहिणीने उपवास किया और वह बडी भक्तिके साथ चन्दन, अक्षत, चरु, दीप और धूप लेकर चम्पा नगरीके पूर्व दिशावाले प्रदेशमे स्थित महापूजाङ्क नामक गगनचुम्बी जिनालयमे पहुँची। वहाँ पहुँचकर उसने जल, चन्दन, अक्षत आदिसे जिन भगवान्‌की पूजा की, जिनधर्मी साधुको नमस्कार किया और जिनराजकी शेषा लेकर वह जिनमन्दिरसे निकली और उसने यह शेषा सभाभवनमे बैठे हुये अपने माता-पिता तथा समस्त अन्त पुरवर्ती परिवारको भी दी।

उस समय रोहिणीके पिताने इसे देखा और स्नेहवश गोदमे बिठा लिया। राजाने देखा कि उसकी कन्या युवती और प्रौढा हो गई है तो वह खिन्न होकर सोचने लगा कि इस अतिशय रूपवती और पूर्ण नवयौवन सम्पन्न कन्याको किस समान रूप और गुण वाले वरको दूँ? इस प्रकार बहुत कुछ सोचने विचारने पर भी जब वह किसी निर्णयपर नही पहुँचा तो रोहिणीको घर भेजकर राजा अपनी मन्त्रशालामें जा पहुँचा।

इस राजाके तीन मन्त्री थे। पहलेका नाम सुमति था, जो वस्तुत बडा ही बुद्धिमान् था। दूसरेका नाम श्रुतसागर था, जो अनेक शास्त्रोका पारगामी पडित था। तीसरेका नाम विमलमति था, जो सच्चे अर्थमें पवित्र और निर्मल बुद्धिका था।

राजाने इन मन्त्रकला विशारद मन्त्रियोको बुलवाया और जब वे अपने अपने आसनपर बैठ गये तो राजा उनसे पूछने लगा—"मन्त्रियो, आप लोग मन्त्र कलामे बडे ही निष्णात हैं, इसलिये आप लोग नि शङ्क होकर बतलाइये कि हम अपनी सुकुमाराङ्गी रोहिणी कन्या किस सुपात्र कुमारके लिये देवे?"

राजाका प्रश्न सुनकर मन्त्री अपने प्रधान सहकर्मी सुमति मन्त्रीसे प्रेरणा करने लगे कि तुम ही महाराजके प्रश्नका

उत्तर दो। इस प्रकार जब सबने सुमति मन्त्रीके ऊपर जोर डाला तो वह कहने लगा--

"राजन् ! यदि हम लोग ही किसी एक कुमारको चुन लेते है और उसे कन्या दिये देते है, तो पता नही, कन्याका इसके साथ प्रगाढ प्रेम-सम्बन्ध हो या न हो। अथवा दैवयोगसे यह भी सभव है कि वह कुमार सभावनासे अधिक विलासी निकले और कन्याके साथ समुचित प्रेम न करे। ऐसी स्थिति मे माता-पिता कुछ नही कर पाते है और उनकी मनोदशा बडी ही शोचनीय हो जाती है। इसलिये राजन्, हमारी समति-मे तो यही आता है कि हम कन्याके लिये स्वयम्वरका आयो-जन करे और उस समय आये हुये अनेक राजाओमे से कन्या जिसे चाहे अपना वर चुन ले। स्वयम्वरकी पद्धति आधुनिक नही है और न इसमे कोई लज्जाकी ही बात है। पहलेके राजा-ओने इस पद्धतिको बड़े आदरके साथ प्रश्रय दिया है।"

विद्वान सुमति मन्त्रीकी इस भाव-पूर्ण बातको सुनकर राजाने पूर्व महापुरुषोके द्वारा अपनाई गई स्वयम्वर पद्धतिके आयोजनका ही निश्चय किया।

इसके बाद राजाने विभिन्न जातिके मणियोसे खचित चांदीके आसन तैयार करवाय और अपने शीघ्रगामी पुरुषो-द्वारा समस्त भूमण्डलमे स्वयम्वरकी घोषणा करवा दी। दूतोके द्वारा स्वयम्वरका समाचार सुनकर सभी वैभवशाली राजा समृद्ध चम्पानगरीमे पहुचे और मण्डपमे यथास्थान बैठ गये। स्वयम्वरके समय तरह तरहके बाजोकी मधुर ध्वनिसे पृथ्वी और आकाश-मण्डल व्याप्त हो गया। स्वयम्वर-मंडपमे उप-स्थित राजा लोग अपने बनाव शृगारमे लग गये।

कोई राजा प्रसन्न होकर अपनी हारलताको हाथसे टटो-लने लगा। कोई अपने मुकुटको स्थिर और उन्नत करने लगा। कोई आँखोको कन्याके आगमनकी प्रतीक्षामे व्यस्त करके शिर

परके स्निग्ध केश-समूहको हाथसे निश्चल करने लगा। किसी-ने अपने हाथमे इस प्रकारका लीला कमल ले लिया, जिसकी गन्धसे आसक्त होकर भ्रमर उसपर मडरा रहे थे, और जिसका प्रत्येक दल पूर्णरीतिसे विकसित था। कोई वीणा लेकर सात स्वर उन्नीस मूर्छनाओसे युक्त सुन्दर गीत गाने लगा। कोई अपने शरीरको मोड मोडकर अपने नितम्ब भाग पर चमकती हुई तलवार बाँधने लगा। किसी राजाने मनमे खूब ही प्रसन्न होकर ताम्बूल हाथमे लिया और उसे खाते समयकी अव्यक्त, किन्तु जोरकी ध्वनिसे आकाश और भूतल-को भर दिया। इस स्वयम्वर मडपमे बैठे हुये सभी राजाओके मन कन्याके आगमनकी प्रतीक्षामे बडे ही आकुल हो रहे थे और इसी कारण वे विविध शारीरिक चेष्टाएँ कर रहे थे।

इसी समय रोहिणीने एक धात्रीके साथ स्वयम्वर-मडपमें प्रवेश किया। उस समय वह महामूल्य वस्त्र पहिने हुई थी, दिव्य आभूषणोसे सुशोभित थी, उसका सम्पूर्ण शरीर रूपसे दमक रहा था, मदोन्मत्त हाथीकी तरह उसकी मन्द-मन्द गति थी, और अपने हाथमे पाँच वर्णके फूलोसे तैयार की गई पुष्प-माला लिये हुए थी।

ज्योही रोहिणीने इस प्रकारसे स्वयम्वर-मण्डपमे प्रवेश किया, समस्त राजाओके मन उसे देखकर कामसे अत्यन्त ही आकुल हो गये और वे अपने अपने मनमे सोचने लगे कि क्या यह यक्षिणी है, अथवा किन्नरी है या विद्याधरकी कन्या है, अथवा उर्वशी है, या इन्द्राणी है, अथवा रति है, अथवा साक्षात् तिलोत्तमा ही है? इस प्रकार रोहिणीके मुख-कमलको देखकर सभी राजा अपने मनमे बडे ही विस्मित हुए और उल्लिखित प्रकारसे अनेकानेक कल्पनाये करने लगे।

इसके वाद सुमङ्गला नामक मनस्विनी धात्रीने, जो हाथमे सोनेका बेत लिये हुये थी और जिसका स्वर कोकिलकी तरह

मधुर था, रोहिणीसे महाकुन्दपुर नरेशकी ओर संकेत करते हुये कहा—"कुमारिके, देखो यह कुन्दपुष्पकी तरह स्वच्छ दाँतो-वाले, अत्यन्त रूपवान् कुन्दनामक महाकुन्दपुरके नरेश हैं। तुम चाहो तो इन्हे वरण करो। और हे मनस्विनि, यह मेघ-पुरके स्वामी हेम है, जिनका सोने जैसा शरीर है और जिनके भण्डारमें अटूट धन और सोना भरा पड़ा है, तुम इन्हे स्वीकार कर सकती हो। और हे बाले, ये रत्नपुरके नरेश रत्नसचय है, जिनका सम्पूर्ण शरीर रत्नोंसे चमक रहा है, तुम इन्हे अङ्गीकार कर सकती हो। तथा यह तिलक नामके तिलकपुरके राजा है, जो समस्त ही राजाओमे तिलकके समान श्रेष्ट है, तुम इनसे स्नेह सम्बन्ध स्थापित कर सकती हो। हे मानिनि, यह विद्युत्पुरके स्वामी विद्युत्प्रभ नरेश है, जो बडे भारी विलासी है, तुम इनके साथ अपना जीवन बिता सकती हो।"

धात्रीने इस प्रकारसे अनेक राजाओके रूप, सौन्दर्य और समृद्धि आदिका परिचय दिया, परन्तु रोहिणीने इनमेसे एक-को भी पसन्द नही किया। धात्री बडी ही बुद्धिमती थी, रोहिणी-की प्रत्येक चेष्टा सकेत और भाव-भङ्गिमासे अभिज्ञ थी। जब उसने देखा कि रोहिणीने इन राजाओमे से किसीको भी पसन्द करनेका कुछ भी मनोभाव व्यक्त नही किया है तो वह आगे वढी और बड़ी ही प्रसन्न बाणीमे इस प्रकार कहने लगी—

"स्वामिनि, देखो ये महाराज वीतशोकके सुपुत्र अशोक है। ये समस्त गुणोंके आकर है। अपने सहज रूपसे यह कामदेवको भी पराजित कर रहे हैं और प्रसन्नता सदा ही इनके मुख-मण्डल पर खेलती रहती है। और यह इतने रूपवान् हैं कि पहिचाननेमे नही आते कि यह देव है या विद्याधर। हे पुत्रि, तुम इनके साथ चिरकाल तक भोग विलास कर सकती हो।"

धात्रीकी इस बारकी बात रोहिणीके मनको लगी और

उसने कामदेवकी तरह अतिशय रूपवान् अशोकको देखा। इस अत्यन्त सुन्दर युवकको देखकर कन्या एक क्षणके लिये मूर्च्छित सी हो गई और बादमें चैतन्य होकर मनमे अत्यन्त आश्चर्य करती हुई इस प्रकार सोचने लगी–क्या यह मूर्तिमान् कामदेव है या इन्द्र है? या विद्याधर है या कोई भोगभूमिमें उत्पन्न हुआ कुमार? इस प्रकार विचार करते करते जब रोहिणीकी मनो-भाव-मालाने उसे खूब बाध लिया और उसका चित्त इस कुमारपर बहुत ही आसक्त हो गया तो रोहिणीने इसके गलेमें वर-माला डाल दी।

इस प्रकार जब अन्य राजाओने देखा कि वरमाला अशोककुमारके गलेमे पड चुकी है तो सबके सब नरेश उदास होकर अपने अपने नगरकी ओर चल दिये।

अशोककुमारने क्षीणकर्मा, केवल ज्ञानरूपी नेत्रसे सुशोभित, और समस्त पदार्थोका साक्षात्कार करनेवाले पवित्र जिन भगवान्की महामह नामकी पूजा की और मघवा नरेशकी प्रार्थनाके अनुसार सुन्दर और माङ्गलिक मुहूर्तमे रोहिणीके साथ विधिपूर्वक विवाह कर लिया। इस प्रकार अशोककुमार रोहिणीके साथ चन्द्रकी तरह विविध भांतिसे मनमाना भोग-विलास करता हुआ प्रसन्नतापूर्वक वही रहकर काल-यापन करने लगा। अशोकके पिताने अनेक पत्र इसे घर आनेके लिए लिखे, परन्तु रोहिणीके प्रेमके कारण वह पिताके पास नही गया।

अन्तमे अशोकके पिताने अपना चिन्ह देकर एक वैतालिकको अशोकके पास भेजा। वैतालिकने चम्पापुरीमे पहुँचकर महाराज वीतशोकका लेख उनके पुत्रको दे दिया।

अशोकने अपने हाथसे उस लेखको खोला और पढा तो माता-पिताके दर्शनोकी उत्कण्ठा उसके मनमें सजग हो उठी।

उसने अपने ससुरसे पूछा और उनकी आज्ञानुसार रोहिणीको लेकर अपनी सेनाके साथ पिताके निकट चल दिया।

अशोककुमार चलते-चलते हस्तिनागपुर आ पहुँचा। उसने सभाभवनमे बैठे हुए अपने माता-पिताको प्रणाम किया और इसके समागमसे उनका सम्पूर्ण शोक दूर हो गया।

एक दिनकी बात है। राजा विगतशोकने आकाशको प्रकाशित करनवाली और अपनी ज्वालासे कमलोको भी कान्तिमान् बनानेवाली बिजलीको देखा। इस उल्कापातको देखकर राजाके मनमे वैराग्य-भाव जागृत हो उठा। उसने अपने समस्त सभ्योसे, जो सभाभवनमे ही मस्तकपर हाथ रक्खे हुए उपस्थित थे, कहा—"सभासदो, आप लोग इस बातका विश्वास कीजिए कि जितने धन-धान्य आदिक विभव है वे सब दूर्वादलपर पडे हुए जल बिन्दुओंकी तरह चल है। पुरुषोका गया हुआ यौवन फिर कभी नही लौटता। मीठे-मीठे पदार्थोंसे पालित,-पोषित किये गये इस शरीरका भी यही हाल है। भवन आदिक वैभव तो सूखे हुए पत्तोके समान कभी भी जीर्ण-शीर्ण हो जानेवाला है। रमणीजनोंके साथ जो प्रीति है, वह भी सन्ध्याकी लालिमाकी तरह क्षणभगुर है। बन्धु-प्रेम भी स्वप्नमें प्राप्त हुए राज्यके समान है। इस प्रकार ससारमे एक भी ऐसी वस्तु नही है, जिसे स्थिर और नित्य कहा जा सके।"

विगतशोकने अपने समस्त सभ्योंसे इस प्रकार कहकर उनसे तथा अपने बान्धवजनोसे पूछकर अशोककुमारको राज्य दे दिया और आप राज-भवनसे निकल पडा।

राज-भवनसे चलकर वीतशोक राजा अशोक बनमे विराजमान गुणधर मुनिराजके पास पहुँचा। वहाँ उसने बड़ी ही भक्तिके साथ मुनिराजको प्रणाम किया और अनेक श्रेष्ठ पुरुषोके साथ मुनिराजके निकट जैन दीक्षा ले ली।

वीतशोक मुनिराजने अत्यन्त घोर तपस्या की और समस्त कर्मोंका क्षय करके वह शीघ्र ही मोक्षपुरीमें पहुँच गये।

इधर अशोककुमारको पिताके दीक्षित हो जानेसे बड़ा शोक था। सो धीरे-धीरे उसका शोक दूर हुआ और वह निष्कटक होकर अपने विशाल साम्राज्यका संचालन करने लगा। इसके साम्राज्यमें उस समय एक भी ऐसा राजा न था, जो इसकी अधीनतासे बाहर था।

रोहिणी भी अशोकके साथ मनोरम भोगोको भोगने लगी और यथा समय उसके आठ निर्दोष पुत्र हुए। तथा कमल दलके समान सुन्दर नेत्रवाली चार कन्याएँ भी हुईं। पुत्रोके नाम इस प्रकार थे—विगतशोक, गतशोक, जितशोक, विनष्टशोक, धनपाल, वसुपाल, गुणपाल और गुणाकर। पुत्रियोके नाम इस प्रकार थे—पहलीका नाम वसुधरा था, दूसरीका नाम सुरकान्ता था, तीसरीका नाम लक्ष्मीमती था और और चौथीका सुप्रभा। रोहिणीके इन समस्त पुत्र और पुत्रियोके पश्चात् एक लोकपाल नामका बहुत ही सुन्दर पुत्र हुआ।

एक दिनकी बात है। राजा अशोक, रोहिणी और लोकपालको गोदमे लिए हुये बसन्ततिलका नाम की धात्री, ये सव राजभवनके शिखरपर बैठकर मीठी-मीठी बाते करते हुए गोष्ठीके सुखका आनन्द ले रहे थे। इसी समय रोहिणीने देखा कि कुछ स्त्रियाँ गलीमे अपने बालोको बिखेरे हुए महान् कोलाहल करती हुई और एक घेरा बनाये हुए महान् शोकाकुल हो रही है। उसने देखा कि वे एक बालकको नचा रही है और छाती, सिर, स्तन तथा भुजाओको कूटती-पीटती हुई बार-बार रो रही है और चिल्ला रही है। इस प्रकार भवनके शिखर पर बैठी हुई रोहिणीने जब इन स्त्रियोकी यह दशा देखी तो वह वसन्ततिलका धात्रीसे कौतूहलवश पूछने लगी—अम्ब, नृत्यकलाविशारद, सिग्नटक, भानी, छत्र,

रास और दुम्बिली इन पांच प्रकारके नाटकोंका ही अभिनय करते हैं। भरत महाराज प्रणीत इन पाँच प्रकारके नाटकोको छोडकर ये स्त्रिया सादिकुट्टन नामके इस कौनसे नाटकका अभिनय कर रही है ? इस नाटकमे न तो सात स्वरोमेसे किसी एक स्वरका ही पता है और न भाषा तथा मूर्च्छनाओंका ही कोई सम्मेलन है। तुम इस नाटकका नाम तो मुझे बताओ ?

रोहिणीके इस भोलेपनसे भरे हुए प्रश्नको सुनकर बसन्त-तिलका बोली—पुत्रि ! यह नाटक नही है। कुछ दुखिया जन शोक और महान् दुःख मना रही है।

रोहिणीने जब धात्रीके मुखसे 'शोक' और 'दुःख' ये दो शब्द सुने तो वह धात्रीसे कहने लगी—–अम्ब, यह बताओ कि यह 'शोक' और 'दुःख' क्या वस्तु है ?

धात्रीने जब इस बार रोहिणीका प्रश्न सुना तो वह बडी रुष्ट हुई और उसकी आँखे क्रोधसे लाल-लाल हो गई। वह रोहिणीसे कहने लगी—"सुन्दरी, क्या तुम्हे उन्माद हो गया है! पाण्डित्य और ऐश्वर्य क्या ऐसा ही होता है ? क्या रूपसे पैदा हुआ गर्व यही है ! और क्या यही लोकातिशायी सौभाग्य है जो तुम 'शोक' और 'दुःख'को नही जानती हो और स्वर तथा भाषासे अलकृत नाटक-नाटक बक रही हो ! क्या तुम इसी क्षण जन्म ले रही हो ?"

जब रोहिणीने बसन्ततिलकाकी यह क्रोध-पूर्ण बात सुनी तो वह कहने लगी—"भद्रे, आप मेरे ऊपर क्रोध मत कीजिए। मै गन्धर्व विद्या, गणित विद्या, चित्र, अक्षर, स्वर, और चौसठ विज्ञानो तथा बहत्तर कलाओको ही जानती हूँ। मैने आजतक इस प्रकारका कला-गुण न देखा है और न मुझसे किसीने कहा है। यह आज भी मेरे लिए अदृष्ट और अश्रुत-पूर्व है। इसी-

लिए मैने आपसे यह प्रश्न पूछा है। इसमे अहकार और पाण्डित्यकी कोई भी बात नही है।"

रोहिणीकी बात सुनकर धात्री फिर कहने लगी—"वत्से, न यह नाटकका प्रयोग है और न किसी सगीत-भाषाका स्वर ही। किन्तु किसी इष्ट-बन्धुकी मृत्युसे रोनेवालोका जो दुख है वही शोक कहलाता है।"

धात्रीकी बात सुनकर रोहिणी फिरसे कहने लगी—भद्रे, यह ठीक है, परन्तु मै रोनेका भी अर्थ नही जानती, सो उसे भी बतलाइए।

रोहिणीके इस प्रश्नके पूरा होते ही राजा अशोक बोला—प्रिये, शोकसे जो रुदन किया जाता है उस रुदनका अर्थ मै वतलाता हूँ। इतना कहकर उसने लोकपाल कुमारको रोहिणीके हाथसे छीन लिया और उसके देखते देखते ही राजभवनके शिखरसे नीचे फेक दिया।

लोकपाल कुमार राजभवनके शिखरसे गिरकर अशोक-वृक्षकी चोटीपर बनी हुई अशोकके फूलोकी शय्यापर आ गिरा। जब नगरकी देवियोको इस घटनाका पता लगा तो वे सब कोलाहल करती हुई इस स्थानमे एकत्रित हो गई। और कहने लगी—रोहिणीको इस प्रकारका शोक और दुखका कारण कैसे आ गया ?

इधर रोहिणीने भी जव तक यह नही देखा कि देवियोंने उसके चिरञ्जीव पुत्रके लिये अशोक वृक्षके ऊपर पाँच प्रकारके वर्णोसे समुज्वल दिव्य सिहासन उपस्थित कर दिया है, क्षीर सागरके जलसे भरे हुये, रत्न और सुवर्णसे बने हुये और मुख पर कमलोसे अलकृत एकसौ आठ कलशोंसे उसका अभिषेक कर दिया है और उसे आभरणोसे भूषित कर दिया है तथा इस प्रकार वह बडे ही आनन्दसे खेल रहा है, तब तक उसे बडा दुख और शोक हुआ।

परन्तु अशोकने जैसे ही नीचे नजर डाली उसे लोकपाल अशोक वृक्षके ऊपर रक्खे हुये सिंहासनपर पडा हुआ दिखलाई दिया। उसने देखा कि नगरदेवियोंने उसे सोलह प्रकारके आभूषण पहिना दिये है, दिशाओको सुगन्धित करने वाले पुष्प और धूप आदिसे उसकी पूजा की गई है। उसे मालूम हुआ कि इन देवियोने ही लोकपालको बचा लिया है।

एक दूसरे समयकी बात है। देवताओने पुन' लोकपाल का जलके कलशोसे अभिषेक किया और सुन्दर सुन्दर आभूषण पहिनाये। यह जानकर इद्रके समान अनुरागी, और महाबुद्धिमान् अशोक राजा, और स्नेहशील रोहिणी तथा समस्त पुरोहित आदिक बहुत ही विस्मित हुये। इस घटनाको सब लोगोने रोहिणीके पूर्वकृत सुकृतका परिणाम समझा। इसके पश्चात् वे लोग इस दिव्य आभरणोसे अलकृत बालकको ले आये और उसे देखकर सभीको बडा ही आश्चर्य हुआ।

परच, हस्तिनागपुरका अशोक वन पुन्नाग, चम्पक, अशोक, नमेरु, वकुल, आम्र और अमरकके वृक्षोसे सम्पन्न था। इस अशोक वनमे अतिभूति तिलक, महाभूति तिलक, विभूति तिलक और अम्बरतिलक नामके चार जिनमन्दिर थे।

एक बार रूपकुम्भ और स्वर्णकुम्भ नामके दो चारण मुनि विहार करते हुए हस्तिनागपुरमें आये और यहाँकी पूर्व दिशामे विद्यमान अशोक वनके महाभूति तिलक नामके जिनमन्दिरमे ठहर गये।

जैसे ही वनपालको मुनिराजोके आगमनकी खबर लगी, वह तुरन्त अशोक महाराजके पास पहुचा और उनसे मुनियोके आनेका समाचार जा सुनाया। राजाने वनपालके मुखसे मुनियोके आगमनका वृत्तान्त सुना तो मुनिभक्तिसे उसके शरीरमे रोमाञ्च हो आये और वह महान् सम्पत्तिसे सुशोभित होकर मुनिराजके निकट जा पहुंचा।

अशोकने दोनो मुनियोकी भक्तिपूर्वक वन्दना की और वह अवधिज्ञानी रूपकुम्भ नामके मुनिसे विनयके साथ प्रश्न करने लगा—महाराज, आप यह वतलाइये कि मैने और मेरी पत्नी रोहिणीने पूर्वकालमे समस्त प्राणियोपर दया करनेवाले कौनसे धर्मका आचरण किया था। तथा यह भी वतलाइये कि विशोक आदिक आठ पुत्रो तथा चारो कन्याओका पूर्वभवमें क्या सम्बन्ध रहा है ?

मुनिराज बोले—राजन्, मै तुम्हारी पत्नी रोहिणीके अशोकका कारण सक्षेपसे कहता हू तुम एक चित्त होकर सुनो।

"इसी हस्तिनागपुरसे वारह योजन आगे चलनेपर अनेक वृक्ष और शिलाओसे मण्डित नीलगिरि नामका ऊचा पर्वत है। एक वार इस पर्वतके शिखर पर यशोधर नामके चारण ऋद्धि-सम्पन्न मुनिराज स्थिरचित्तके साथ आतापन योगमें संलग्न थे। यह मुनिराज अत्यन्त वीर थे, लोककी शान्तिके प्रचारक थे, सर्वौषधि ऋद्धिसे सम्पन्न थे, इनका शरीर धर्मसे भूषित था और अनेक व्रत और उपवासमे दत्त-चित्त रहा करते थे।

इक प्रकार जब यशोधर मुनिराज आतापन योगमे सलग्न थे तो मृगमारी नामका एक सुप्रसिद्ध शिकारी मृगोको मारने के लिए नीलगिरि पर्वत पर आया, परन्तु मुनिराजके माहात्म्य, के कारण वह एक भी मृग नही मार सका। इस तरह जब मृगमारीका एक भी वाण सफल नही हुआ तो वह सोचने लगा कि पता नही क्या वात है जो आज मै अपने अमोघ वाणोसे सामने स्थित मृगोमे से एकको भी नही मार रहा हू। विचारते विचारते उसे कुछ दूरीपर विराजमान यशोधर मुनिराज दिखलाई दिये और तव उसे मालूम हुआ कि अवश्य इन्ही मुनिके प्रभावने हमारे वाण वेकार कर दिये है।

इसके बाद जब मुनिराज पारणाके लिये नगरमे चले गये तो इस शिकारीने क्रोधावेशमे मुनिराजके ध्यान करनेकी शिलाको तृण और काष्ठ जलाकर खूब गरम किया और लकडियोकी भस्म और अगार आदिको अन्यत्र फेंक आया, जिससे मुनिराजको शिलाके गरम होनेका पता न चले और वे अचानक इसपर बैठते ही झुलस जावे। यह करनेके पश्चात् मृगोको मारनेकी बुद्धिसे वह वही ठहर गया।

इधर यशोधर महाराज भी पारणा करनेके बाद धीमी धीमी गतिसे चलकर आगसे तपाई गई ध्यान शिलाके पास आये। उन्होंने शिलाको आगसे तपाई गई जानकर भी सार्वकालिक आतापन योग ले लिया और विशुद्ध परिणामोंके साथ उस शिलापर ध्यानस्थ हो गये। उन्होने चार घातिया कर्मोका नाश किया और अन्तकृत केवली हो गये। इस अवसर-पर देव और असुरोने उन्हे नमस्कार किया। अन्तमे चार अघातिया कर्मोका नाश करके उन्होने मुक्ति लक्ष्मीको प्राप्त कर लिया।

मुनिराजके साथ इस प्रकारका दुष्टाचरण करनेके कारण मृगमारीको उदम्बर नामका कोढ़ हो गया और इस कोढ़से उसका सारा शरीर गल गया। इस तरह कुष्ट रोगकी असह्य वेदनासे व्यथित होकर वह मृगमारी सातवें ही दिन मर गया और मुनिराजको दुख देनेके कारण तेतीस सागरकी स्थिति वाले सातवें नरकमे उत्पन्न हुआ।

वहाँसे निकल कर वह तिर्यञ्च हुआ और उस पर्यायमे अनन्त दुख भोगे। इसके पश्चात् भ्रमण करता हुआ वह पुन मनुष्य गतिको प्राप्त हुआ। इसी सुरम्य हस्तिनागपुरमे बहुत गोधनसे सम्पन्न गोपालदण्डी नामका धनी गोपालक था। इसकी पत्नीका नाम गान्धारी था। वह पूर्व कालका मृगमारी व्याध इन दोनोके वृषभसेन नामका लड़का हुआ।

जब वह वय क्रमसे युवा हुआ तो एक बार गायोंको चराते चराते नीलगिरि पर्वत पर पहुँच गया। परन्तु दुर्भाग्य कि उस समय नील पर्वत दावानलकी लपटोसे झुलस उठा बेचारे वृषभसेन का सम्पूर्ण शरीर आगकी इस ज्वालामे भस्म हो गया और वह तुरन्त ही मर गया। जब सिंहदत्त घी लेनेके लिये गोकुलमे आया तो उसे यह हाल मालूम हुआ और उसने वृषभसेनके माता-पितासे उसकी मृत्युका समाचार कह सुनाया।

जब गान्धारीको अपने पुत्रकी मृत्युका समाचार मालूम हुआ तो वह मुनियोके मनमे भी दुखका सचार करने वाला रुदन करने लगी।"

सूर्यकुम्भ मुनिराज कहने लगे--राजन्, यह तो शोकका कारण है। अब आप अपने और रोहिणीके सम्बन्धकी कथा सुनिये। वह इस प्रकार है--

"राजन्, पहले इसी हस्तिनागपुरमे वसुपाल नामक राजा रहता था, जिसकी समस्त शुभ लक्षणोसे सम्पन्न पत्नीका नाम वसुमती था। इसके भाईका नाम धनमित्र था। धनमित्र राज-सेठ था और बड़ा भारी धनी था। धनमित्रकी पत्नीका नाम धनमित्रा था और इसके पूतिगन्धा नामकी एक कन्या थी।

इस पूतिगन्धाके शरीरसे मरे हुए कोढी कुत्तेके शरीरकी दुर्गन्धिकी तरह इतनी भीषण दुर्गन्ध निकलती थी कि जिसके कारण आकाश भी दुर्गन्धित हो जाता था। और यह हाल था कि जिस स्थानमें पूतिगन्धा जा बैठती उस स्थानमे साधारण दुर्बल आदमीकी तो क्या बात, ब्रह्मा जैसा समर्थ मनुष्य भी नही बैठ पाता था।

उसी नगरमें एक वसुमित्र नामक धनी सेठ रहता था। वसुमित्रकी पत्नीका नाम वसुमती था और इन दोनोके श्रीषेण

नामका पुत्र था। श्रीषेण जुआ खेलता, मदिरापान करता, शिकार खेलता, परस्त्री-सेवन करता, चोरी करता जीवहिसा करता और मास खाता था।

इस प्रकार वसुमित्रका यह अविनीत लडका श्रीषेण नित्य ही मनुष्योंको दुख पहुँचानेवाले इन सात व्यसनोसे खेला करता था। कहा भी है.–

"द्यूतं मास कुत्सितवेश्या परदार
हिंसादत्तं सुरामकार्येष्वतिकष्टम् ।
एते दोषा सप्त नृणामतिपापा
शिष्टैर्दृष्टा दुर्गतिमार्गं प्रवदन्ति ॥"

अर्थात् जुआ, मास, खोटी वेश्या, परस्त्री, हिसा, चोरी और मदिरा, ये सात दोष मनुष्योके लिए बड़े भारी पाप है। शिष्ट लोग यदि इन्हे सिर्फ देख भर ले तो भी ये दुर्गतिके मार्गको ले जाते है, इनका सेवन तो और भी दुर्गतिका कारण है।

एक वार यह श्रीषेण किसी धनीके घरमे चोरी करनेके लिए घुसा। जब कोतवालके पास इस कुकर्मकी रिपोर्ट पहुँची तो उसने श्रीषेणको खूब ही फटकारा और बाँध लिया। इसके पश्चात् ढोल बजाते हुए उसने श्रीषेणको नगरसे बाहर निकाल दिया।

जिस समय श्रीषेण नगरसे निकाला जा रहा था और इस दृश्यको देखनेके लिए बहुतसे लोग इकट्ठे हो रहे थे, धनमित्रने सुदृढ जजीरसे जकडे हुए श्रीषेणसे कहा–श्रीषेण, यदि तुम हमारी कन्याके साथ विवाह करना चाहो तो तुम विश्वास रक्खो, मै तुम्हे अभी छुड़वाये देता हूँ।

भयके मारे श्रीषेण काँप रहा था। उसने धनमित्रकी बात

सुनी और उससे कहने लगा—मामा, तुम मुझे छुडवा दो तो मैं पूतिगन्धाके साथ अवश्य विवाह कर लूँगा।

श्रीषेणकी बात सुनकर धनमित्र तुरन्त ही राजाके पास पहुँचा और राजाकी आज्ञा लेकर उसने श्रीषेणको छुडवा दिया और विधिपूर्वक इसके साथ पूतिगन्धाका विवाह कर दिया। जिसकी सडी हुई दुर्गन्धिके कारण सब लोग उससे दूर भागते थे, उसी पूतिगन्धाके साथ श्रीषेणने विधिवत् पाणिग्रहण कर लिया। उसने अपना मुँह और नाक बन्द करके किसी प्रकार एक रात पूतिगन्धाके साथ बिताई, परन्तु प्रभात होते ही वह नगरसे चल दिया।

इस प्रकार ससारकी महान् दुखिया पूतिगन्धाको श्रीषेणने भी छोड दिया। वह बडी ही दीन हो गई और जीवनकी निन्दा करती हुई पिताके घर ही दिन काटने लगी। इस प्रकारसे बडे ही कष्टसे पूतिगन्धाके दिन व्यतीत हो रहे थे कि इस बीच एक सुव्रता नामकी आर्यिका उसके पिताके यहा आहारके लिए आई। पूतिगन्धाने आर्यिकाको देखा और बडी दुखी हुई। उसने तुरन्त ही आर्यिकाके लिए आहार दिया और आर्यिका भी आहार लेकर वहाँसे विहार कर गईं।

इसी नगरमे एक कीर्तिधर नामका राजा रहता था। उसकी पत्नीका नाम कीर्तिमती था। एक दिनकी बात है। वनपाल सभाभवनमे आया और महाराज कीर्तिधरसे निवेदन करने लगा कि—"राजन्, पिहिताश्रव नामके चारण मुनि अपने साथ विहार करनेवाले अमितास्रव नामके मुनिराजके साथ वनके एक विशाल शिलाखण्ड पर विराजमान हैं।"

यह सुनते ही वह तुरन्त सपरिवार मुनि-वन्दनाके लिए चल पडा। राजाने दोनो मुनियोकी बडे ही भक्ति-भावसे वन्दना की, उनके श्रीमुखसे धर्मका उपदेश सुना और उसकी आत्मामे तुरन्त ही सम्यग्दर्शन प्रकट हो गया।

ठीक इसी अवसर पर पूतिगन्धा भी अपने माता-पिता आदि परिवारके साथ मुनियोकी वन्दनाके लिए आई। पूतिगन्धाने मुनिराजके निकट आकर उन्हे प्रणाम किया और विशुद्ध भावसे धर्मोपदेश सुना। इसके पश्चात् वह अपने जोड़े हुए हाथ मस्तकपर रखकर मुनिराजसे निवेदन करने लगी कि—भगवन्, आप कृपा कर मेरे पूर्वभवकी बात बतलाइए जिसके कारण मुझे पूतिगन्धा होना पड़ा और इतने कष्ट उठाने पडे।

जब अमितास्रव योगीन्द्रने महान् वैराग्यभावको जागृत करनेवाला पूतिगन्धाका यह प्रश्न सुना तो वे सामने बैठी हुई पूतिगन्धासे कहने लगे.—पुत्री, तुम स्थिर होकर एक चित्तके साथ सुनना। मै तुम्हारे इस दुर्गन्धयुक्त शरीरके प्राप्त होनेका कारण बतलाता हूँ।

"जम्बूद्वीपके भरत-क्षेत्रमे पश्चिम समुद्रके निकट एक सौराष्ट्र नामका महान् देश है। इस देशमे ऊर्जयन्तगिरिके पश्चिममे एक गिरि नगर नामका नगर है। इस नगरके राजाका नाम भूपाल था। भूपाल विशुद्ध सम्यग्दृष्टी था। इसकी महादेवीका नाम स्वरूपा था। स्वरूपा इतनी रूपवती थी कि उसका सारा शरीर कुन्दनकी तरह दमकता था।

इसी राजाके एक गङ्गदत्त नामका सेठ रहता था, जिसकी पत्नीका नाम सिन्धुमती था, सिन्धुमतीको अपने रूप, यौवन और उत्कट विलासका इतना अधिक गर्व था कि वह अन्य स्त्रियोंको तृणके समान भी नही समझती थी।

एक बार इस नगरमे अनेक महीनेके उपवास किये हुए समाधिगुप्त नामके मुनिराज पारणाके लिए आये। समाधिगुप्त मुनिराज आहारके निमित्त एक घरसे दूसरे घर जा रहे थे कि इतनेमे राजाके साथ प्रमदवन जाते हुए गङ्गदत्त सेठने उन्हे देख लिया।

गङ्गदत्तने देखा कि मुनिराज मन्द-मन्द गतिसे चलकर उसके ही घर आरहे है तो उसने अपनी पत्नी सिन्धुमतीसे कहा—प्रिये, अपने घर चर्यापूर्वक विहार करते हुए एक निर्दोष मुनिराज पारणाके लिए आये है, इसलिए तुम इन्हे आहार देकर पीछेसे आ जाना।

सिन्धुमती गङ्गदत्तके कहनेसे लौट तो आई, परन्तु उसके मनमे बडा तीव्र क्रोध-भाव उत्पन्न हो गया। उसने मुनिराजको पडगाहा और वह उन्हे अपने घर ले गई। घर जाकर जब वह भैसके निमित्त खूब नमक आदि डाले हुए बाटको मुनिराजके लिए देनेको तैयार हुई तो उसकी धात्रीने उसे वहुत रोका और समझाया, परन्तु क्रोधावेशमे उसने कुछ भी न सुना और महीनोके उपवासी समाधिगुप्तको उसने वह कडवी तूमडी मिला हुआ बाट आहारमें खिला दिया। मुनिराजने हमेशाके लिए प्रत्याख्यान लेकर आराधनाओका आराधन किया और स्वर्गमे जाकर देवपर्यायमे उत्पन्न हो गये।

जब राजा बनसे लौटा तो उसने मरे हुए और विमानमे ले जाये जानेवाले मुनिराजको देखकर पूछा कि इन महाराजकी किस प्रकारसे मृत्यु हो गई ?

राजाकी बात सुनकर एक कहने लगा—महाराज, यह कडवी तूमडीसे मिश्रित भैसका बाट खिलानेवाली आपकी सिन्धुमतीकी लीला है।

जब राजाने यह सुना तो उसने सिन्धुमतीका सिर मुडवा-कर, उसपर पाँच बेल बँधवाये, गधेपर सवार करवाया और उस दुराचारिणीको खूब ही पिटवाते हुए तथा नगाडा बजाकर इसके दुराचारकी सूचना कराते हुए, समस्त जनताकी उपस्थितिमे उसे नगरसे बाहर निकलवा दिया।

उसके बाद उसे उदम्बर कोढ हो गया और वह सात

दिनके भीतर ही मरगई तथा बाईस सागरकी स्थितिवाले छठवे नरकमे उत्पन्न हुई । इस प्रकार इस पापिनी सिन्धुमतीने क्रमसे सातो ही नरक भूमियोमे परिभ्रमण किया और घोर दुख उठाये ।

जब वह अत्यन्त घोर दुखमय नरकभूमियोसे निकली तो तिर्यञ्च गतिमे पहुची । वह दो बार कुत्ती हुई, सूकरी हुई, शृगाली हुई, चुहिया हुई, गोच हुई, हथिनी हुई, गधी हुई और गोणिका हुई । इसके पश्चात् ही दु.खोकी मारी, दुर्गन्धित शरीरवाली और बन्धुलोकसे निन्दित तू पूतिगन्धा हुई ।"

मुनिराजके द्वारा सुनाई गई यह पूर्वभवकी कथा सुनकर पूतिगन्धाका मन ससारसे विरक्त हो गया और वह समस्त प्राणियोके लिये हितकर मुनिराजसे कहने लगी—भगवन्, अब आप कृपा कर यह बतलाइये कि मै किस पुण्य कार्य द्वारा इस पूर्वकृत पाप-कर्मसे उन्मुक्त हो सकती हूँ ?

पूतिगन्धाकी बात सुनकर महामुनि कहने लगे—"वत्से, यदि तुम वस्तुत ससारसे भयभीत हो गई हो और समस्त पापोसे उन्मुक्त होना चाहती हो और रोग-शोकसे रहित देव-प्रियता प्राप्त करना चाहती हो तो तुम रोहिणी नक्षत्रमे उपवास किया करो । इससे तुम्हे फिर कभी भी दुख नही उठाने पडेगे ।"

मुनिराजकी बात सुनकर पूतिगन्धा कहने लगी—भगवन्, यह बतलाइये कि रोहिणीमे कैसे उपवास किया जाता है और उसकी विधि क्या है ? इतना कहकर पूतिगन्धाके हृदयमे एक दम भक्तिरस उमड आया और उसके नेत्रोमे आँसू भर आये ।

मुनिराज कहने लगे—"हे मनस्विनी पुत्री, उपवासके पहले दिन पवित्र मुनिमार्गका अनुसरण करते हुये चार प्रकारका प्रत्याख्यान करना चाहिये और जिस दिन चन्द्रमा रोहिणी

नक्षत्रमे हो उसी दिन जिनेन्द्र भगवान्की भक्तिपूर्वक पूजा करके उपवास करना चाहिये। इस तरह सत्ताइसवे दिन पुन उपवास करना चाहिये। इस तरह प्रति सत्ताईसवे दिन उपवास करनेसे पाँच वर्ष नौ महीनेमे कुल सरसठ उपवास हो जावेगे। हे भद्रे, इस प्रकारकी विधिसे भव्यजीवोके कल्याणको करनेवाला यह उपवासका विधान अखण्ड रूपसे समाप्त हो जावेगा।

जब यह रोहिणी व्रत अखण्ड रूपसे समाप्त हो जावे तो तुम एक रोहिणीव्रत सम्वन्धी ग्रन्थ लिखवाना और इसके साथ अन्य वे ग्रन्थ भी लिखवाना जो धर्मके कारण हो, आगम सम्मत हो, सारवान् हो और भव्यजीवोका हित करनेवाले हो। इसके सिवाय हे भद्रे, तुम भव्यजीवोको आनन्द प्रदान करनेवाले, देवता और असुरो द्वारा नमस्करणीय वासुपूज्य भगवान्की पूजा भी करना।

इस तरह इस शुभ अवसरपर कर्मक्षयके निमित्त भगवान् वासुपूज्य और रोहिणी ग्रन्थकी विमानोको ध्वजाओसे, कलशोसे, घण्टाओसे, घटियोसे, दर्पणोसे और स्वस्तिकोसे भूषित करके श्रीखण्डसे, कुकुमसे, उन पुष्पोसे, जिनपर सुगन्धिके कारण भ्रमर गुनगुनाते हो,, पञ्चवर्णी चरुसे, दीप, धूप और फल आदिसे भक्तिपूर्वक पूजा की जाती है। इसके पश्चात् चार प्रकारके सघके लिये शक्तिके अनुसार आहार, औषधि, अभय और ज्ञानदान भी दिया जाता है। वत्से, इस प्रकार जो स्त्री या पुरुष विधिवत् इस रोहिणीव्रतका पालन करते है, वे केवलज्ञानी होकर मोक्षमे चले जाते है।"

जव पूतिगन्धाने मुनिराजका यह हृदयगम उपदेश सुना तो उसने इस उपवास विधिके अनुष्ठानका निश्चय कर लिया। पूतिगन्धाका शरीर भक्तिके कारण रोमाञ्चित हो रहा था।

उसने अपने मनको प्रिय लगनेवाले इस व्रतको स्वीकार कर लिया। पुन मुनिराजसे कहने लगी–

"भगवन्, इस समय आप मुझे कृपा-पूर्वक यह बतलाइये कि क्या मेरे समान अन्य किसीने भी कभी इस व्रतका अनुष्ठान किया है ?" पूतिगन्धा यह कहकर अपने हाथोको मस्तकपर रक्खे हुये बैठ गई और मुनिराजके उत्तरकी प्रतीक्षा करने लगी।

उत्तरमे मुनिराज कहने लगे–पुत्री, समस्त दु खोको दूर करने वाला यह व्रत-विधान एक अन्य पूतिगन्धने बड़ी ही तत्परताके साथ पालन किया था। जिसकी कथा इस प्रकार है–

"जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमे शकटपुर नामका देश है। इस देशमे सिंहपुर नामका सुन्दर नगर था। इसके राजाका नाम सिंहसेन था और पत्नीका नाम कनकप्रभा। इन दोनोके एक लडका हुआ, जिसके शरीरसे बडी ही दुर्गन्ध निकलती थी।

एक समयकी बात है। विमलमदन जिनराजको केवल-ज्ञानकी प्राप्ति हुई और यह जानकर देवतागण जिनराज का केवल ज्ञान महोत्सव मनानेके लिये आकाश मार्गसे आये। ठीक इसी अवसरपर पूतिगन्धि कुमार राजभवनके शिखर पर बैठा हुआ था। उसने प्रभासे दिपते हुए और आकाशसे जाते हुये एक देव कुमारको देखा। देखते ही वह तत्क्षण मूर्छित हो गया। जब उसके ऊपर चन्दन मिश्रित जल छिडका गया तो वह होशमे आया और उसे जाति स्मरण हो आया। वह तुरन्त ही अपने पिता सिहसेन महाराजके साथ केवली भगवान्के दर्शनोको चल दिया। भगवान्के पास पहुचकर उसने उनकी तीन प्रद-क्षिणा की और बडी ही भक्तिके साथ नमस्कार किया। इसके पश्चात् वे दोनो ही पिता-पुत्र वहाँ बैठ गये और धर्मोपदेश सुनने लगे।

जब भगवान्का उपदेश समाप्त हुआ तो यथावसर सिंहसेन बड़ी ही भक्तिके साथ जिनराजसे अपनी मनोगत बात

पूछने लगा। वह बोला-भगवन्, आप यह बतलाइये कि मेरा यह पुत्र किस कारणसे पूतिगन्धि हुआ और किस कारणसे यह मूछित हुआ और चैतन्य होनेपर यहाँ आया ?

राजाका प्रश्न सुनकर जिनराज कहने लगे-"राजन्, आपके इस पुत्रने दूसरे भवमे एक मुनिराजकी हत्या की थी। इसी कारण यह नाना योनिरूपी जल से भरे हुये ससार-सागरमे परिभ्रमण करके तुम्हारे यहाँ पूतिगन्धि पुत्र हुआ। यह उस मुनि-हत्याके पापका ही परिणाम है। राजन्, इसने आकाश मार्गसे जाते हुये एक देव कुमारको देखा और उसे देखनेसे ही इसे जाति स्मरण हो आया। नरक वेदनाकी स्मृति सजग हो उठी और उससे भयभीत होकर ही यह मूर्छित हो गया।"

जिनराजकी यह बात सुनकर भक्त हृदय महाराज सिंह-सेन जिन भगवान्से पुन विनय करने लगे-"भगवन्, आप मुझे यह बतलाइए कि इसने पूर्व जन्मने क्यो कर मुनि-राजकी हत्या की ?"

सिंहसेनकी बात सुन कर मुनिराज कहने लगे-

"कलिङ्ग देशके निकटमे विन्ध्याचल नामक पर्वत है। उसी विन्ध्याचलपर एक महान् और दिव्य अशोक वन है, जो अशोक वृक्षोसे खूब ही सघन है। इसे अशोक वनमे दो मदोन्मत्त हाथी रहते थे। एकका नाम स्तम्बकरी था और और दूसरेका नाम श्वेतकरी। दोनो ही हाथी अपने-अपने हाथियोके झुण्डके स्वामी थे।

एक समयकी बात है। दोनों ही हाथी उस प्रदेशकी एक विशाल नदीमें घुसे और जलके पीछे आपसमें लड पडे। इतने लड़े कि अन्तमें वे दोनों ही मर गये। मरकर एक बार विलाव और चूहा हुए। एक बार भयानक साप और नेवला हुए। फिर बाज और बगुला हुए। इसके पश्चात् नील कमलके पत्रकी

तरह पख वाले, गुमचीकी तरह लाल चरण वाले और मीठी-मीठी अव्यक्त ध्वनि करने वाले कबूतर हुए।

अति रमणीय कनकपुरमे सोमप्रभ नामका राजा रहता था। इसकी पत्नीका नाम सोमश्री था। सोमश्रीका मुख चन्द्रकी तरह मनोहर था और वह बड़ी ही मधुर-भाषिणी थी।

सोमप्रभ राजाके एक सोमभूति नामका ब्राह्मण पुरोहित रहता था। इसकी पत्नीका नाम सोमिल्ला था जो अपने सौन्दर्यके कारण ही विख्यात थी। दोनों ही कबूतर मर करके सोमिल्लाके सोमशर्मा और सोमदत्त नामके पुत्र हो गये। दोनो जैसे ही बडे हुए अनेक कलाओं और विज्ञानमे पारगत होगये तथा वेद और स्मृतिके प्रकाण्ड पण्डित बन गये।

इधर जब सोमभूति पुरोहितकी मृत्यु हो गयी तो राजा-ने अपने पुरोहितका पद सोमदत्तको दे दिया। सोमशर्मा ज्येष्ठ भाई था। उसने छोटे भाईकी पत्नी लक्ष्मीमतीसे प्रेम सम्बन्ध स्थापित कर लिया और बडी ही प्रसन्नताके साथ उसके सहवासमे काल यापन करने लगा।

सोमशर्माकी सुकान्ता नामकी मूढ पत्नी रोज-रोज सोम-दत्तसे इस प्रसङ्गको छेडती—सोमदत्त, मैं बिल्कुल सच कह रही हूँ कि तुम्हारी दुराचारिणी पत्नीका मेरे पतिके साथ अनुचित सम्बन्ध है। अन्तमे सोमशर्माके इस कृत्यसे सोमदत्तको महान् वैराग्य हुआ और वह धर्मसेन मुनिराजके पास दीक्षित हो गया।

जब राजाको मालूम हुआ कि सोमदत्त साधु हो गया है तो उसने सोमशर्माको पुरोहितके पदपर नियुक्त कर दिया।

इधर महाराज सोमप्रभने शकटदेशके अधिपति वसुपाल राजाके यहाँ अपना दूत भेजा। दूत वसुपाल राजाके पास पहुचा और उसे प्रणाम करके हाथ जोड़कर प्रसन्नताके साथ

वसुपाल नरेशसे कहने लगा–राजन् ! आपके यहाँ जो त्रिलोक सुन्दर, महाबली, और युद्ध विशारद राज-हाथी है, हमारे स्वामीने आपके लिए बहुत ही प्रसन्नताके साथ यह सन्देश भेजा है कि आप उस हाथीको शीघ्र ही हमारे पास भिजवा दीजिये।

किन्तु वसुपाल नरेशने साफ कह दिया कि मैं यह हाथी नही दूंगा। अब तुम्हें इस सम्बन्धमे अधिक कहनेकी जरूरत नही है। दूतने तुरन्त ही अपने स्वामीके पास जाकर उससे समस्त वृतान्त सुना दिया। वसुपालके उत्तरसे सोमप्रभको वडा क्रोध आया। वह वसुपालके ऊपर चढाई करनेके लिये तुरन्त ही अपनी सेनाके साथ चल पडा और नगरसे बाहर निकल आया।

सन्ध्याके समय सोमदत्त नामके मुनिराज सेनाके पडावके एक प्रदेशमे ध्यान-मग्न थे। सोमशर्माने ज्यो ही ध्यानावस्थित सोमदत्त मुनिराजको देखा क्रोधके मारे उसकी आँखे लाल हो गईं। वह कहने लगा–"हम लोग आज अपने सबल शत्रुपर चढाई करनेके लिये जा रहे थे कि इस नग्न श्रमणके दर्शनसे अपशकुन हो गया। इसलिये अव हमे चाहिये कि हम इस मुनिको मार डाले और इसके खूनको दसो दिशाओमे फेक दे, जिससे हमारा पवित्र शान्ति-विधान हो सके।

जब महाराज सोमप्रभने मुनि हिंसा-प्रतिपादक सोमशर्मा-का कथन सुना तो उसने अपने हाथोसे कान बन्द कर लिये।

जब राजा इस प्रकार अपने कान मूंदकर ठहर गया तो विश्वदेव नामका ब्राह्मण, जो निमित्तज्ञ था, विशुद्धात्मा था, चार वेद और छ अङ्गका वेत्ता था, अनेक प्रकारके शकुनोका फल बतलानेमे और शास्त्रार्थमे कुशल था, सज्जनोके द्वारा मान्य था, और जनताका प्रेम-भाजन था, खेद-खिन्न महाराजसे कहने लगा–

"राजन्, सोमशर्माको कुछ मालूम नही है, इसलिये यह इस प्रकारसे कह रहा है। यह मुनिराज समस्त प्राणियोका हित करनेवाले है। इस प्रकारके मुनिराजका दर्शन समस्त कार्योकी सिद्धि करता है, समस्त शुभ शकुनोंके समान है और सम्पूर्ण कल्याणका कर्त्ता है। कहा भी है—

"यतिराज-वाजि-कुञ्जर-गोमय-वरकुम्भ-वृषवरा ह्येते।
आगमने निष्क्रमणे सिद्धिकरा सर्वकार्येषु॥"

अर्थात् मुनि, राजा, घोडा, हाथी, गोवर, उत्तम कलश और श्रेष्ठ वृषभ (बैल) ये आते जाते समय सम्पूर्ण कार्योकी सिद्धिके सूचक है।

राजन्, मै इस सम्बन्धका आपको एक पुराना प्रसङ्ग सुनाता हूँ। यह कह विश्वदेव कहने लगा—महाराज, जब विष्णु युद्धके लिए रवाना हुए तो उन्हे मार्गमे एक मुनिराज दिखलाई दिये। उस समय उन्होने अर्जुनसे कहा—अर्जुन तुम नि शङ्क होकर रथपर बैठ जाओ और धनुषको उठा लो। देखो, सामने यह दिगम्बर मुनिराज है और अब मै सम्पूर्ण पृथ्वीको जीती गयी ही मानता हू। कहा भी है —

'आरूरोह रथ पार्थ गाण्डीव चापि धारय।
निर्जिता मेदिनी मन्ये निर्ग्रन्थो यतिरग्रत॥"

अर्थात् अर्जुन् तुम रथपर चढ जाओ और धनुष धारण करलो। सामने निर्ग्रन्थ मुनिराजके दर्शन होरहे है, इसलिए मै समझता हूँ कि अब हमने पृथ्वी जीतली—हमारी विजय अटल है।

विश्वदेव कहने लगा—राजन्, इसके सिवाय समस्त शकुन शास्त्रोमे एक और सुभाषित आया है और जिसे सब लोग जानते भी है। वह सुभाषित निम्न प्रकार है—

"श्रमणस्तुरगो राजा मयूर कुञ्जरो वृष।
प्रस्थान वा प्रवेशे वा सर्वे सिद्धिकरा मता॥"

अर्थात् श्रमण (दिगम्बर मुनि), घोडा, राजा, मोर, हाथी और वृषभ, ये घरसे प्रस्थान करते समय या घरमे प्रवेश करते समय कार्य-सिद्धिके सूचक है।

राजन्, ज्योतिष शास्त्रमे भी विद्वानोने एक सुभाषित लिखा है, जिसे ससारमे खूब ही प्रसिद्धि और यश मिला है। वह सुभाषित निम्न प्रकार है—

पद्मिन्यो राजहसाश्च निर्ग्रन्थाश्च तपोधना।
यद्देशमभिगच्छन्ति तद्देशे शुभमादिशेत् ॥"

अर्थात् पद्मिनी स्त्रिया, राजहस और निर्ग्रन्थ तपस्वी जिस प्रदेशमे रहते है, उस प्रदेशमें सर्वत्र मङ्गल रहता है।

राजन्, जनताको पुण्य प्रदान करनेवाले धर्मशास्त्रोमे भी विद्वानोंने एक बहुत उत्तम सुभाषित कहा है। वह सुभाषित इस प्रकार है—

"योगी च ज्ञानी च तपोधनाश्च शूरोऽथ राजा च सहस्रदश्च।
ध्यानी च मौनी च तथा शतायु सदर्शनादेव पुनन्ति पापान् ॥"

अर्थात् योगी, ज्ञानी, तपस्वी, शूरवीर, राजा, घोडा, ध्यानी, मौनी और सौ वरसका मनुष्य—इन सबके दर्शन मात्र ही पापोंको धो डालते है।

विश्वदेव कहने लगा—"इसलिए राजन्, शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके ध्येयसे प्रस्थान करने वाले हम लोगोके मार्गमे जो ये मुनिराज दिखलायी दिये है सो हमारे लिए यह बडा भारी शकुन है। जगत्को पवित्र करनेवाले और क्रोधादि शत्रुओपर विजय प्राप्त करने वाले इन मुनिराजके दर्शनसे हमारे कार्यकी निश्चय ही सिद्धि समझिये।

राजन्, इतना ही नही मुनिराजका यह दर्शन इस बातकी ओर सकेत कर रहा है कि प्रभात होते ही स्वय मगधनरेशको त्रिलोकसुन्दर हाथी लेकर यहाँ उपस्थित होना चाहिए।" जब महाराज सोमप्रभने विश्वदेवकी यह बात सुनी तो वह बडा ही प्रसन्न हुआ।

दूसरा दिन हुआ। मगधनरेश त्रिलोकसुन्दर हाथी ले कर सोमप्रभके निकट आया और उसने यह हाथी सोमप्रभके लिए सहर्ष भेटमे दे दिया। सोमप्रभने मगधाधिपति बसुपालका बडा ही सत्कार किया और उस हाथीको ले कर उसने अपनी सेनाके साथ नगरमे प्रवेश किया।

इधर सोमशर्माने पूर्व वैरके कारण ध्यानावस्थित मुनिराज सोमदत्तको तलवारसे मार डाला और इसके पश्चात् वह नगरमे आ गया।

प्रात कालके समय जब महाराज सोमप्रभको मालूम हुआ कि सोमशर्माने मुनिराज सोमदत्तको मार डाला है तो उसने दुराचारी, मुनिहत्या करने वाले पापी सोमशर्माको पाँच प्रकारका दण्ड दिया। साथ ही इस मुनिहिंसाके कारण दुष्ट बुद्धि सोमशर्माको सात दिनके भीतर ही उदम्बर कोढ निकल आया। इस प्रकार उसका सारा शरीर कुष्ट रोगसे गल गया और अन्तमे मर कर वह तेतीस सागर प्रमाण स्थितिवाले सातवे नरकमे जा पहुँचा।

जब वहाँके अनन्त दु खोको सहता हुआ वह इस नरकसे निकला तो स्वयम्भुरमण समुद्रमे एक हजार योजन विस्तार वाला तिमिङ्गल नामका मत्स्य हो गया। वहाँ रह कर इस मत्स्यने विविध भाँतिकी पीड़ा सही और अन्तमे मर कर बाईस सागर प्रमाण स्थितिवाले छठवे नरकमे जा गिरा। जब इस नरककी स्थिति समाप्त हुई तो मर कर यह अनेक महान् हाथियोको भयभीत करने वाला दुष्ट सिंह हुआ। जब इसकी सिंह पर्यायकी स्थिति सम्पूर्ण हुई तो यह पाचवे नरकमे पहुचा और वहाँ अनन्त वेदना भोगने वाला भयकर नारकी हुआ। जब इस नरकके कष्टोको भोगता हुआ यहाँसे निकला तो गुमचीके समान लाल आँखो वाला महा भयकर काले वर्णका साँप हुआ। जब इस पर्यायसे भी मरा तो

चौथे नरकमें पहुंचा और जब यहाँसे निकला तो वह व्याघ्र-की पर्यायमे उत्पन्न हुआ। जव यह इस व्याघ्र पर्यायसे उन्मुक्त हुआ तो तीसरे नरकमे पहुचा और जब यहाँसे निकला तो अत्यन्त दुष्टात्मा पक्षी हुआ। जब इस पर्यायसे छूटा तो दूसरे नरकम गया और जब महान् दुखोको भोगकर यहाँसे निकला तो सफेद बगुला हो गया। जब यह इस बगुलेकी पर्यायसे छूटा तो अनेक दु.खोसे आकीर्ण प्रथम नरकमे पहुचा और वहाँ एक सागरकी आयु बिता कर जब बडे क्लेशसे निकला तो राजन्, यह तुम्हारे यहाँ पूतिगन्धकुमार हो गया, जिसका सारा शरीर कोढसे गला जा रहा है"।

पूतिगन्धकुमारने इस प्रकार जिनराजके मुखसे अपने पूर्वभवकी कथा सुनी। और वह जिनराजके चरणोमे विनत होकर भक्तिसे प्रार्थना करने लगा—भगवन्, यह बतलाइए कि अन्य भव-भवान्तरमें उपार्जित किये गये इस तीव्र पाप कर्मका किस प्रकार परिक्षय होगा ?

जिनराज कहने लगे—वत्स, यदि तू अपने पाप-कर्मसे तंग आ गया है तो रोहिणी नक्षत्रमें उपवास कर।

पूतिगन्धने जिनराजकी यह बात सुनी तो वह भगवान्से पूछने लगा—भगवन्, रोहिणी नक्षत्रमे किस प्रकार उपवास किया जाता है ? सो बतलाइए।

जिनराज कहने लगे—"वत्स! यह उपवास जब चन्द्रमा रोहिणी नक्षत्रमें रहता ह तब किया जाता है। इसी प्रकार इस अनुष्ठानके करनेसे तीन सालम चालीस उपवास हो जाते है। अथवा पाचवर्ष, नौ दिन तक करनेसे पाप-समूहको धोने-वाले सडसठ उपवास होजाते है। और इस प्रकार जब यह व्रत-विघान विधिवत् समाप्त हो जाय तो चौवीस तीर्थकरोका मण्डल बनवाना चाहिए। और इसके नीचे आठपुत्र और चार पुत्रियों के साथ अशोक रोहिणीका चित्र वनाना चाहिए। यह विधि

नि.सन्देह शोक दूर करनेवाली है। इसके पश्चात् भगवान् वासुपूज्यकी विविध प्रतिमा निर्माण करा कर उसकी महान उत्सवके साथ पूजा करनी चाहिए। और चार प्रकारके सघ को यथायोग्य आहार, ज्ञान, औषधि, अभय और वस्त्रोका भक्तिपूर्वक दान करना चाहिए। हे वत्स, इस विधानके माहात्म्यसे चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो, देव, असुर, मनुष्य तथा विद्याधर आदिमे जन्म लेकर पूजनीय तथा बन्दनीय बनता है और समस्त कर्मोका क्षय करके मोक्षको प्राप्त कर लेता है।"

इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्के उपदेशसे पूतिगन्धकुमारने सम्यक्त्व-लाभ करके रोहिणीमे उपवास करना निश्चित कर लिया। इतना ही नही, उसने जिनराजके निकट पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ले लिये। इस प्रकार सम्यक्त्व और धर्मके प्रभावसे पूतगन्धिकुमार सुगन्धिवाहन बन गया—उसके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे सुगन्धि निकलने लगी। ठीक है, धर्मसे क्या नही मिल जाता है ?

इस प्रकार जैनधर्मका पालन करते करते उसे एक महीना ही हुआ था कि उसने विरक्त होकर श्रीविजय नामके पुत्र के लिए अपना राज्य दे दिया और स्थिर मनसे चार प्रकारकी आराधनाओंका आराधन किया तथा अन्तमे सल्लेखनासे मरण करके प्राणत नामक स्वर्गमे, जहां देवोकी दुन्दुभियोकी ध्वनि हो रही थी, बीस सागर प्रमाण स्थितिवाला महर्द्धिक देव हो गया।

उसने पहले अचिन्त्य देव शरीरको देखा फिर अपना मुख देखा और पुन एक क्षणके पश्चात् वह सोचने लगा—यह क्या है ? मै कहां आगया हूँ ? मेरा यह कौनसा भव है ? मुझे यह सुख कैसे मिला ? हमारी ओर दृष्टि लगाये हुए कौन है ? यह कौनसा स्थान है ?

यह सोचते ही उसे पूर्व जन्मकी स्मृति सजग हो गयी। उसे देवताओंकी सेना और परिवारने घेर लिया और वह अभिषेक गृहमें पहुचा। वहा देवताओंने उसका खूब ही अभिषेक किया और इसके पश्चात् वे उसे अलङ्कारगृहमें ले गये। उसे मणिनिर्मित आभूषण पहिनाये गये और उसका शरीर उनकी चमकसे जगमगा उठा। उसके ऊपर चमर ढुरने लगे। दिशाओं मे "जय देव जय देव" का महान् कोलाहल होने लगा। दवताओंकी जय ध्वनि तथा दुदुभिकी ध्वनिसे आकाश भर गया।

इसके पश्चात् वह सभाभवनमें लाया गया, देवता प्रणाम करके उससे उचित कर्तव्य कार्यकी प्रार्थना करने लगे। उन देवोंने कहा—"देव, पहले आप जिन भगवान्‌की पूजा कीजिए। इसके पश्चात् अपनी सैन्यसामग्रीका निरीक्षण कीजिए। इसके बाद नाटक देखिए और फिर देवाङ्गनाओंके ललित विलासो को कृतार्थ कीजिए।"

पहले भवके पूतिगन्धिकुमारने जब इन समस्त देवोको अपने सामने उपस्थित और अपनी स्तुति करते हुए देखा तो वह बडा प्रसन्न हुआ और एक बार फिर सोचने लगा कि मैंने पूर्वभवमे कौनसा शुभ कार्य किया जिसके कारण मै इस स्वर्गमे उत्पन्न हुआ? तब उसने अवधिज्ञान रूपी नेत्रसे पूर्वभवका समस्त वृतान्त जान लिया और वह समस्त मुनिराजो-की स्तुति करने लगा। उसने अपने विमानमे बैठे बैठे ही मस्तकपर हाथ जोड़े और वह कहने लगा—उन गुरुके लिए नमस्कार हो जिन्होने मुझे धर्म ग्रहण कराया। वे गुरु महाराज, सबके तथा हमारे लिए नित्य पूजनीय है, जिनके प्रसादसे मैं उत्तम देवलोकमे उत्पन्न हुआ। इस प्रकार यह देव देवियोके साथ मनमाने भोगोको भोगता हुआ आनन्दके साथ जीवन विताने लगा।

जम्बूद्वीपमें पूर्व विदेह नामका क्षेत्र है। इस क्षेत्रके पुष्कलावती देशमे पुण्डरीकिणी नामकी नगरी है। उसका विस्तार नौ योजन और लम्बाई बारह योजन है और वह समस्त घनधान्यसे सम्पूर्ण है।

इस नगरीमे विमलकीर्ति नामका राजा रहता था। उसकी पत्नीका नाम श्रीमती था जो इसे बहुत ही प्रिय थी। इन दोनोंके पूतिगन्धिकुमारका जीव जो देव था, अर्ककीर्ति नामका पुत्र हुआ। अर्ककीर्ति बड़ा ही रूपवान् था और सब लोगोके मनको प्यारा था। अर्ककीर्तिका एक प्राणोसे भी प्यारा मित्र मेघसेन था। ये दोनों ही कुमार श्रुतसागर उपाध्यायको सौप दिये गये। दोनोंने ही कला और विज्ञानका खूब अध्ययन किया, शस्त्र विद्या और शास्त्र विद्यामे भी खूब श्रम किया और इस प्रकार बहुत जल्दी शास्त्र-समूहके पारगामी पण्डित बन गये।

परच, उत्तर दिशामे स्थित मथुरामे एक सागरदत्त नामके सेठ रहते थे। वे बड़े भारी धनी थे और उनके पास बहुत अधिक मणि थे। इनकी पत्नीका नाम जयमती था। जयमतीका शरीर रूप-राशिसे दमकता था, और उसके नेत्र कमलकी तरह मनोहर थे। इन दोनोके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम सुमन्दिर रक्खा गया।

तथा दक्षिण दिशाकी मथुरामे एक नन्दिमित्र नामके सेठ रहते थे। यह जनताके बड़े ही स्नेह-भाजन थे और धनी भी उतने ही थे। इनकी सहधर्मिणीका नाम धनदत्ता था। इन दोनोंके अतिशय कान्तिमान् सुशीला और सुमती नामकी दो कन्याएँ थी, जिनका विवाह नन्दिमित्रने सुमन्दिरके साथ विधिवत् कर दिया।

जिस समय इन दोनों कन्याओंका सुमन्दिरके साथ विवाह हो रहा था, उसी समय अर्ककीर्ति और मेंघसेन भी घूमते हुए

दक्षिण मथुरामे आये और अर्ककीर्ति इन दोनो कन्याओको देख कर बहुत ही आश्चर्यान्वित हुआ। अर्ककीर्तिने मेघसेनको सकेत किया और मेघसेनने उन दोनो कन्याओको सुमन्दिरसे छीन लिया। परन्तु ज्योही पुरवासियोने मघसेनको उन दोनो कन्याओको ले जाते हुए देखा, उन लोगोने इन कन्याओ-को मेघसेनके हाथसे छीन लिया। इसके बाद ये सेठ लोग तुरन्त ही पुण्डरीकिणी नगरीमे आये और उन्होने विमलकीर्ति राजासे इस घटनाका समस्त वृतान्त सुना दिया।

जब महाराजने इन सेठ लोगोके मुँह से अर्ककीर्ति और मेघसेनका यह काण्ड सुना तो उन्हे बडा ही क्रोध आया और उसी क्षण इन दोनो कुमारोको अपने देशसे निकाल दिया। इस व्यवहारसे दोनो ही कुमारोको बडा शोक हुआ और उनके मुख-कमल श्रीहीन होगये। अपने देशसे चलकर दोनो कुमार पताकावलिसे मण्डित वीतशोकपुरमे आ पहुचे।

वहा उस समय विमलवाहन नामके राजा राज्य करते थे, जो वडे ही नीतिज्ञ थे। इनकी पत्नीका नाम विमलश्री था, जो बहुतही निर्मल हृदयकी थी। इन दोनोके आठ कन्याएं थी। ये कन्याएँ बहुत ही रूपवान्, विनीत और सदाचारिणी थी और उनके नाम इस प्रकार थे—पहलीका नाम जयमती था। दूसरीका नाम सुकान्ता था, जिसका शरीर वस्तुत बहुत ही सुन्दर था। तीसरीका नाम कनकमाला था। चौथीका नाम सुप्रभा था। पाचवीका नाम सुमति था। छटवीका नाम सुव्रता था, सातवीका नाम विमला था और आठवीका नाम विमलप्रभा। प्रत्येक कन्या कला और विज्ञानमे निष्णात थी तथा इनकी कान्ति रतिकी कान्तिकी तरह मनोहर थी।

महाराज विमलवाहनसे एक बहुत सत्य भविष्यवाणी करने वाले ज्योतिषीने बतलाया था कि महाराज, इस महान् श्रीसम्पन्न जयमतीका वही पति हो सकता है, जो भली-

भांति चन्द्रकवेधका भेदन कर सके। इसलिए महाराज विमल-वाहनने जयमतीके विवाहके निमित्त अनेक राजपुत्रोंको बुलाया और वे सब सहर्ष इस महोत्सवमे सम्मिलित हुए। परन्तु इनमे से एक भी ऐसा नही निकला जो चन्द्रकवेधका भेदन कर सके।

चन्द्रकवेधको भेदनेकी प्रक्रिया विद्वानोंने इस प्रकार बतलायी है। सबसे पहले एक खभा खड़ा किया जाता है और उसके ऊपर रातमें चमकते हुए तारेकी तरह कुम्भकारके चाकके समान वेगसे घूमता हुआ एक चक्र रहता है। चन्द्रकवेध करने वाला व्यक्ति एक लाठीके सहारे उस चक्र पर उचक जाता है और घूमने लग जाता है। उस समय वह धनुषपर बाण चढ़ाता है और लक्ष्यकी ओर अपनी नजर गडाता है। तत्पश्चात् वह कुम्हारके चाककी तरह घूमता हुआ ही चक्रके पहले युग पर सात कदम चलता है। तदनन्तर वह चक्रके शेष छह युगोपर भी तीन तीन कदम चलता है। अर्थात् दूसरे युगसे सातवे युग तक वह उन पर घूमता हुआ ही तीन तीन कदम और चलता है। इसी प्रकार सात नम्बर तकके स्तम्भोपर चढता-उतरता हुआ वह व्यक्ति पृथ्वीके मानदण्डकी तरह खड़े हुए आठवे स्तभ पर उछल जाता है। इस स्तभके ऊपर बालसे बधी हुई एक कौड़ी लटकती रहती है और उसके नीचे सफेद धुरवाला एक अन्य चक्र घूमता रहता है। वेध करने वाला व्यक्ति अपने घूमते हुए चक्र पर आरूढ़ होकर पूर्वोक्त क्रमसे (पहले सात कदम और इसके बाद तीन तीन कदम) सात युगो पर चलता है। इसके पश्चात् वह लक्ष्य बाँधकर कौड़ीके उस बालका वेध करता है। विद्वानोने इस प्रकारके वेधको ही चन्द्रक (कौड़ी का) वेध बतलाया है। अन्य ग्रन्थोमे भी इस चन्द्रकवेधका उल्लेख पाया जाता है। अस्तु,

राजकुमार अर्ककीर्ति भी अपने मित्र मेघसेनके साथ वहां

आया हुआ था और बड़े ही कौतुकके साथ उस दृश्यको देख रहा था। वहीं पर बैठे हुए एक सज्जनने उससे कहा कि यदि तुम्हारा धनुर्वेदमे सुन्दर अभ्यास हो तो तुम ही चन्द्रकवेधका भेदन करो ना ? यह सुनते ही वह तुरन्त तैयार हो गया और उसने धनुषसे छोडे गये बाणसे चन्द्रकवेधका भेदन कर दिया। चन्द्रकवेधका भेदन करके उसे बडा ही आनन्द हुआ। उसने विमलवाहनके द्वारा प्रार्थना पूर्वक दी गयी जयमती आदि आठ कन्याओके साथ विवाह कर लिया। इस प्रकार अर्ककीर्ति रूप, कान्ति और विभूतिमे देवियोके समान सुन्दर इन कन्याओके साथ भोगोको भोगता हुआ वीतशोकपुरमे ही रहने लगा।

एक समयकी बात है। अर्ककीर्तिकुमारने उपवास किया, जिन भगवान्‌की पूजा की और रातके समय वह जिनमन्दिरमें ही सो गया। इतनेमे चित्रलेखा विद्याधरीने सोये हुए अर्ककीर्ति को देखा और वह देखते ही इसके अतिशय रमणीय रूप पर मोहित हो गयी और इसे उठा कर वेगसे आकाशमार्गसे चल पडी। उसने विजयार्ध पर्वतपर ले जाकर सुखपूर्वक सोये हुए अर्ककीर्तिकुमारको सिद्धकूट जिनालयमे छोड दिया।

सवेरे ज्यो ही अर्ककीर्तिकुमारकी निद्रा भग हुई, वह उठा और उसने अपनेको विजयार्ध पर्वतके जिनमन्दिरमे पाया। वह ज्यो ही इस मन्दिरके गर्भालयमें पहुचा त्यो ही इसके वज्रमय किवाड तुरन्त ही खुल गये। इसने उस मन्दिरमे विराजमान जिन भगवान्‌की प्रतिमाकी भक्तिपूर्वक स्तुति की और वह मन्दिरके मण्डपमे आ बैठा।

जब उस मन्दिरकी रक्षा करने वाले विकटदन्त विद्याधरने यह घटना देखी तो वह तुरन्त ही अर्ककीर्तिकुमारके पास आया और बडे ही विनयके साथ कहने लगा—हे कुमार ! तुम

जिस निमित्तसे एक विद्याधरीके द्वारा यहाँ लाये गये हो। मै उसका कारण बतलाता हूँ तुम एकचित्त हो कर सुनो।

"इसी विजयार्ध पर्वत पर अभ्रपुर नामक विशाल नगर है। उसमे पवनवेग नामका विद्याधर रहता है और उसकी पत्नीका नाम गगनवल्लभा है। इन दोनोके एक वीतशोका नामकी पुत्री है। वीतशोकाके नेत्र नील कमलकी तरह मनोहर है, ओठ प्रवालकी तरह लाल है, वह सदा ही प्रसन्न रहा करती है और सम्पूर्ण कलाओंमे पारगत है।

"एक बार एक निमित्तज्ञसे महाराज पवनवेगने पूछा कि हमारी इस कन्याका पति कौन होगा तो उसने कहा कि जिसके आने पर सिद्धकूट जिनालयके वज्रमयी किवाड खुल जावेगे, वह गुणवान् इस सर्वलक्षण सम्पन्ना और अतिशय रूपवती कन्याका पति होगा। राजाने निमित्तज्ञके इस वचनको सत्य मान मुझे यहा भेजा। कुमार, इस समय निमित्तज्ञकी वह बात सत्य प्रमाणित हुई है। इसलिए आप उठिये और कृपापूर्वक मेरे साथ पवनवेगके घर चलिए।

विद्याधरकी बात सुन कर अर्ककीर्तिको इतना आनन्द हुआ कि उसके शरीरमे रोमाञ्च हो आये और वह शीघ्र ही विद्याधरके साथ अभ्रपुरके लिए चल दिया। विद्याधर अर्ककीर्तिको लेकर अभ्रपुर पहुचा और उसे अनेक जातिके फलो से सुगन्धित उद्यानमे बिठाकर अपने स्वामीके पास जा निवेदन किया—राजन्, मै आपकी कन्याके पतिको ले आया हूँ। वह बहुत ही रूपवान् है और मै उसे अभी नगरके उद्यानमे बिठा कर ही यहा आ रहा हू।

विद्याधरकी बात सुनकर पवनवेगके मनको बड़ा सतोष हुआ। उसने विकटदन्त विद्याधरको खूब इनाम दिया तथा उसका बडा सन्मान किया। इसके पश्चात् वह चतुरङ्ग सेना-के साथ अर्ककीर्तिको लेने पहुँचा और अर्ककीर्तिने माङ्गलिक

गाजे-बाजेके साथ श्वसुरके घरमे प्रवेश किया । इसके पश्चात् उसने पवनवेगके द्वारा दी गयी उसकी वीतशोका कन्याके साथ विधिपूर्वक विवाह कर लिया । अर्ककीर्तिकुमारने इकतीस कन्याओके साथ और विवाह किया और इस तरह विद्याधरोकी सम्पत्तिका भोग करता हुआ वह वहाँ पाच वर्ष तक रहा ।

एक दिन अर्ककीर्तिकुमारको अपने घरकी याद आयी । वह अभ्रपुरसे चल दिया और अञ्जनगिरि नामके नगरमे जा पहुचा । जैसे ही वह इस नगरके निकट पहुचा, उसे विशाल जन-समुदाय और दिव्य विमान दिखलायी दिये और वह एक क्षणके लिए वही पर ठहर गया ।

इस नगरमे महान् बलवानोके बलको भी चूर करने वाला प्रभञ्जन नामका राजा रहता था । प्रभञ्जनकी पत्नीका नाम नीलाञ्जना था जो बडी ही सुलक्षणा थी । इन दोनोके आठ कन्याए थी । ये सभी कन्याए महान् रूपवती थी । इनके दाँत मोतीके समान स्वच्छ-सुन्दर थे और अवस्थानुसार ये युवती हो चली थी । इनमें से पहिलीका नाम कनकमदना था, दूसरीका नाम विपुला था, तीसरीका नाम वेगवती था, चौथीका नाम कनकमाला था, पाँचवीका नाम विद्युतप्रभा था, छटवींका नाम प्रभा था, सातवीका नाम जयमती था और आठवीका नाम सुकान्ता था ।

अर्ककीर्ति कुमार भी-जन-समूहके साथ राजाके उद्यानकी ओर चल दिया और वहासे लौट कर नगरमें जाने लगा । इसी बीच अञ्जनगिरि नामके सबल राज-हाथीने अपने बाँधनेके खभेको उखाड डाला, महावतको भी मार डाला । और वह उन्मत्त होकर जन-समूहको मारनेके लिए तैयार हुआ । यह देख कर अर्ककीर्ति कुमार ने कन्याओको अपने पीछे करके आगे बढ कर हाथीको रोक दिया । वह शीघ्र ही उछला और हाथीके दातो पर अपने पैर जमाकर उस पर चढ़ गया और

उसके दोनों गण्डस्थलोंमे जोरके मुक्के लगाकर उसने हाथी को बसमे कर लिया । और उस पर चढ कर सहर्ष नगरमे प्रवेश किया। राजा और उसके परिजन बड़े ही आश्चर्यके साथ इस अपरिचित तेजस्वी कुमारको देख रहे थे। उसने निमित्तज्ञके कथनानुसार उसके साथ अपनी आठो कन्याओका विधिवत् विवाह कर दिया ।

अर्ककीर्तिकुमार इन कन्याओंके साथ भोग-विलास करता हुआ कुछ दिन तक वीतशोकपुरमे ही ठहरा। फिर वह अपने मित्र मेघसेनके साथ पुण्डरीकिणी नगरीमे आ पहुचा ।

यहाँ आकर दोनों मित्र नगर-द्वारके बाहर ठहर गये और नगरमे ऊट तथा खच्चरोंपर बर्तन भर कर बर्तनोका, कभी सुगन्धित इत्र आदि पदार्थोका, कभी ताम्बूल लगाने और बेचने का और कभी रत्नोके क्रय-विक्रयका व्यापार करने लगे। एक दिन अर्ककीर्तिने वेश्याका रूप बनाकर पिताके आगे लोगोंके मनको आश्चर्यमें डालने वाला नृत्य भी किया। इस प्रकारसे मनस्वियोके मनको आश्चर्यमे डालने वाले विविध कौतुकपूर्ण कार्योको करते हुए अर्ककीर्ति अपने कला कौशलका प्रकाश करने लगा और उसी स्थान पर ठहरा रहा।

एक दिनकी बात है। अर्ककीर्तिने अपने पिताके साथ युद्ध करनेका निश्चय किया। उसने एक विशाल चतुरङ्ग सेना तैयार की और राजाकी समस्त गायोको घेर लिया।

जब राजाको मालूम हुआ कि उसकी समस्त गाये किसी विपक्षीने घेर ली है और वह सरलतासे उन्हे छोड़ना भी नही चाहता है, तो उसे बडा क्रोध आया और वह इससे युद्ध करनेके लिए अपने नगरसे चल दिया। दोनों ओरसे युद्ध छिड़ गया । घोडे घोड़ोसे भिड़ गये। हाथी हाथियोसे टक्कर लेने लगे, पदाति पदातियोंसे लड़ने लगे, रथ रथोका सामना करने लगे। एक हाथीने दूसरे हाथीको मार दिया। घोड़े-

ने दूसरे घोडेको खतम कर दिया। पदातिने दूसरे पदातिको मार डाला और एक रथने दूसरे रथको चूर-चूर कर दिया। सुर और असुर सब लोग यह युद्ध देखने आ गये और इसमे होने वाले महान् जन-सहारको देखकर भयभीत होने लगे। इतनेमे ही अर्ककीर्तिने अपना धनुष खीचा और अपने नामसे अङ्कित बाणको तुरन्त ही अपने पिताकी ओर छोडा। अर्ककीर्तिके द्वारा छोडा गया यह महान् बाण बडी ही मन्द-मन्द गति से चलकर उसके पिताकी गोदमे जा गिरा।

जब राजाने अपनी गोदमे आये हुए इस बाणको देखा और उसपर अपने चिरञ्जीव पुत्र अर्ककीर्तिका नाम अङ्कित पाया तो राजाका हृदय आनन्दसे भर आया। दोनो अपने अपने वाहनोसे उतर पडे। युद्ध बन्द कर दिया गया। पिता–पुत्र दोनों ही सर्वाङ्गीण आनन्दके साथ सामने आये और अत्यन्त स्निग्ध हृदयके साथ प्रगाढ आलिङ्गन किया। दोनोने आपसकी कुशल–क्षेम पूछी और सानन्द राज भवन-मे आ पहुँचे।

महाराज विमलकीर्तिने अपने पुत्रके आगमनके हर्ष में इच्छानुसार दान दिया। इसके पश्चात् उसने अपने विजयी महामना अर्ककीर्तिकुमारके लिए समस्त राजाओके साक्ष्यमे अपनी सम्पूर्ण राज्य-लक्ष्मी समर्पित कर दी। और समस्त बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहको छोडकर श्रीधर मुनिराजके निकट जैन दीक्षा ले ली।

विमलकीर्तिने अपने जीवनमे अत्यन्त कठिन तप करके समस्त कर्मोका नाश किया और अन्तमे निर्वाणको प्राप्त किया।

अर्ककीर्तिने क्रमसे सम्पूर्ण चक्रवर्तीकी विभूतिको प्राप्त किया और आनन्दसे विस्तृत साम्राज्यका सचालन करने लगा।

एक दिन की बात है। अर्ककीर्ति महाराज हिमालयके शिखरोंकी तरह शुभ्र और विचित्र शिखर वाले राज-भवनके ऊपर बैठा हुआ था। उस समय इसने एक सुन्दर मेघके दर्शन किये और ज्यो ही उसे चाकसे भूमिपर चित्रित करनेको तैयार हुआ तब तक न मालूम वह कहाँ विलीन हो गया। यह देखकर अर्ककीर्तिको बडा वैराग्य हुआ। उसने यशोमतीके ज्येष्ठ पुत्र विमलकीर्तिको जो सर्वगुण सम्पन्न और राज्य–सचालनके योग्य था, बुलाया और समस्त सामन्तो तथा मन्त्रियोके सामने अपना सम्पूर्ण महान् साम्राज्य-पद समर्पित कर दिया। इसके पश्चात् उसने समस्त बन्धु बान्धवोंसे पूछा और उत्कट वैराग्यसे प्रेरित होकर शीलगुप्त मुनिराजके निकट दीक्षा ले ली। उसने इतनी उग्र तपस्या की, जो साधारण जनके लिए अत्यन्त कठिन हो सकती है। जब आयुका केवल एक महीना ही शेष रहा, तब उसने सल्लेखना ले ली। चार प्रकारकी आराधनाओका विधिवत् आराधन किया और पवित्र भावोके साथ शरीर छोडा तथा अच्युत स्वर्गमे, बाईस सागरकी आयुवाला देव हो गया।

इधर पूर्वोक्त पूतिगन्धाने भी श्रावकके व्रतोका पालन करके तथा रोहिणी व्रतको स्वीकार करके समाधिपूर्वक मरण किया और अच्युत स्वर्गमे जन्म लिया तथा पन्द्रह पल्य प्रमाण आयुको लेकर इसी पूर्वभवके अर्ककीर्तिके जीव तथा वर्तमानमे अच्युत स्वर्गके देवकी महादेवी हो गयी।

अशोक, तुमने इस देवीके साथ मन वाछित भोग भोगे और जब तुम वहाँसे च्युत हुए तो यह जन्म पाया। और पहले भवकी पूतिगन्धा, जो स्वर्गमे तुम्हारी प्रिय महादेवी थी, आयुके समाप्त होने पर वहाँसे च्युत होकर भूतल पर आयी। और वह अङ्गदेशकी चम्पा नगरीके मघवा राजाकी श्रीमती पत्नीके रोहिणी नामकी कन्या हुई, जो

तुम्हारे पास बैठी ही है। यही फिरसे तुम्हारी प्राण-प्रिया महादेवी होगयी है।"

अशोकने चारण ऋद्धिधारी रूपकुम्भ मुनिकी बात सुनी और बोला—महाराज ! अब आप कृपा कर मेरे पुत्रोके तथा पुत्रियोके भवान्तर बतलाइए।

रूपकुभ मुनिराज कहने लगे :—

"जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमे शूरसेन नामका देश है। इस देशकी उत्तर मथुरामें श्रीधर नामका राजा रहता था। इसकी महादेवीका नाम विमला था। इन दोनोके एक सुन्दर कन्या थी, जिसका नाम कमला था। इस राजाके अग्निशर्मा नामका एक पुरोहित ब्राह्मण था, जो दरिद्र कुलमे उत्पन्न हुआ था। उसकी पत्नीका नाम तिलका था। दोनोमे बडा ही हार्दिक अनुराग था। यथा समय इन दोनोके सात पुत्र उत्पन्न हुए। पहलेका नाम अग्निभूति था, दूसरेका नाम श्रीभूति था, तीसरेका नाम वायुभूति था, चौथेका नाम विशाखभूति था, पाँचवेंका नाम विश्वभूति था, छठवेंका नाम महाभूति था, और सातवेका नाम सुभूति था। जैसे ही वे बडे हुए, वेद और स्मृति शास्त्रके तथा अन्य अनेक शास्त्रोके पारगत विद्वान् होगये। परन्तु सबकेसब दरिद्र थे अत एक दिन वे सब पाटलिपुत्र की ओर चल दिये। इस नगरसें सुप्रतिष्ठ नामका राजा रहता था, जिसकी पत्नीका नाम स्वरूपा था। इन दोनोके महान् बलवान सिंहरथ नामका पुत्र था।

इसी नगरमें विगतशोक नामका दूसरा राजा रहता था। विगतशोककी पत्नीका नाम रूपश्री था और दोनोंके एक पुत्री थी, जिसका नाम कमला था। कमलाके माता पिताने सिंहरथ के साथ अपनी पुत्रीका विवाह कर दिया।

जब उन ब्राह्मणोंने इन दोनोके विवाहको देखा तो वे सोचने लगे—देखो, दुख है कि जो हम जैसे पापियोने पूर्व

जन्ममें समस्त दुःखोको दूर करने वाला दया-प्रधान जैनधर्म अङ्गीकार नही किया। धार्मिक पुरुषोके ही वभूतिया होती है और महान् दु ख पापियोको ही होता है।

यह सोचकर वे सब यशोधर मुनिराजके पास पहुचे और बडी भक्तिके साथ उनसे धर्मोपदेश सुनानेकी प्रार्थना करने लगे।

जब यशोधर मुनिराजने इन लोगोंकी प्रार्थना सुनी तो वे सातों ही भाइयोको निम्न प्रकारसे धर्मोपदेश करने लगे—“ब्राह्मणो, जो मनुष्य मानव जन्म प्राप्त करके भी धर्म नही करता है, वह निधिको सामने देखकर भी आँखोसे अन्धा बन जाता है। उत्तम कुल और महती सम्पत्ति धर्मसे ही मिलती है। धर्मसे ही धनकी प्राप्ति होती है और धर्मसे ही मनुष्यको यश मिलता है। ससारमे धर्म ही वशीकरण है और धर्म ही सर्वोत्तम चिन्तामणि है। धर्म ही धनकी पवित्र धारा है और धर्म ही सम्पूर्ण कामनाओको पूर्ण करने वाली कामधेनु है। यशोधर महाराज कहते गये—ब्राह्मणो, हम धर्मके सम्बन्धमे अधिक क्या कहें? सक्षेपमे, ससारमे जितने मन और इन्द्रियोके प्रिय और आकर्षक पदार्थ मिलते है, वह सब धर्मका माहात्म्य है।”

जब ब्राह्मणोंने मुनिराजसे धर्मका फल सुख प्राप्ति और अधर्मका फल दु ख प्राप्ति सुना तो वे सबके सब संसारसे बडे ही उदास और विरक्त हुए और यशोधर मुनिराजके पास दीक्षित हो गये। अपने जीवनमे इन सबने बडा कठिन तप किया और समाधि पूर्वक मरण करके सौधर्म स्वर्गमें महर्द्धिक देव हो गये। वे लोग सौधर्म स्वर्गमे दो सागर तक सुख भोगते रहे और जब स्वर्गसे च्युत हुए तो रोहिणीके वीतशोक आदि नामके पुत्र हुए।

मुनिराज, अशोक महाराजसे कहने लगे--राजन् ये
तुम्हारा अत्यन्त सौभाग्यशाली लोकपाल कुमार भी पूर्वजन्ममे भलु क्षुल्लक था; परन्तु उसने उस समय पिहितास्रव नामके मुनिराजके निकट श्रावकोंका उत्तम धर्म और सम्यक्त्व ग्रहण किया। उसका ज्ञान निर्मल हो गया और वह आकाशगामिनी विद्यासे समस्त कर्मभूमियोके कृत्रिमाकृत्रिम जिन चैत्यालयोकी भक्तिके साथ तीनो सन्ध्याओके समय, पूजा करने लगा।

इस प्रकार जिनभक्ति परायण क्षुल्लकने आयुके अन्तमे समाधिपूर्वक मरण किया और वह देव तथा दुन्दुभियोकी ध्वनिसे मुखरित सौधर्म स्वर्गमे जाकर देव हो गया। वहाँ इसने पच्चीस पल्य प्रमाण दिव्य सुखको भोगा और जब वहाँसे च्युत हुआ तो लोकपाल नामका रोहिणीका पुत्र हो गया।

मुनिराज कहने लगे--राजन् ! यह तो तुम्हारे पुत्रोंके पूर्व-भवका वृत्तान्त है। अब मै तुम्हारी पुत्रियोंके पूर्वजन्मके वृत्तान्तको सुनाता हूँ।

जम्बूद्वीपके पूर्व विदेहमे कच्छ नामका धन-धान्य और जन-समूहसे भरा हुआ देश है। इस देशके विजयार्धके दक्षिण भागमें अलका नामकी नगरी है। इसमे गरुडसेन नामका राजा रहता था, जिसकी पत्नीका नाम कमला था। इन दोनोके चार पुत्रिया थी। चारो ही अतिशय रूपवती थी, कमलके समान सुन्दर मुखवाली थी और उनके शरीरकी आभा सोनेके समान थी। इन कन्याओके नाम इस प्रकार थे--पहलीका नाम कमलश्री था, दूसरीका नाम कमलगन्धिनी था, तीसरीका नाम कमला था और चौथीका नाम विमलगन्धिनी था।

एक समयकी वात है। ये चारों ही रूपवती कन्याएं बड़े ही आनन्दके साथ वृक्ष, पुष्प और फलसे सम्पन्न एक उद्यान-वनमें पहुची। उन्होने वहा एक सुव्रताचार्य नामके चारण ऋषि-को देखा। उन्हें भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और बड़े ही

कौतुकके साथ वे उपवासका माहात्म्य पूछने लगी–'भगवन्, कृपा कर यह बतलाइये कि यह लोकोपवास क्या चीज है ?

सुव्रताचार्यने इन कन्याओंकी धार्मिक बात सुनी तो वे उन्हे इस प्रकारसे उपवासका लक्षण बतलाने लगे–पुत्रियो, आगमके पाठी जिन भगवान्ने चार प्रकारका आहार बतलाया है–अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य । बल और कान्ति प्रदान करने वाले इस चार प्रकारके आहारका मन, वचन और काय-की शुद्धिपूर्वक जिनोपदिष्ट मुनिमार्गी साधुके द्वारा जो परि-त्याग किया जाता है, वह उपवास है । किन्तु लोकमे समस्त आहार लेते रहनेपर भी जो उपवास माना जाता है, वह सच्चा उपवास नही है । परन्तु समझमें नही आता–उन शास्त्रोके पाठक समस्त प्रकारके आहार लेते रहने पर भी उसे उपवास कैसे कहते है ? उनका कहना है–फल, मूलकन्द, दूध, पानी, हवन, ब्राह्मणवाचिक (ब्राह्मण का वचन), गरु-वचन और औषध–ये प्राणियोके आठ धार्मिक कार्य है ।

कहा भी है–

> "अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं पयः फलम् ।
> हविर्ब्राह्मणकामश्च गुरोर्वचनमौषधम् ॥"

अर्थात् इन आठ चीजोसे पाप नष्ट होते हैं–जल, मूल-कन्द, दूध, फल, हवनद्रव्य, ब्राह्मणकी भावना, गुरुका वचन और औषध ।"

"पुत्रियों, ससारमे इन आठ चीजोके सेवन करनेसे कभी भी उपवास नहीं हो सकता है । और न धर्मात्मा प्राणियोंको उसका फल ही प्राप्त होता है । उपवास तो तभी कहलाता है, जब पवित्र मुनि-मार्गसे समस्त प्रकारके आहारका परित्याग किया जावे । पुत्रियों, मै तुम्हे शुद्ध मनसे किये गये उपवासके माहात्म्यको बतलाता हूँ । उसे भाव-पूर्वक सुनो । अज्ञानी

जीवके द्वारा जो महान् भयकर पाप किया जाता है, वह सब उपवासके द्वारा आगमें डाले गये इंधनके समान नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार धूलि और मैलसे जिसका शरीर मलिन हो वह जलसे स्नान करनेपर निर्मल हो जाता है, उसी प्रकार उपवास रूपी जलसे आत्मा भी निर्मल हो जाता है। जिस प्रकार लोहेको खूब गरम करनेसे उसका सारा मैल निकल जाता है उसी प्रकार व्रत, उपवासरूपी जलसे पापरूपी मल भी दूर कर दिया जाता है। और जिस प्रकार जलका आगमन रुकने पर सूर्य धीरे धीरे तालाबको सुखा डालता है, उसी प्रकार मनुष्य भी इन्द्रियोको वशमे करके अपने पापोंका शोधन कर सकता है।

पुत्रियो, समस्त शास्त्रोमे लिखा है कि संसारमें अनशनसे बढ कर उत्तम तप नही है। इसको परम तप इसलिए कहा गया है कि यह समस्त पापोके क्षयका प्रधान कारण है। इसके सिवाय उपवाससे देव, गन्धर्व, यक्ष, पिशाच, साँप और राक्षस-जैसे भयकर जन्तु भी तत्काल वशमे हो जाते है। तथा प्रत्येक प्रकारकी विद्याएँ, मन्त्र, ओषधिया और वशमे करने वाले सब प्रकारके योग—ये सब उपवाससे सिद्ध हो जाते है। यहाँ तक कि व्यभिचारी मनुष्य भी उपवासके प्रभावसे प्रभावित किये जा सकते है।"

उपवासका सक्षेपसे माहात्म्य बतला कर सुव्रताचार्य मौन हो गये। तव राजकन्याओने उनसे पचमीके उपवासकी विधि पूछी।

कन्याओका प्रश्न सुन कर योगिराज कहने लगे—"पुत्रियों, जिनेन्द्र भगवान्ने दो प्रकारकी पचमी बतलायी है—एक कृष्णा पंचमी और दूसरी शुक्ला पचमी। यदि कोई भव्य कृष्णा पंचमी-का उपवास करता है तो उसे इस विधानमे पांच वर्ष और पाच महीनेका समय अपेक्षित होता है। यह सुनिश्चित है कि

इस कृष्णा पचमीके माहात्म्यसे जैन शासनका श्रद्धालु जीव उस समाधिको प्राप्त करता है, जिसके प्रतापसे भव्य जीव दो तीन भव धारण करके ही अविनश्वर सिद्धि–मुक्ति लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है। इतना ही नही, जो जिन भक्ति परायण और विशुद्ध हृदय एक जन्ममे भी समाधि पूर्वक मरण करता है वह क्रोध और मानरूपी महान् मीनपूर्ण और माया तथा लोभ-की तरंगोसे युक्त ससार समुद्रमे सात आठ भवोसे अधिक गोते नही लगाता है। आगममे कहा भी है–

"एकम्हि भवग्गहणे समाहिमरणेण कुणइ जो काल।
ण हु सो हिडइ बहुसो सत्तट्ठभवे पमोत्तूण ॥"

अर्थात्–जो व्यक्ति एक ही जन्ममे समाधिपूर्वक मरण करता है, संसारमे वह सात–आठ भवसे अधिक नही घूमता है।

सुव्रताचार्य कहने लगे–पुत्रियों, जिसे भव्यजन शुक्ल पंचमीमे करते है, वही श्रीपञ्चमी नामकी प्रथम उपवास विधि है। यह महान् विधि भी पाच वर्ष और पांच महीने तक उपवाससे ही पूर्ण होती है। इसके पश्चात् पुष्प, धूप और अक्षत आदि अष्ट द्रव्यसे जिनेन्द्र भगवानका पूजन करना चाहिए और घटा, चदोबा तथा झडियोंसे जिन-मन्दिरको सजाना चाहिए। इस दिन पञ्चमी विधानकी पांच पुस्तकें लिख कर साधुके लिए भक्ति पूर्वक दानमे देनी चाहिए और विधिपूर्वक औषधिदान करना चाहिए। इसके सिवाय मुमुक्षुओं-का कर्त्तव्य है कि वे इस दिन आहार, ज्ञान, औषध और अभय दानके साथ आर्यिकाओको वस्त्र दान भी दे। इस विधिके विधानसे भव्यजीव पञ्च कल्याणकोको प्राप्त करता है और अक्षय निर्वाण-पद भी।"

गरुडसेनकी पुत्रियोंने आचार्य महाराजकी यह बात सुनी तो उनका चित्त बड़ा ही पुलकित हुआ। उन्होने मुनिराजकी

वन्दना की और जैनधर्ममें आसक्ति भाव होनेसे पञ्चमी विधान-के पालन करनेकी प्रतिज्ञा भी ले ली। इस प्रकार पञ्चमी विधानको लेकर इन राज-पुत्रियोका मन सतोषसे भर गया और मुनिराजके चरण कमलको नमस्कार करके वे सब अपने घर चली गयी।

ये चारो राज-कन्याए मुनिराजके पाससे पञ्चमी विधान के पालनकी प्रतिज्ञा करके अपने राज-भवनकी छतपर आकर बैठी हुई थी कि इतनेमें शीघ्र ही उनके ऊपर गाज (वज्र) गिर पडा। गाज गिरनेसे उनकी तत्काल ही मृत्यु हो गयी और वे धर्मके प्रभाव से सौधर्म स्वर्गमे जा कर मनोरम देविया हो गयी। एक उपवासके पुण्य से ही उन्हें किन्नरियोके गानसे मनोरम स्वर्गमें जन्म लेनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ।

ये चारो ही देविया पाँच पल्य-प्रमाण समय तक सौधर्म स्वर्गमे देवताओके साथ दिव्य सुखका अनुभव करती रही और जब इनकी आयुका अन्त आया तो ये वहाँसे च्युत हो कर रोहिणीके गर्भमे आयी और राजन्, आपकी वसुन्धरा आदि नामकी कन्याएं हो गयी।

राजा अशोक रूप्यकुम्भ मुनिराजसे अपने पुत्र तथा पुत्रियों-के पूर्व भवान्तर सुन कर बड़े ही संतुष्ट हुए और रोहिणी भी प्रसन्न हुई। अन्य श्रोताओने भी इन लोगोके भवान्तर सुने तो कोई सम्यक् श्रद्धानी हो गये, कोई सच्चे श्रावक बन गये और कुछ समस्त आरभ-परिग्रह छोड़कर जैन यति हो गये।

इस बीच ही बसुमती नामकी कन्याने मुनिराजको प्रणाम किया। वह बड़ी ही प्रसन्न थी और उसका मन विस्मयसे भरा था। वह मुनिराजसे कहने लगी—भगवान्, आप मुझे बतलाइये कि मौनव्रतका क्या स्वरूप है और उसके उद्यापनकी कौनसी शास्त्रीय विधि है? सारी चीज आप स्पष्टतासे समझाइये।

रूप्यकुम्भ मुनिराजने जब इसकी इस प्रकार धर्मवर्द्धक बात सुनी तो वे इससे कहने लगे—"वत्से, भोजन करते समय जब तक सम्पूर्ण भोजन न कर लिया जाय, तब तक कुछ भी बात न करके भाव-पूर्वक उत्तम मौनका अवलम्बन करना चाहिए। इस प्रकार वर्ष या महीनेके प्रमाणके अनुसार इच्छाओको रोकनेसे मौनव्रतका पालन होता है और यह विधि समाप्त हुई कहलाती है। यह मौन समयकी मर्यादाके अनुसार ही समाप्त हुआ कहलाता है। अब मै तुम्हे सक्षेपमे इस व्रतके उद्यापनकी विधि बतलाता हूँ। वह इस प्रकार है—

जब मौन व्रत समाप्त हो जाय तो पुष्प, धूप, आदि द्रव्यो-से श्रीमहावीर भगवान्‌की महामह पूजा करनी चाहिए। फिर इस व्रतके आचरण करने वालोका यह कर्त्तव्य है कि वे कर्मो-के क्षयके लिए बड़ी ही भक्तिके साथ चार प्रकारके सघ-के लिए यथायोग्य आहार-वस्त्र आदिका दान करे। जैन मन्दिरमे चदोबा देने चाहिएँ और गभीर टकार करने वाले दिव्य घटे भी दान करने चाहिएँ। इस प्रकारके उद्यापनसे इस व्रतका विधान समाप्त कहलाता है। जो प्राणी इस मौन व्रतका पालन करते है और उसका विधिवत् उद्यापन करते है वे मर कर स्वर्गमे देव होते है। उन्हे अनेक प्रकारके दिव्य भोग प्राप्त होते है और उनका कण्ठ बडा ही मधुर होता है। इतना ही नही, इस मौन व्रतके फलसे वे जीव स्वर्गमे स्वर्गीय सुख तो भोगते ही है, परन्तु जब वहाँसे च्युत हो कर पृथ्वीपर अवतीर्ण होते है तो चक्रवर्ती आदिके भोगोका फिरसे अनुभव करते है। वे चिरकाल तक महीतलके मनवाछित भोगोको भोगते है और फिर जैनेन्द्री दीक्षा लेकर निष्कलङ्क बन जाते है तथा मोक्ष-लाभ करते है।

वत्से! अब मै तुम्हे मौनव्रतका फल बतलाता हूँ, सो सुनो। मौनव्रतके कारण मनुष्यकी वाणी कानोको सुखद मालूम

देती है, मनोहर लगती है। मनुष्य उसका विश्वास करते हैं और उसे प्रमाण भूत मान कर अङ्गीकार करते हैं। सारा ससार मौनव्रतीकी आज्ञा को अक्षरश उस प्रकार मानता है, जिस प्रकार एक देवकी आज्ञा शिरोधार्य की जाती है। यह भी मौनका एक उत्तम फल है। इसके सिवाय ससारमे जो चिरकाल तक मौनका आश्रय लेता है, वह जनताके प्रत्येक प्रकारके भय रोष और विषको दूर कर देता है। मौनके कारण मनुष्यका मुख कमल, मीठे शब्दोसे परिपूर्ण एव मनोहर हो जाता है और वह तथा उसका भाषण लोगोको रुचिकर होता है।

इतना ही नही जो दीर्घकाल तक मौनव्रतका आचरण करता है उसको दु साध्य विद्याएँ भी सिद्ध हो जाती हैं और समस्त जनताको यथेच्छ फल देने लग जाती हैं। इसके सिवाय जो कार्य अत्यन्त असाध्य होता है अथवा जिस कार्य-की सिद्धिमे सन्देह रहता है, वह कार्य मौनव्रतीके एक वाक्यसे ही सिद्ध हो जाता है। समस्त मुनिराज मौनसे ही कर्मोंको नाश करने वाले ध्यानका चिन्तन करते हैं, इसलिए मौन ही समस्त मनोरथोके सिद्ध करनेका प्रमुख साधन है। कोई मौनव्रती अणुव्रतोका पालन करता है, कोई गुणव्रतो और शिक्षाव्रतोका पालन करता है और इस प्रकार सिद्ध परमेष्ठी-का भक्त बनकर परम्परासे मोक्ष प्राप्त कर लेता है।"

वसुमतीने रूप्यकुम्भ मुनिराजके श्रीमुखसे इस प्रकार मौनव्रतका माहात्म्य सुना और उन्हे शिरसा तीन बार नमस्कार किया। इसके पश्चात् उसने मुनिराजके सामने मौनव्रतकी प्रतिज्ञा ले ली।

महाराज अशोक आदि भी इन मुनिराजसे पूर्वभव और धर्मोपदेश सुन कर और इन्हें भक्ति पूर्वक नमस्कार करके

हस्तिनागपुर चले गये। महाराज अशोक और रोहिणीके पुत्र भी अपने प्रासादोमे आ गये और वहाँ असीम भोगोका अनुभव करते हुए आमोद-प्रमोदके साथ अपने दिन बिताने लगे।

एक दिनकी बात है। महाराज अशोक और महारानी रोहिणी-दोनो ही स्नान करनेके पश्चात् सिहासनपर एक साथ बैठे हुए थे कि इतनेमे रोहिणीने अशोक महाराजके कानके पासमे काशके फूलकी तरह चमकता हुआ एक सफेद बाल देखा। महारानी रोहिणीने अपने हाथसे इस बालको निकाल लिया और अशोकके कमल-कोशके समान सुन्दर हाथपर रख दिया।

महाराज अशोकने महादेवीके द्वारा दिये गये इस सफेद बालको देखा तो वह चिन्तामे पड़ गया। उसके मनमे तुरन्त वैराग्य भाव जाग्रत हो उठा और वह भोग तथा शरीर आदिकी निन्दा करने लगा।

इस बीच ही वनपाल महाराजके पास आया और निवेदन करने लगा –"राजन्, भगवान् वासुपुज्य अपने उद्यानमे आये हुए है।" ज्यो ही राजाने यह सुखद समाचार सुना, वह तुरन्त ही सिहासनसे उठा। उसे बड़ा हर्ष हुआ और उस दिशामे सात कदम आगे जा कर उसने भगवान् वासुपुज्य को भावपूर्वक नमस्कार किया। तदनन्तर उसने वनपालको इनाम दिया और आनन्दके साथ सम्पूर्ण नगरमे मुनादी पिटाकर सम्पूर्ण जनताको भगवान् वासुपूज्यके समवसरणके आनेकी सूचना करवा दी।

अशोकने अपनी सम्पूर्ण राज्यश्री लोकपालकुमारके लिए दे दी और स्वयं महान् विभूतिसे सम्पन्न हो कर आदरके साथ उद्यानके लिए चल दिया। वह समवसरणमे पहुँचा और उसने भगवान्‌की तीन प्रदक्षिणाए की तथा उन्हे भक्ति पूर्वक नमस्कार किया, और भगवान्‌के निकट ही जैनी दीक्षा ले ली।

अशोक महाराज योगीश बन कर प्रखर प्रभा-पुञ्जसे चमकने लगे और वह उन वासुपुज्य भगवान्‌के गणधर हो गये, जिनकी इन्द्र तक स्तुति और विनुति किया करते है। तत्पश्चात् अशोकने चिरकाल तक बहुत ही उग्र तपस्या की और अन्तमे समस्त कर्मोका नाश करके परमोत्तम निर्वाणको प्राप्त किया।

महारानी रोहिणीने भी समस्त परिग्रह छोड़ दिया और भगवान् वासुपूज्य जिनेन्द्रको नमस्कार करके सुमति नामकी आर्यिकाके निकट दीक्षा ले ली। रोहिणीने इतनी कठोर तपस्या की जिसे साधारण स्त्री नही कर सकती है और अन्तमे कर्मोका उच्छेद करनेके लिए सल्लेखनाको भी विधिवत् अङ्गीकार किया। आयुके अन्तिम क्षण उसने समाधि पूर्वक विताये और मर कर वह अच्युत स्वर्गमे देव हो गयी।

रोहिणीने भावपूर्वक सिर्फ एक ही उपवास किया और उसके द्वारा इतना सुख प्राप्त किया जो जन साधारणके लिए बहुत ही दुर्लभ है।

इस प्रकार रोहिणी नक्षत्रमें किये गये उपवास-
के फलको बतलाने वाला अशोक और
रोहिणीका यह कथानक सम्पूर्ण हुआ।

---

५८. क्षीर कदम्बकी कथा

कुरुजाङ्गल देशमे हस्तिनागपुर नामका सुन्दर नगर था। इस नगरमे पाण्डु नामका राजा रहता था, जिसने अपनी कीर्तिसे आकाश तकको शुभ्र कर रक्खा था। पाण्डुकी दो पत्निया थी—एक कुन्ती और दूसरी माद्री। ये दोनों ही पत्निया वडी ही कुशल थी, रूपवती थी, युवती और बहुत ही मनोहर थी।

इनमेंसे कुन्तीके तीन पुत्र हुए—युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन। ससारमे इन तीनों पुत्रोका खूब ही यश फैला और ये बहुत ही लोक-प्रिय हुए। माद्रीके भी दो पुत्र हुए—एक नकुल और दूसरा सहदेव। ये दोनों भाई भी समस्त वन्धु-वान्धवोको आनन्दित करते थे, जन-प्रिय थे और कुलदीपक थे।

इसी नगरमे एक द्रोणाचार्य नामके धनुर्वेदके पारगत ज्ञानी आचार्य रहते थे। द्रोणाचार्यने अनेक शस्त्र और शास्त्रोंका अभ्यास किया था और इन दोनो ही विद्याओंके पडित इन्हें खूब ही मानते थे। द्रोणाचार्यकी पत्नीका नाम स्वस्तिमती था। वह द्रोणाचार्यको वहुत ही प्रिय थी। इन दोनोके एक पुत्र था, जिसका नाम अश्वत्थामा था। अश्वत्थामा वड़ा ही विचारशील और लोक-प्रिय था।

द्रोणाचार्य विनय और आचारके जानकार अर्जुन आदि भाइयोको धनुर्वेदका शिक्षण देते थे।

हस्तिनागपुरके निकट ही एक भीलोकी भयानक नगरी थी। इस नगरीमे क्षीरकदम्ब नामका एक भील रहता था, जो धनुर्विद्यामे बहुत ही निष्णात था। क्षीरकदम्वने धनुर्वेद सीखनेके लिए द्रोणाचार्यकी प्रस्तरकी मूर्ति बनायी। उसे प्रति दिन नमस्कार करता, बडी भक्ति करता और इस प्रकार इस मूर्तिको ही द्रोणाचार्य समझ कर वह धनुर्वेदकी शिक्षा लेने लगा। और इस प्रकार एक दिन वह सम्पूर्ण धनुर्वेदका पारगामी विद्वान् हो गया।

एक दिनकी बात है। अर्जुन आदि तीनो भाई अपने अपने धनुष लिये शिकारके लिए पर्यटन कर रहे थे कि घूमते घूमते भीलोकी इस नगरीमें आ पहुचे। इसी समय क्षीरकदम्ब भी वनमे विचर रहा था और वह भी अपने हाथमें धनुष-बाण लिये हुए था। सो यह भी विचरता हुआ इन अर्जुन

आदि कुमारोंके करीब आ पहुचा। इतनेमे बनमे शिकार खेलने वाले इन कुमारोका कुत्ता वहुत ही जोरसे और बुरी तरहसे चिल्लाया। जैसे ही क्षीरकदम्बने इस कुत्तेका कर्णकटु चिल्लाना सुना, उसने तुरन्त एक शब्दवेधी वाण इसके मुँह पर चला दिया।

अर्जुन इसदृश्यको देख कर बडा विस्मित हुआ। वह सोचने लगा हमलोगोके बीच तो और कोई ऐसा धनुर्वेद-विशारद है ही नही जो शव्दवेधी बाणका प्रयोग जानता हो। और इस कुत्तेके मुहपर शव्दवेधी बाण चलाने वाला यहाँ दिख भी नही रहा है। इतना सोच कर अर्जुन उस ओर चल दिया जिस ओरसे वह शब्दवेधी वाण आया था और कुछ दूर चलनेपर उसे धनुर्धारी क्षीरकदम्ब दिखलायी दिया। अर्जुन कुमारने जब अपने सामने इस महान् भयकर और सुसज्जित व्यक्तिको देखा तो वह कुतूहलवश उससे पूछने लगा—भद्र ! बतलाओ तो क्या शब्दविज्ञानके जानकार तुम्हीने इस कुत्तेके मुँह पर शब्दवेधी वाण चलाया है ?

क्षीरकदम्बने ज्यो ही अर्जुनका यह प्रश्न सुना, वह बडी ही विनयसे कहने लगा—हाँ स्वामिन्, मैंने ही इस कुत्तेके मुहपर शब्दवेधी वाणका प्रयोग किया है। अर्जुन क्षीरकदम्बसे फिर पूछने लगे—भद्र ! तुम कौन हो और तुमने धनुर्वेदकी शिक्षा किस आचार्यसे ग्रहण की है ? जव क्षीरकदम्वने देखा कि इस प्रश्नके साथ ही अर्जुन अपने मनकी उत्कट उत्सुकताके साथ उसके उत्तरकी प्रतीक्षा कर रहा है तो वह कहने लगा—स्वामिन् ! मेरा नाम क्षीरकदम्ब है और मै भीलोका सरदार हूँ। मैंने धनुर्वेदका सम्पूर्ण शिक्षण, शस्त्र और शास्त्रकी कलाओमें निष्णात द्रोणाचार्यसे लिया है।

क्षीरकदम्वके उत्तरसे अर्जुनका कौतुक और भी बढ गया। वह कहने लगा—अच्छा भाई, धनुर्वेदका उपदेश करने वाले उन

द्रोणाचार्यको दिखा सकोगे क्या ? इस प्रश्नके बाद ही अर्जुनने क्षीरकदम्बकी परीक्षा की तो उसे शृङ्गिका, वसुनन्द, करवाली, चक्र और चित्रदण्ड नामके पाचो प्रकारके आयुधोमे निष्णात पाया। इतना ही नही, अर्जुनने जब उसे चन्द्रकवेध आदि प्रयोगोमे भी बहुत ही कुशल पाया तो उसके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ और वह सोचने लगा—

आज यह किरात जातिका भील भूमण्डलपर अपने धनुर्वेदके विज्ञानमे द्रोणाचार्य और मुझसे भी बढ़ा-चढा है। द्रोणाचार्यने जो सातिशय उपदेश मुझे एकान्तमे दिया और बडे भारी यत्नके साथ दिया, वही उपदेश उन्होने वनमे इस क्षीरकदम्बके लिए भी दिया। अर्जुन सोचते सोचते कहने लगा—अथवा ठीक है, जिनके मनमे विवेक जाग्रत नही होता है उन महात्माओके स्वभावमे भी प्राय इस प्रकारका वैपरीत्य देखनेको मिलता है। देखो ना, स्त्री खलके साथ क्रीडा करती है, मेघ पर्वतपर बरसता है, लक्ष्मी कजूसका आश्रय लेती है और पडितजन प्राय: दरिद्र पाये जाते है। कहा भी है—

"अपात्रे रमते नारी गिरौ वर्षति माधव।
लुब्धमाश्रयते लक्ष्मी. प्राज्ञः प्रायेण निर्धन॥"

अर्थात्—नारी अपात्रमे रमण करती है और बादल पर्वत पर बरसते है। लक्ष्मी लोभीके पास जाती है और पडित प्राय: निर्धन होता है।

अर्जुनको यह विचार करते करते बडा ही आश्चर्य हुआ। वह तुरन्त हस्तिनागपुर आया और द्रोणाचार्यसे बड़ी विनयके साथ इस प्रकार निवेदन करने लगा—भगवन्, जिन विद्वानो-की कीर्ति सम्पूर्ण भुवनमे व्याप्त हो रही है, उन विद्वानोको दिया गया आपका धनुर्वेदका उपदेश म्लेच्छके हाथमे चला गया है।

जब द्रोणाचार्यने अर्जुनकी यह बात सुनी तो वे कहने

लगा–अर्जुन तुम यह कैसा समाचार सुना रहे हो । अरे वत्स, मैंने जो कुछ धनुर्वेदका उपदेश दिया है और जिसे दिया है वह आज भी ज्योका त्यो और जहाका तहा है वह कभी भी म्लेच्छके हाथ नही लग सकता । अर्जुन द्रोणाचार्यसे कहने लगा–नही महाराज, यह बात नही है । आपका उपदेश म्लेच्छ क्षीरकदम्बके हाथ लग गया है ।

ज्यों ही द्रोणाचार्यने गाण्डीवधारी अर्जुनकी यह बात सुनी वे तत्क्षण अर्जुनके साथ वृक्षोसे सघन भीलोकी नगरीमें जा पहुचे । जब द्रोणाचार्यने क्षीरकदम्बको देखा तो उन्हे बहुत ही कुतूहल हुआ और वे कहने लगे–वत्स, बतलाओ तो तुमने यह धनुर्वेद किसके पास सीखा ।

जब क्षीरकदम्बने द्रोणाचार्यका यह प्रश्न सुना तो वह बोला–भगवन्, मैंने धनुर्वेदकी यह शिक्षा द्रोणाचार्यके निकट सीखी है । द्रोणाचार्य सामने उपस्थित इस म्लेच्छसे पुन कहने लगे–वत्स, क्या तुम द्रोणाचार्यको पहिचानते हो । यदि पहिचानते हो तो बतलाओ वह कौन है और कैसे है ?

क्षीरकदम्ब द्रोणाचार्यका प्रश्न सुन कर कहने लगा–भगवन् मै द्रोणाचार्यको खूब अच्छी तरहसे जानता हूँ और आपको भी अभी हाल दिखला सकता हूँ । इतना कह कर वह द्रोणाचार्यको उस पाषाण प्रतिमाके निकट ले गया और कहने लगा महोदय, यही हमारे गुरु द्रोणाचार्य महाराज है ।

क्षीरकदम्बकी बात सुन कर द्रोणाचार्य कहने लगे–वत्स, यह तो बतलाओ, तुमने इन मिट्टीके द्रोणाचार्यके पास धनुर्वेदकी शिक्षा किस प्रकार ली ?

द्रोणाचार्यकी बात सुन कर क्षीरकदम्ब फिर कहने लगा–भगवन्, मैं आपको अपनी वह विधि बतलाता हूँ, जिसके कारण गुरु महाराज मेरे ऊपर प्रसन्न हुए और मैंने उनके निकट धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण की । भगवन्, अपने गुरु महाराज

की पूजाके लिए सबसे पहले मै फूल लाता था। फिर भक्तिसे उनकी तीन प्रदक्षिणा देता था और फूलोसे भक्ति और श्रद्धाके साथ उनके दोनो चरण कमलोंकी विधिवत् पूजा करता था। तत्पश्चात् मै अपने हाथमे धनुष लेता और गुरु महाराजसे पूछता कि मै किस प्रकार दृष्टि और मुष्टिकी सिद्धि करु और किस प्रकार निशाना लगाऊँ। भगवन्, आप विश्वास कीजिए, वस्तुत इन्ही द्रोणाचार्यके उपदेश और विनयसे मैने यह धनुर्वेदका विज्ञान प्राप्त किया है। ठीक ही है, विनय से क्या नही मिल सकता है। भक्तिसे गुरुजन सतुष्ट होते है। भक्तिसे देवता सतुष्ट होते है। भक्तिसे योगीजन प्रसन्न होते है। ससारमे वह कौनसा कार्य है, जो भक्तिसे साध्य न हो।

विशुद्ध हृदय द्रोणाचार्यने जब क्षीरकदम्बके मुखसे यह सब सार गर्भित वृत्तान्त सुना तो उनका मन सन्तोषसे भर गया और वह गाण्डीवधारी अर्जुनसे कहने लगे—देखो, इस क्षीरकदम्बने केवल गुरुभक्ति और विनयसे ही धनुर्वेदकी इतनी ऊची शिक्षा ले ली है और तुमने भी गुरुभक्ति और विनयसे ही यह शिक्षा प्राप्त की है। द्रोणाचार्यने उसके सामने इतना कह कर क्षीरकदम्बको अपना नाम बतला दिया।

ज्यों ही द्रोणाचार्यने क्षीरकदम्बको अपना नाम बतलाया वह बड़ी ही विनयके साथ पृथ्वीपर अपने घुटने टेक कर द्रोणाचार्यके चरणोमे झुक गया। द्रोणाचार्य बहुत ही प्रसन्न हुए और उन्होंने धनुर्वेद विशारद क्षीरकदम्बसे गुरु दक्षिणा माँगी। गुरु-भक्ति परायण क्षीरकदम्बने भी तत्काल ही अपना दाहिना अगूठा काट कर द्रोणाचार्यके लिए गुरुदक्षिणाके उपलक्ष्यमे दे दिया।

जिस प्रकार गुरु-भक्ति करने वाले म्लेच्छ क्षीरकदम्बको थोड़े ही समयमे धनुर्वेदकी सिद्धि प्राप्त हो गयी उसी प्रकार

जो मुनि जिनेन्द्र और गुरुकी भक्ति करता है उसे भी निर्वाण-विद्या निश्चयसे शीघ्र ही प्राप्त हो जाती है।

इस प्रकार द्रोणाचार्यसे समन्वित क्षीरकदम्ब-म्लेच्छेको धनुर्वेद विद्याकी प्राप्तिका सूचक कथानक सम्पूर्ण हुआ।

---

५९. पद्मरथ राजाकी कथा

भरतक्षेत्रमे विजय नामका देश है। इस देशमे भूमितिलक नामका नगर था। इस नगरके राजाका नाम प्रजापाल था। प्रजापाल बडे ही समुचित ढंगसे प्रजाका पालन करता था। इसकी पत्नीका नाम मनोरमा था, जो वास्तवमे बडी ही मनोरम थी।

प्रजापालके राज्यमे एक सेठ था, जिसका नाम सुन्दर था। सुन्दर सच्चा श्रावक था और अपने गुणोके कारण वह भी लोक प्रिय था। इसकी पत्नीका नाम सुन्दरी था और सुन्दरी अपने गुणोके कारण गुण सुन्दरी कहलाती थी। इन दोनोंके चित्त परस्परके प्रेमसे खूब ही सने हुए थे। दोनोके काल क्रम-के अनुसार सात पुत्र उत्पन्न हुए। सातो ही पुत्र श्रावक धर्म-म दीक्षित हो गये। इनमें सबसे छोटे पुत्रका नाम धर्मान्तरि था। धर्मान्तरि बड़ा ही धर्मात्मा था और इसकी पत्नीका नाम प्रियदत्ता था।

धर्मान्तरिका एक घनिष्ठ मित्र था, जिसका नाम विश्वा-नल था। विश्वानल जातिका ब्राह्मण था, परन्तु उसका मन अत्यन्त चचल रहता था और वह सदैव सप्त व्यसनमे तल्लीन रहता था। विश्वानलके ससर्गका प्रभाव धर्मान्तरिके

ऊपर भी पडा और वह भी धीरे धीरे व्यसनी बन गया। ठीक है, दुर्जनोका ससर्ग ही ऐसा होता है कि वह सज्जनोको भी दूषित कर डालता है।

विश्वानल और धर्मान्तरि—दोनोने मिल कर नगरमे अनेक बार चोरी की और पकडे गये, परन्तु सेठके लिहाजके कारण राजा इन दोनोको छोड़ता ही गया।

एक दिनकी बात है। दुष्टबुद्धि धर्मान्तरि चोरी करने के लिए किसीके घरमे घुसा और सिपाहियोके द्वारा पकड़ा गया। इस बार वह नगरसे निकाल दिया गया और बन्धु-बान्धवोसे बिछुड़कर अपनी माता, पत्नी और मित्रके साथ हस्तिनागपुर आगया। हस्तिनागपुर आ कर दोनों ही यमदण्ड कोतवालके निकटवर्ती मकानमें रहने लगे और उसके बलसे ही चोरी करने लगे।

एक दिनकी बात है। धर्मान्तरि एक मुनिराजके निकट पहुँचा और उनसे कुछ दिन तकके लिए धीका नियम ले लिया और यह भी नियम लिया कि जब तक मै सात कदम पीछे न हट लूँगा किसी भी प्राणीका वध नही करूँगा।

एक दिन ये दोनों साथी चोरी करनेके लिए निकले। परन्तु एक नाटक देखनेमे लग गये और इससे चोरी करनेका कुछ समय निकल गया। इस दिन धर्मान्तरि चोरी करने नही गया। वह घर लौट आया। आज सास-बहु साथ-साथ सोयी हुई थी। इसलिए जब धर्मान्तरिने अपनी पत्नीके साथ किसी दूसरेको सोते हुए देखा तो वह क्रोधसे भभक उठा। उसे बड़ी ही ईर्ष्या हुई और जैसे ही वह तलवार ले कर उसका वध करने-को तैयार हुआ, उसे मुनिराजके निकट ली हुई प्रतिज्ञाका स्मरण हो आया। और ज्यों ही धर्मान्तरि अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार सात कदम पीछे हटा, उसे अपनी पत्नीके पास सोती हुई माताका स्वर सुनायी दिया। उसके मनमें वैराग्य भाव

उदित हो उठा और वह तुरन्त ही घरसे चल दिया। उसने सोचा-देखो, एक ही व्रतके कारण आज मैंने अपनी पत्नी और माताके प्राण बचा लिए।

यह सोच कर वह मुनिराजके पास आया और बडे ही आदरके साथ मुनिराजसे पहले लिये हुए व्रतकी सामर्थ्य वतलाने लगा। धर्मान्तरिने इस बार भी मुनिराजसे धर्मोपदेश सुना और मद्य, मास तथा मधुके त्यागकी प्रतिज्ञा ले ली। तदनन्तर मुनिराजको नमस्कार किया और फिर यहाँसे चल दिया।

एक दिनकी बात है। दुष्ट विश्वानलने धर्मान्तरिको लोभ दिखाया और उसके कारण वह व्याधोके समूहके साथ चोरी करने चल दिया। ये व्याध चोर वहुत ही भयकर और बडे ही दुष्ट थे। इन लोगोने वन-खण्डमे धन और रत्नोसे सम्पन्न एक व्यापारियोके झुण्डको जा पकड़ा। और इन लोगोका समस्त धन छीन लिया और विश्वानल तथा धर्मान्तरिके जिम्मे छोड कर सबके सब भूख-प्यासकी वेदना मिटानेके लिए हस्तिनागपुर चल दिये। वहाँ पहुँच कर इन लोगोने एक दूसरेसे छिपा कर मद्य, मांस और मधुमे विष मिलाया और विश्वानल और धर्मान्तरिके पास आ पहुँचे। इनके आते आते रात हो गयी और रात्रि-भोजन त्यागके कारण इन दोनो मित्रोने यह भोजन नही किया। इस प्रकार इन दोनोंको छोड कर शेष समस्त चोरोने एक दूसरेके द्वारा लाये मास आदिको खा डाला। इन पापी चोरोको इस विषमिश्रित भोजनका पता नही था, अत. वे सबके सब इस भोजन द्वारा मर गये।

चोरीका सम्पूर्ण धन विश्वानल और धर्मान्तरिके हाथ लगा। ये दोनों इस धनको ले कर वहुत ही संतुष्ट हुए और अपने नगरको लौट आये। धर्मान्तरिने नगरमे पहुंच कर अपनी माँ और पत्नीको यह सब धन दे दिया। तदनन्तर वह इन दोनोसे

तथा अपने मित्र विश्वानलसे विना पूछे ही वहाँसे चल दिया और गुणधर आचार्यके पास जा पहुँचा। वहाँ पहुच कर इसने अपनी बहुत ही निन्दा की तथा आत्मीय धनस्वरूप तपकी प्राप्तिके लिए आचार्य महाराजसे प्रार्थना की।

मुनिराजने धर्मान्तरिके आन्तरिक उद्गार सुने और इसकी भव्यताको समझ कर इसे ससारसमुद्रसे पार करने वाली दिगम्बर दीक्षा दे दी। तदनन्तर धर्मान्तरिने आचाराङ्ग आदि द्वादशाङ्ग श्रुतका अध्ययन किया, धर्माचरण द्वारा अपनी आत्माको पवित्र बनाया और महान् तप करनेमे तत्पर हो गया।

एक बार विहार करते हुए यह धरिणीभूषण नामके उन्नत पर्वतपर, जहाँ तपस्वियोके अनेक आश्रम बने हुए थे, जा पहुंचा और स्थिर मनसे आतापन योग करने लगा।

इसके पश्चात् विश्वानलको अपने मित्र धर्मान्तरिके गुणोकी याद आयी और वह धरिणीभूषण पर्वतपर आतापन योगसे विराजमान धर्मान्तरि मुनिराजके पास जा पहुँचा। जव विश्वानलने मौनव्रतपूर्वक कायोत्सर्गमे स्थित धर्मान्तरिको देखा तो वह बड़ा ही क्रुद्ध हुआ और उसने तपस्वियोके व्रत ले लिये।

इधर जब योगिराज धर्मान्तरिने कायोत्सर्ग छोड़ा तो वह विश्वानल तपस्वीको समझानेके लिए उसके पास आये। इसे देख कर उनके मनमे हित-बुद्धि जागृत हो गयी और वे कहने लगे—विश्वानल! तुम समस्त सुखोके कारण जिनधर्मको ग्रहण करो। योगिराज धर्मान्तरिके इस प्रकार समझानेपर जव उसने कुछ उत्तर नही दिया तो वे कहने लगे—मित्र! तुम्हे भवान्तरमे इसका फल मालूम होगा। जिनधर्मसे विमुख विश्वानलसे इस प्रकार कह कर योगिराज वहाँसे चल दिये और अपने मन-वाञ्छित प्रदेशको विहार कर गये।

इधर विश्वानल मरा और तपस्वियोके व्रतके कारण सौधर्मेन्द्रके लोकपालकी सेनाका हाथी हो गया। उधर धर्मान्तरि योगिराजने भी दुष्कर तपस्या की और वह अच्युत स्वर्गमे बाईस सागर प्रमाण आयुवाला अच्युतेन्द्र हुआ।

एक बार ये दोनो मित्र नन्दीश्वर द्वीपमे पहुचे। वहाँ एक दूसरेके दर्शन किये और परस्परकी कुशल क्षेम पूछने लगे। तदनन्तर दोनोने धर्मकी परीक्षा करनेका निश्चय किया और इसके लिए ये दोनो कुतूहल वश वडे ही आनन्दके साथ यमदग्नि मुनिके पास आये। इन दोनो विचक्षण देवोमे एकने पक्षीका रूप धारण किया और दूसरेने पक्षिणीका रूप बनाया और इस प्रकार दोनो ही आकर कौतुकके साथ यमदग्निके पास जा बैठे।

इतनेमे पक्षीरूप देव पक्षिणीरूपी देवसे कहने लगा—प्रिये, आज समस्त पक्षी गण अपने स्वामीका सुमेरु पर्वतपर प्रसन्नतासे और माङ्गलिक जय ध्वनियोके साथ अभिषेक करके पट्टबन्ध करेगे। इसलिए हे पद्मपत्रके समान सुन्दर नेत्रवाली, और विकसित कमलके समान प्रसन्न मुखवाली प्रिये, मै भी शीघ्र ही इस उत्सवमे सम्मिलित होऊँगा।

पक्षीरूपी देवकी यह बात सुनकर पक्षिणीरूप देव उससे कहने लगा—स्वामिन्! आपके वियोगमे मेरा मन भयसे विह्वल हो जाएगा और गर्भके कारण अलस शरीरवाली मै अकेली रह भी न सकूगी। फिर ससारमे पुरुषोके चित्तको कौन जानता है? और सुमेरु पर्वतपर एकसे एक बढ कर सुन्दर रूपवती अनेक पक्षिणिया भी है। स्वामिन! तुम्हारा क्या ठिकाना है, तुम उन्ही सुन्दरी पक्षिणियोके साथ निरन्तर भोग करते हुए वही रह गये तो क्या विश्वास?

पक्षिणीकी बात सुन कर पक्षी बड़े ही सभ्रमके साथ उससे कहने लगा—प्रिये, वस्तुत. तुम्हे छोडकर मेरी अन्य कोई भी

प्रियतमा नही है। हे प्रिये, तुम प्राणियोंपर दया करनेवाले और जनसाधारणके प्रति वात्सल्य भाव रखने वाले इन मुनिराजके पास सिर्फ पाच दिन तक रह जाओ, तव तक मै लौट कर जरूर ही वापिस आ जाऊगा।

पक्षिणीने पक्षीकी वात सुनी और वह वडे ही मीठे शब्दोमे कहने लगी—स्वामिन्, मै तो तुम्हे यहासे एक कदम भी अन्यत्र नही जाने दूगी।

पक्षी पुन अपनी प्रियतमा पक्षिणीसे कहने लगा—प्रिये, यदि मै पांच दिन बाद तुम्हारे पास वापिस न आ जाऊँ तो शपथ करता हूँ कि मै गाय और ब्राह्मणकी हत्याके पापका भागी वनू। इस प्रकार पक्षी जिस जिस प्रकारकी शपथ करता, पक्षिणी प्रतिकूल हो कर उसकी एक भी शपथ नही मानती।

पक्षी फिर इस पक्षिणी प्रियतमासे कहने लगा-देखो प्रिये, मुझे जाना जरूर है। अव तुम्हे मेरी शपथपर विश्वास नही है तो अपनो शपथ वतलाओ, जिससे तुम्हे मेरे वापिस आनेका विश्वास हो जाय। प्रियतम पक्षीकी यह बात सुन कर पक्षिणी कहने लगी—यदि तुम मुझे छोड कर जाना ही चाहते हो तो यह शपथ करो कि यदि मै लौट कर शीघ्र वापिस न आऊँ तो मै दूसरे जन्ममे इन मुनिराज जैसी गतिको प्राप्त करूँ। तुम यह प्रतिज्ञा करो और चले जाओ। मै नही रोकूगी।

जब पक्षीने पक्षिणीकी यह बात सुनी तो वह कहने लगा—भद्रे! जबतक मै जीवित हूँ, इस प्रकारकी शपथ नही कर सकता।

इस प्रकार परस्परमे कलह करने वाले इन पक्षियोकी बात यमदग्नि मुनिने सुनी तो उनकी भोहे तन गईं और वे इन पक्षियोंसे कहने लगे—भाई, तुम मुझे शीघ्र बतलाओ कि इस शपथमे क्या रहस्य है जो तुम इसे स्वीकार नही कर रहे हो? मुझे बड़ा ही कौतुक हो रहा है।

पक्षी कहने लगा—"मुनिवर, न तुम्हारी कोई गति है, न तुम्हारा कोई तप है और न इस तपका तुम्हें कुछ फल ही मिल सकता है , क्योकि संसारमे पुत्रहीनकी न कोई गति है, और न उसे स्वर्ग ही मिल सकता है । पुत्रका मुह देख कर ही भिक्षु बनना चाहिए । पक्षी कहता गया—मुने, पुत्रसे ही इह लोक और परलोक उत्तम होते है और पुत्रसे ही तीनो लोकमे फैलने वाली शुभ्र कीर्तिरूपी वधूकी प्राप्ति होती है । जिनका यश समस्त-दिशाओमे व्याप्त हो रहा है और जो समस्त जनताके प्रेमभाजन हैं, उन विद्वानोने चार प्रकारके आश्रमोका विधान किया है, जो आज ससारमे खूब ही प्रसिद्ध हैं । प्रत्येक ब्राह्मणका यह कर्तव्य है कि वह एक आश्रमसे दूसरे आश्रममे प्रवेश करता हुआ अपना जीवन बिताये । यदि वह इस मर्यादाका उल्लंघन करता है तो प्रायश्चित्तका अधिकारी होता है । मुने, तुमने कुमार अवस्थामे ही यह मुनियोका व्रत ले लिया । सो तुमने मूर्खतावश यह बहुत ही अप्रामाणिक कार्य किया है । तथा जो मनुष्य मनु, व्यास, वसिष्ठ और वेदके वचनको अप्रामाणिक बतलाता है, ससारमे वह ब्रह्मघाती कहलाता है । पक्षी कहता गया—मनुधर्म, पुराण, साङ्ग वेदविधि और क्रिया—ये सिद्ध स्वरूप है । इनका कदापि हेतुओसे खण्डन नही करना चाहिए ।"

पक्षीकी बात सुन कर यमदग्नि मुनिकी भोगरुचि जागृत हो उठी । उसने विवेक शून्य होकर अपनी निन्दा करनी शुरू कर दी । वह सोचने लगा—'मै कितना अज्ञानी हूँ जो कुमार अवस्थामे ही मुनियोके व्रत ले लिए । खेद, मैने इतने समय तक किस प्रकार अपनी आत्म वचना की' । इस प्रकार विचार करनेके पश्चात् यमदग्नि पक्षीसे कहने लगा—पक्षिन्, तुम मेरा हित करने ही आये हो । इसलिए मेरा शीघ्र ही इस दुर्गतिसे उद्धार करो । यमदग्नि योगीने इस प्रकारके कर्त्तव्यमार्गका उपदेश करने वाले पक्षीकी खूब पूजा की और सन्तानकी इच्छासे वह इन्द्रपुर चला गया ।

इन्द्रपुरमे यमदग्निका मामा राज्य करता था। इसकी पत्नी-का नाम जयमति था, जिसका शरीर सौन्दर्यसे निखर रहा था। इन दोनोंके देवकुमारी आदि नामकी मनोहर कन्याये थी। सो यमदग्नि इस राजाके पास पहुचा और वहुत ही विह्वल होकर कहने लगा—मामा, मेरे कोई भी पुत्र नही है और ससार-मे अपुत्रकी कोई गति भी नही है। इसलिए मै कन्याके निमित्त-से ही आपके पास आया हूँ।

राजाने यमदग्निकी बात सुनकर अपनी समस्त रूपवती कन्याओको बुलवाया। जब ये कन्याएँ राजाके सामने आगई तो वह उनसे कहने लगा—पुत्रियो, तुम लोग इस मुनिके साथ इच्छानुसार भोगोका अनुभव करो।

कन्याओने पिताकी वात सुनी और ज्यो ही जटाओके मुकुटको धारण करने वाले, पिशाच जैसे दिखने वाले, वृद्ध और कूर्चोसे भयकर तथा बीभत्समूर्ति इस यमदग्निको देखा, वे भयके मारे डर गई और शीघ्र ही पिताके पाससे भाग गई।

कन्याओके भाग जानेसे तपस्वी यमदग्निको एकदम रोष हो आया। उसने इन्हे तुरन्त ही शाप दे दिया कि ये सब दुरा-चारिणी कन्याये कुबडी हो जावे। तपस्वीके शाप देते ही ये सब कन्याएँ कुबडी होगई और साराका सारा इन्द्रपुर कुबड़ी कन्याओसे सकुल हो गया।

इन कन्याओमेसे एक ऐसी कन्या वही खेलती हुई रह गई थी जिसका सम्पूर्ण शरीर धूलिसे धूसरित हो रहा था और जिसका नाम रेणुका था। इस धूर्त तपस्वीने उस कन्याको एक बिजौरा फल (बीजपूरक) दिखलाया और कहने लगा यदि तुम मुझे चाहो तो मै अभी हाल तुम्हे यह बिजौरा देदूँ।

कन्या कहने लगी—तपस्विन्, तुम यद्यपि एकदम वृद्ध हो चुके हो, फिर भी यदि तुम मुझे यह बिजौरा दो तो मैं तुम्हे चाह सकती हूँ। यमदग्निने जब रेणुकाके चित्तको अपनी ओर

आकर्षित देखा तो उसने वह फल उसे दे दिया और उसे अपने कन्धे पर बिठला कर शीघ्र ही राज भवनसे चल दिया। तपस्वी-ने शुल्कदान दिया वह प्रसन्न हुआ और समस्त कन्याओके कुबड़े-पन को दूर करके वह अपने घर आगया। इसने रेणुकाको पाल पोप कर बडा किया और फिर उसके साथ विधिवत् विवाह कर लिया। तदनन्तर रेणुकाके परशुरामका जन्म हुआ।

अच्युतेन्द्र पूर्वभवके विश्वानल देवसे कहने लगा—मित्र! यमदग्नि तपस्वीकी अज्ञानता और मूढता तो देखो। इस मूर्खने परमार्थपर कोई ध्यान नही दिया और कर्तव्य तथा अकर्त्तव्यका भी कोई विवेक नही किया। इसलिए विद्वानोका कर्त्तव्य है कि वे समस्त ग्रन्थोके कथनकी ठीक-ठीक छान बीन करे। मिथ्या ग्रन्थोके उपदेशसे उन्हे विष भक्षण नही करना चाहिए। एक तो क्या, हजारो मनुष्य कौमार अवस्थामे ब्रह्मचारी हुए और रमणियोको छोडकर स्वर्गमे पहुचे। कहा भी है—

"परीक्षा सर्वशास्त्रेषु कर्त्तव्याऽत्र विचक्षणैः।
न कुशास्त्रप्रणीतेन कर्त्तव्य विषभक्षणम्॥
अनेकानि सहस्राणि कौमारब्रह्मचारिणाम्।
दिव गतानि मुक्तानि अकृत्वा दारसग्रहम्॥"

अर्थात्—'बुद्धिमानोका कर्त्तव्य है कि वे समस्त शास्त्रोकी परीक्षा करे। कुशास्त्र यदि विष खानेकी ओर इगित करे तो विष नही खाना चाहिए। अनेको हजार ब्रह्मचारियोने दार परि-ग्रह नही किया और उनमेसे कुछ स्वर्ग गये तथा कुछ मुक्त-भी हुए।"

ये दोनो देव कौमार व्रतको नष्ट करने वाले तपस्वी यमदग्निकी परीक्षा करके राजगृह नगरीमे पहुचे। इस नगरीमे एक जिनदास नामका श्रावक रहता था। जिनदास सम्यग्दृष्टी था और बडा ही मधुरभाषी था। वह प्रत्येक पर्वके दिन कायोत्सर्ग किया करता था। अच्युतेन्द्रने जिन-

दासको कायोत्सर्गमे विराजमान देखा तो वह पूर्वभवके विश्वानल देवसे विशुद्ध हृदयके साथ कहने लगा–मित्र, तुम हमारे जैनधर्मका पालन करनेवाले मुनियोकी बात तो जाने दो। यदि तुममे कुछ शक्ति हो तो इस श्रावकको ही अपने योगसे च्युत करो।

ज्यो ही देवने अच्युतेन्द्रकी यह बात सुनी, वह क्रुद्ध हो जिनदासके ऊपर उपसर्ग करने लगा। इसने मायाके द्वारा जिनदासके सामने उसके धन-धान्यको लुटते हुए दिखलाया, पुत्र और कुलके प्राणियोंकी हिंसा होती हुई दिखलाई तथा और भी अनेक प्रकारके उपसर्ग इसके सामने उपस्थित किये। परन्तु इस प्रकारसे उपसर्ग किये जानेपर भी जिनदासका मन ध्यानसे किञ्चित् भी स्खलित नही हुआ और वह अन्ततक सुमेरुकी तरह अडिग बना रहा।

जब देवने जिनदासकी यह धीरता देखी तो उसे बड़ा ही हर्ष हुआ और उसने इस धीर-वीरके लिए आकाशगामिनी विद्या दे डाली। इस प्रकार आकाशगामिनी विद्या देकर पूर्वभवके विश्वानल देवके मनमे कुटिलता जागृत हुई और वह अच्युतेन्द्रसे कहने लगा–'मित्र, यह आर्य जिनदास महान् और पुराना श्रावक है। इसका चित्त धर्ममे रम चुका है और इसने अनेक शास्त्रोका अध्ययन करके कुशलता भी प्राप्त की है। इसलिए यदि धीरात्मा जिनदास इस महान् उपसर्गको सहन कर जाता है तो इसमें कोई आश्चर्यकी वात नही है। तुम मुझे इस प्रकारका व्यक्ति बतलाओ, जिसने अभी हाल ही धर्म स्वीकार किया हो और जिसका शास्त्रीय ज्ञान भी थोडा हो'।

अच्युतेन्द्र बोला–'मित्र, ऐसा भी एक व्यक्ति है, जिसका हृदय वहुत भोला है, आत्मा विशुद्ध है और अल्प समयका ही धर्मात्मा है। इस यशस्वी नरपुङ्गवको सारभूत जैनधर्म ग्रहण किये हुए अभी सात दिन ही हुए है। यदि तुम्हारी इच्छा उसको

अपने अङ्गीकृत धर्मसे डिगानेकी हो तो हम लोग उसके पास चले ।

इस प्रकार अच्युतेन्द्रकी बात सुन कर पूर्वभवके विश्वानल देवको सतोष और रोष दोनो ही हुए । वह इन्द्रके समान वैभवसे सम्पन्न होकर मिथिला नगरीमें आया ।

मिथिलाके उद्यानमे पद्मरथ नामका शूरवीर राजा ठहरा हुआ था। इसे सुधर्माचार्यके निकट जैनधर्मका उपदेश सुने कुल सात ही दिन हुए थे। भगवान् वासुपूज्यका समवसरण चम्पापुरीके उद्यानमें आया हुआ था। सो पद्मरथ राजा उनकी वन्दनाके लिए आया था ।

ज्यो ही अच्युतेन्द्रने उद्यानमे ठहरे हुए पद्मरथको देखा उसका मन कौतुकसे भर गया और वह विश्वानल देवसे कहने लगा—मित्र, देखो, इस पद्मरथ राजाने अभी अभी ही जैनधर्मको स्वीकार किया है । सो तुममे यदि शक्ति हो तो इसीको अपने धर्मसे चलित कर दो ।

विश्वानल देवने ज्यो ही पद्मरथ राजाको देखा, क्रोधसे उसकी आँखोमे रक्त वरसने लगा और वह बड़े ही आवेशसे उसके ऊपर भयकर उपसर्ग करने लगा । इस देवने पद्मरथके सामने इसके नगर दाहका दृश्य दिखलाया, सैन्य-युद्ध दिखलाया, महान् भीषण गर्जनाएँ की और भूत-प्रेतकी डरावनी मूर्तिया दिखलाकर अनेक प्रकारके उपसर्ग किये । पद्मरथने विश्वानल देव द्वारा किये गये उपसर्गकी जरा भी परवाह नही की । वह अपने निश्चयसे जरा भी विचलित नही हुआ ।

जब इस देवने पद्मरथ राजाकी यह अविचल धीरता देखी तो उसका मन वहुत ही सतुष्ट हुआ और उसने एक योजन तक मधुर और गभीर गर्जना करने वाली भेरी इसे दानमें दी । इस घटनासे अच्युतेन्द्र भी वड़ा प्रसन्न हुआ और उसने भी धर्म-वात्सल्यके कारण पद्मरथ राजाको एक समस्त व्याधि-

विनाशक हार उपहारमें दिया। इस प्रकार ये देव भगवान् वासुपूज्यकी वन्दना करके तथा राजाकी पूजा करके स्वर्ग चले गये।

पद्मरथ भी कण्ठमे हार पहिनकर और सुस्वर भेरी लेकर भगवान् वासुपूज्य स्वामीकी बन्दनाके लिए जा पहुचा। उसने बडी ही भक्तिसे भगवान्की स्तुति की तथा उन्हे नमस्कार किया। तत्पश्चात् विशुद्ध बुद्धि पद्मरथने अपने पुत्रको राज्य-सिहासनपर बिठलाया और उसने वासुपूज्य स्वामीके निकट जिन-दीक्षा ले ली। पद्मरथ इतना जिन भक्तिपरायण हुआ कि वह भगवान् वासुपूज्यका प्रधान गणधर हो गया और उसने शीघ्र ही निर्वाणको प्राप्त किया।

इस प्रकार जिनभक्ति परायण पद्मरथ राजाकी
गणधरत्व प्राप्ति तथा निर्वाण गमनको
बतलाने वाला यह कथानक
सम्पूर्ण हुआ।

—o—

६० सुभग गोपालकी कथा

अङ्ग नामके महान् देशमे चम्पा नामकी समृद्ध नगरी है। इस नगरीमे दन्तिवाहन नामका राजा रहता था, जो बडा ही नीतिज्ञ था। दन्तिवाहनकी पत्नीका नाम अभया था। अभया राजाकी महादेवी थी और वहुत ही बुद्धिमती थी। इसकी एक धात्री थी, जिसका नाम पण्डिता था। पण्डिता भी बहुत ही गुणवती थी।

इसी नगरीमे एक ऋषभदास नामका सेठ रहता था। ऋषभदास एक वहुत सम्पन्न सेठ था। इसकी पत्नीका नाम

जिनदासी था । इस सेठके एक भक्त नौकर था, जो इसकी गाय भैंसोकी रखवाली किया करता था। इसका नाम सुभग था। सुभग समस्त मनुष्योको बडा ही प्रिय था।

एक दिनकी बात है। सुभगने समस्त भैंसोको आगे किया और उन्हे घास और पानी वाले वनप्रदेशमे ले चला। जब वह साँझके समय उधरसे लौटकर आ रहा था तो इसे कुछ दूरवर्त्ती प्रदेशमे एक चारण मुनि दिखलाई दिये। इन मुनिराजको देख कर वह बडा ही विस्मित हुआ और इस प्रकार विचार करने लगा–देखो, इतने महान् शीतकालमे भी यह मुनिराज बाहर खडे हुए है और वस्त्रके नामपर इनकी कमरमे एक लगोटी तक नही है। समझमे नही आता, यह किस प्रकार रात काटेगे ?

सुभग यह सोच-विचार करता हुआ अपने घर आ गया और रातमे उन मुनिराजके गुणोका ही चिन्तन करता हुआ वह अपनी कुटियामे जा सोया। सुबह हुआ और वह भैसे लेकर पुन उसी दिशामे चल दिया। जब उसे मुनिराज दिखलाई दिये तो वह कुछ समयके लिए वहाँ ठहर गया।

मुनिराजने प्रभातकाल सम्बन्धी क्रियाको किया और ज्यो ही सूर्य उदित हुआ वह "नमोऽर्हते" कहकर आकाशमे विहार कर गये। ज्यो ही सुभग गोपालने सजल मेघकी तरह 'नमोऽर्हते,' की गभीर ध्वनि सुनी और मुनिराजको आकाश मार्गसे जाते हुए देखा, उसने समझा कि यही विद्या आकाश गामिनी है। और इस प्रकारका निश्चय करके उसने ससार-समुद्रको सुखाने वाला अर्हन्त भगवान्का नमस्कार मनमे बिठा लिया। इतना ही नही, सुभगने सोचा इस मत्रसे आकाशगामिनी विद्या सिद्ध हो जावेगी और इसके बलसे मै भी अगम्य पर्वतो आदिपर विहार करूँगा। इस प्रकार वह उठते बैठते, जागते सोते सदैव "नमोऽर्हते" इस वाक्यको जपता और इसे कभी भी न भूलता।

सुभगके सेठ तथा अन्य श्रावकोंने इस गोपालको समझाया कि तुझे ससारका नाश करन वाला यह जिन नाम नही लेना चाहिए। किन्तु उसने उत्तार दिया–तात, मै महान् पवित्र जिन नामको कभी नही छोड सकता। जब सेठने सुभगकी जिन नामके प्रति इतनी अविचल निष्ठा देखी तो वह कहने लगा-पुत्र मेरी भी अब यही समति है कि तुम कभी भी जिन नाम न छोडो। जिनेन्द्र भगवान्का नाम पवित्र है और यह तुम्हारे लिए सदैव माङ्गलिक रहेगा। इस प्रकार कहकर ऋषभदास सेठ चुप रह गया।

एक दिनकी बात है। भैंसोंका झुण्ड वेगसे गगा पार हो गया और वहाँ जाकर एक सुगन्धित धानके खेतमे प्रवेश कर गया। ज्यो ही सुभग गोपालने देखा कि उसकी भैंसें गगा पार होगई है, वह तुरन्त ही दौडा और दौड करके किनारे जा पहुँचा। उसने जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार किया और जिनेन्द्र भक्तिमे ही अपना मन स्थिर करके तथा निर्भय होकर वह गंगाकी धारामे कूद पडा।

सुभग ज्यो ही गगामे कूदा, एक काठकी नोक उसके पेट-मे धुस गई। वह तुरन्त ही मर गया और मर कर ऋषभदास सेठकी पत्नी जिनदासीके गर्भमे आगया। इसके गर्भमे आये हुए जब इसे पाँच महीने होगये तो सेठानीको जिनेन्द्र भगवान्-की पूजा करनेका दोहद उत्पन्न हुआ।

एक दिनकी वात है। सेठानी जिनदासी सेठजीके सामने बैठी हुई थी। सेठजीने जव इसे ध्यानसे देखा तो यह पहले-की अपेक्षा दुर्वल दिखलाई दी। सेठजीने पूछा-प्रिये, तुम्हारी इस दुर्वलताका क्या कारण है? मुझे वतलाओ। मै उसे दूर करनेकी चेष्टा करूँगा।

सेठानी बोली–स्वामिन् मै इस समय जिनेन्द्र भगवान्की पूजा करना चाहती हूँ। सेठ ऋषभदासने अपनी पत्नीकी

च्छानुसार जन्म-जराविहीन जिन भगवान्‌की माङ्गलिक गाजे-बाजेके साथ महामह पूजा की। तदनन्तर जब नौ महीने व्यतीत हो गये, तो जिस प्रकार पूर्व दिशा प्रभा-सम्पन्न बाल सूर्यको उत्पन्न करती है, उसी प्रकार सेठानीने भी कान्तिसे जगमगाते हुए पुत्रको उत्पन्न किया। इस शिशुने अपने शरीरके सुन्दर प्रभा-पुञ्जसे पूर्णचन्द्रकी तरह समस्त बान्धवरूपी कमलोंको विकसित कर दिया—इसके उत्पन्न होनेसे समस्त बन्धुओंको बडा ही हर्ष हुआ। इसके बाद ऋषभदास इसे जिन मन्दिर ले गया और वहाँ उसने जिन भगवान्‌की वडी ही भक्तिपूर्वक पूजा की। और मुनिराजने इसके गुणोंके अनुसार इसका सुदर्शन नाम रख दिया।

सुकुमार सुदर्शन धीरे धीरे बडा हुआ और उसने बहुत ही शीघ्र समस्त कलाओंकी शिक्षा ले ली। वह चौसठ कलाओं-मे पारगत हो गया।

इसी चम्पा नगरीमें एक सागरदत्त नामके अन्य सेठ रहते थे। इनकी पत्नीका नाम सागरसेना था। तथा इन दोनों-के एक मनोरमा नामकी कन्या थी। सुदर्शन कुमारका इस मनोरमाके साथ विधिवत् विवाह होगया और इन दोनोंके एक सुकान्त नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जो आकृतिमे बडा ही मनोहर था। एक दिन सेठ ऋषभदासको यह समस्त सासारिक सुख अनित्य और असार दिखलाई दिया और उसने अपने पुत्र सुदर्शनको सेठकी पगडी बाध दी। तथा उसने दन्तिवाहन राजाको अपना यह पुत्र सौप दिया और आप समाधिगुप्त मुनिराजके निकट दीक्षा लेकर साधु होगया।

सुदर्शनका एक मित्र था जिसका नाम कपिल था। वह जातिका ब्राह्मण था। कपिल दन्तिवाहन राजाका पुरोहित था। इसकी पत्नीका नाम कपिला था। कपिलाको अपने रूप और यौवनका बडा ही अहकार था। उसने सुदर्शनके गुण

सुन रक्खे थे, जिसके कारण उसका मन सुदर्शनके प्रति आसक्त होगया।

एक दिनकी बात है। मदनोन्मत्त कपिलाने एक चतुर दूती द्वारा कुछ गुप्त सन्देश सुदर्शन सेठके पास भेजा। दूती अपनी स्वामिनीके अभिप्रायको समझ कर तुरन्त ही सुदर्शनके घर जा पहुची तथा सुदर्शनसे कहने लगी–स्वामिन्! तुम्हारे अभिन्नहृदय मित्र कपिलका कहना है कि तुम कृपा पूर्वक कुछ देरके लिए हमारे घर जरूर ही आओ।

दूतीकी बात सुन कर सुदर्शनका मन स्नेहसे गद्गद हो उठा। वह तुरन्त ही अपने मित्रके घर चलनेको प्रस्तुत होगया। मित्रके घर आकर सुदर्शनने ब्राह्मणी कपिलासे पूछा-भद्रे! कपिल कहाँ है?

कपिला कहने लगी–आपके मित्र घरके अन्दर सो रहे है। आप घरके भीतर जाकर देखिए। जव सुदर्शन कपिलाके कहनेके अनुसार घरके अन्दर गया और वहा कपिल दिखलाई नही दिया तो वह फिर पूछने लगा–अरे भई, जल्द बतलाओ मित्र कपिल कहा है?

अबकी बार कपिला बोली–कपिल तो यहां नही है। पर आप मेरी बात सुनिए। मै तुमसे प्रेम करती हूँ और परोक्ष रीतिसे तुम्हारे गुणोमें अनुरक्त हू। मेरी प्रार्थना आप स्वीकार करे। यदि बार-बार प्रार्थना करनेपर भी तुम मुझसे प्रेम नही करोगे तो मै निश्चयसे मनुष्योके द्वारा तुम्हे अभी हाल मरवा डालूँगी।

इतना कह कर वह मूर्खा सुदर्शनसे आलिङ्गन आदि करने लगी। यह देखकर सुदर्शन सेठ उससे बोला–मुग्धे, तुम मेरी सत्य बात सुनो। क्या तुम्हे मालूम नही है कि मुझमे बिलकुल भी पौरुष नही है?

सुदर्शनकी यह बात सुनकर कपिला बडी विरक्त हुई और कहने लगी—यदि तुममे पौरुष नही है तो अपने घर जाओ। यह बात सुनकर सुदर्शनको ऐसी प्रसन्नता हुई मानो वह महान् व्याधिके मुखसे उन्मुक्त हुआ हो। और कपिलाके कहनेके बाद ही वह तुरन्त अपने मकानपर आगया।

एक दूसरे दिनकी बात है। दन्तिवाहन राजा कपिल और सुदर्शनके साथ उद्यान वनमे क्रीडा करनेके लिए गया। इनके साथ ही अभया महादेवी, कपिला और मनोरमा ये तीनों भी अपनी-अपनी पालकीमे बैठ कर वन-विहारके लिए चल पडी।

अभया महादेवीने कपिलासे पूछा—कपिले, यह तो बतलाओ, यह पुत्र आदि परिवारसे वेष्टित किसकी स्त्री जा रही है? देखो तो, इस स्त्रीके शरीरके कान्तिपुञ्जसे आकाश मण्डल प्रकाशित हो रहा है और यह इस प्रकारसे सुशोभित हो रही है, मानो आकाशमे चन्द्रलेखा हो।

कपिलाने महादेवी अभयाकी बात सुनी तो वह तुरन्त कहने लगी—देवी, यह सुदर्शनकी पत्नी है और इसका नाम मनोरमा है।

कपिलाकी बात सुन कर महादेवी कहने लगी—यह सुन्दरी धन्य है जिसकी गोदमे छोटा पुत्र खेल रहा है। पुत्रके विना स्त्रीपर्याय उसी तरह निष्फल है, जिस प्रकार फल-फूलके अभावमे शून्य लता। महादेवी फिर कहने लगी-देखो, इसका शरीर रूपसे निखर रहा है और इसका कण्ठ कितना मधुर है? यह कितनी प्रसन्नतासे हम लोगोके साथ उद्यान वनमे क्रीडा करनेके लिए जारही है।

कपिलाने जब महादेवी अभयाकी बात सुनी तो उसने एक उपहास सूचक हँसी हँस कर रानीसे धीरेसे कहा—देवि, सुनो,

स्त्री हो तो सुदर्शनकी स्त्रीकी तरह हो जो चतुराईके साथ पुत्र पैदा कर लेती है ।

कपिलाकी बात सुनकर अभयाको भी हँसी आगई, परन्तु वह सम्हल गई और कहने लगी—कपिले ! तुम इस प्रकार व्यङ्गचात्मक ढगसे क्यो बात कर रही हो ? कारण तो बतलाओ ? यह स्त्री पतिव्रता है और रूप तथा शीलसे सम्पन्न है। यह अपने पतिदेव सुदर्शनको छोड कर अन्य पुरुषको मनसे भी नही चाहती है। यह जिन शासनकी भक्त है। सम्यक्त्व और अणुव्रतोसे सुशोभित है। गुणव्रतो तथा शिक्षाव्रतोंका पालन करती है, और उदुम्बरको छोड़े हुए है। यह अपने पतिको छोड कर अन्य मनुष्यकी स्वप्नमे भी अभिलाषा नही करती और जिनदेव तथा जैन मुनियोंको छोड कर अन्य किसीकी भक्ति और स्तुति भी नही करती ।

परन्तु कपिला अभयाकी यह वात सुन कर कहने लगी-देवि ! जिस स्त्रीकी आप इतनी प्रशसा कर रही है उसीके पति सुदर्शनने मुझसे एक बार कहा था कि मै नपुसक हूँ तथा मुझमे पौरुष नही है। इसलिए देवि ! मै तो इसके पति सुदर्शनको नपुसक ही समझती हूँ और इसने जो यह पुत्र प्राप्त किया है सो यह इसकी कुशलताके सिवा और क्या है ?

महादेवी अभयाने जब कपिलाकी यह बात सुनी तो वह कहने लगी—तुम्हे काम शास्त्रका ज्ञान नही है, इसी लिए उस धूर्तने तुम्हे ठग लिया। सखि ! वस्तुतः सुदर्शन दूसरोंकी स्त्रियोके लिए नपुसकके समान है—किन्तु अपनी स्त्रीके लिए कामके समान विलास करने वाला पौरुष सम्पन्न पुरुष है। सुदर्शनका चित्त समुद्रकी तरह गंभीर है और क्षोभसे शून्य है। तुम मूर्ख हो, अतः उसके चित्तको और उसे ठीक-ठीक नही समझ सकी। ठीक ही है, पुरुषोकी परीक्षामे स्त्रिया कुशल नही देखी जाती है ।

जब महादेवीने इतना कहा तो कपिलाका मुख कमल मुरझा गया और उसका चित्त ईर्षासे जल उठा। वह कहने लगी—देवि, यदि यह बात है तब तो सुदर्शनने मुझे ठग लिया। इतना कहकर कपिला महादेवीसे कहने लगी—देवि, मै ब्राह्मणी तो काम कलासे अनभिज्ञ हूँ अतः अपनी मूर्खताके कारण मन्दराचलकी तरह स्थिर मनवाले सुदर्शनको वशमे नही कर सकी, परन्तु तुम तो कामशास्त्रकी पडिता हो। महादेवीके पदपर आसीन हो, और रूपवती तथा युवती हो। इतना होनेपर भी मै तुम्हे तब जानूँ, जब तुम इसे अपने अधीन करलो।

महादेवी अभयाने जब कपिलाकी यह बात सुनी तो वह कहने लगी-कपिले, मै निश्चयसे सुदर्शनको अपने वशमे करनेके लिए समर्थ हूँ। महादेवीने खिन्नमनस्क कपिलाके सामने यह बात कही और अपने रूपके अभिमानमे आकर उसने सुदर्शन-को अपने अधीन करनेकी प्रतिज्ञा की—हे नितम्बिनि, यदि मै सुदर्शनके चित्तको क्षुब्ध नही करसकी तो मै प्रतिज्ञा करती हूँ कि भविष्यमे मै पुरुषके भोगसे ही विरक्त हो जाऊँगी।

कपिलाके सामने यह प्रतिज्ञा करके महादेवी शीघ्र ही नगरमे लौट आई और अपने प्रासादमें आ पहुँची। तदनन्तर महादेवीने पडिता धात्रीको अपने पास बुलवाया। और वह लज्जा छोडकर प्रसन्नताके साथ इस प्रकार कहने लगी-पडिते, तुम शीघ्र ही सुदर्शनको मेरे पास लाओ, जिससे मै इसके साथ अनेक प्रकारके भोग भोगू। भद्रे! सुदर्शनने मेरा चित्त चुरा लिया है, सो यदि तुम इसे शीघ्र ही मेरे पास नही लाती हो तो विश्वास रक्खो मै बहुत जल्दी प्राण-विहीन हो जाऊँगी।

धात्रीने ज्यो ही महादेवीकी यह बात सुनी, वह मीठे शब्दो-मे बोली—देवि, तुमने यह बहुत ही बुरा काम सोचा है। जो पांच अणुव्रतोंका पालन करता है, जिसकी आत्मा सम्यग्दर्शनसे

पवित्र है, जो पुण्य और पापका विचार करता है, जिसकी बुद्धिमे हित और अहितका विवेक है, जिसे अत्यन्त गभीर समुद्र कहो या कम्परहित सुमेरु कहो, क्षमासे सम्पन्न पृथ्वी कहो या निर्मल मूर्तिवाला आकाश कहो, और जो लोगोंके द्वारा की जाने वाली परस्त्रीकी चर्चाको मन, वचन, काय तथा कानोसे भी नही सुनना चाहता है, समझमे नही आता कि वह विशुद्धात्मा किस प्रकार तुम्हारे साथ इच्छानुसार भोग-विलास करेगा और यह भी समझमे नही आ रहा है कि उसे तुम्हारे पास किस प्रकार लाया जावे ?

महादेवी अभया धात्रीकी बात सुनकर कहने लगी—सखि ! मैने कपिलाके सामने यह प्रतिज्ञा की है, यदि सुदर्शन मेरे प्रति आसक्त होकर मेरा आलिङ्गन न करे और मुझसे प्रेम न करे तो मै निश्चयसे आत्मघात कर डालूँगी ।

जब धात्रीको महादेवीकी इस रहस्यपूर्ण प्रतिज्ञाका पता चला तो वह कहने लगी-देवि, सुदर्शनको यहां लानेका एक ही उपाय है । वह यह कि वह पर्वके दिन रातमे स्थिर मनसे कायोत्सर्ग करता है, सो कायोत्सर्गकी स्थितिमे ही वह यहाँ लाया जा सकता है । दूसरा कोई उपाय नही है । महादेवी धात्रीकी बात सुनकर कहने लगी—जो उपाय सुदर्शनको यहा लानेका तुमने बतलाया है, वही उपाय मेरे मनमें भी था । तदनन्तर धात्री कुम्हारके घर पहुची और उसने उससे मिट्टीके सात पुरुष बनवाये ।

प्रतिपदाके दिनकी घटना है । धात्रीने मिट्टीके एक पुरुष-को वस्त्रसे आच्छादित किया और उसे लेकर महादेवीके भवन-की ओर चल दी । धात्री ज्यो ही इस मिट्टीके पुरुषको लेकर महादेवीके भवनमे प्रवेश करने लगी, पहिले द्वारपालने उसे देखा और वह धात्रीसे कहने लगा—यह कौन वस्तु है, जिसे तुम वस्त्रसे ढककर जल्दी जल्दी जा रही हो ? यदि राजाको इसका पता

चलेगा तो वह हमसे क्रुद्ध होंगे और हमें दण्डका भागी होना पडेगा। धात्रीने द्वारपालकी बात सुनी और कहने लगी—तुम्हें हमसे क्या मतलब, जो हमारे मनमें आता है उसे लेकर जा रही हूँ।

धात्रीके उत्तरसे द्वारपालको क्रोध हो आया। उसने धात्रीका पिछौरा पकडकर खीच दिया। धात्रीने अपने हाथकी मिट्टीके पुरुषकी प्रतिमाको जमीनपर छोड दिया और जमीनपर गिरते ही उसके सैकडो टुकडे होगये। धात्रीका सम्पूर्ण शरीर क्रोधसे कपने लगा। उसने द्वारपालसे कहा—द्वारपाल, तुमने यह अच्छा काम नही किया। महादेवीने आदर पूर्वक पुरुषव्रतका उपवास किया है। उन्हें इस मिट्टीके पुरुषकी पूजा करके ही भोजन करना था। मै इस मिट्टीके मनुष्यको महादेवीकी पूजाके लिए ही लाई थी, परन्तु तुम जैसे मन्दबुद्धिने उसे भी खण्ड खण्ड कर दिया। धात्री कहती गयी—द्वारपाल, तुम्हे मालूम होना चाहिए कि मिट्टीका ऐसा पुरुष इस समय नही मिल सकता और रानी जब मुझे देखेगी कि मै इस मृत्तिका-पुरुषको नही लायी हूँ तो सोच, उन्हे कितनी पीडा होगी ? मै अभी हाल यह समाचार राजासे कहती हूँ और कल यदि मैने तेरा सिर न कटवा दिया तो मै धात्री ही किस कामकी ?

धात्रीकी बात सुनकर भयके मारे द्वारपालका सारा शरीर कँपने लगा। उसने अपना मस्तक धात्रीके चरणोमें टेक दिया और वह धात्रीसे कहने लगा—"अम्बे, तुम हमारी माताके समान हो। मै तुम्हारे पैरो पडता हूँ, तुम इस समाचारको राजासे न कहना। भद्रे, यह तो मिट्टीका मनुष्य है, यदि अबकी बार तुम वास्तविक मनुष्य भी देवीके पास ले जाओगी तो मै तुमसे कुछ भी न कहूँगा।"

द्वारपालकी यह बात सुनकर धात्री सतुष्ट हो गई। उसने द्वारपालके चिरजीवी और दीर्घजीवी होनेकी कामना व्यक्त

की और कहा—अच्छी बात है, मै राजासे यह समाचार नही कहूँगी। धात्रीने भयसे कपित शरीर वाले द्वारपालसे इतना कहा और स्वय सतुष्ट होकर घर चली गई। धात्री बड़ी कुशल थी। उसने इसी प्रकार सातो द्वारोके द्वारपालोको इसी विधि से वशमे कर लिया।

अष्टमीका दिन था। रातका समय था। सुदर्शन समस्त आरभ-परिग्रह छोड़कर उपवास पूर्वक स्मशानमे कायोत्सर्गसे विराजमान था। धात्री श्मशानमे पहुँची और ध्यानमे मग्न सुदर्शनको उठाकर जल्दीसे अभया महादेवीके पास चल पड़ी। वह इस समय बहुत ही प्रसन्न थी। उसने कायोत्सर्गमे स्थित सुदर्शनको ले जाकर महादेवीको सोप दिया।

ज्यों ही महादेवीने सुदर्शनको देखा, उसका मन कामाकुल हो उठा और वह कायोत्सर्गमे ही स्थित सुदर्शनके साथ गाढ आलिङ्गन-चुम्बन आदि करने लगी।

सुदर्शनने अपने ऊपर महान् उपसर्ग आया हुआ देखकर यह प्रतिज्ञा की यदि यह उपसर्ग कुशलता े ब्यतीत हो जावेगा तो मै शीघ्र ही पाणिरूपी पात्रसे पारणा करूँगा। यह प्रतिज्ञा लेकर जिनेन्द्र भगवान्‌का चिन्तन करता हुआ वह वहाँ सुमेरूकी तरह अडिग बना रहा।

उस समय देवीके समान रूपवाली भी अभया महादेवी सुदर्शन सेठको जरा भी क्षुब्ध और विचलित नही कर सकी। जब महादेवीने यह स्थिति देखी तो उसे सुदर्शनकी धीरता और अपनी असफलतापर बडा ही क्रोध आया। उस कामुकीने अपने शरीरको नाखूनोंसे खूब नोच लिया और बालोको विखेर लिया। फिर वह बडे जोरसे चिल्ला पड़ी—अरे दौडियो-दौड़ियो, इस सेठने मेरी इच्छाके विरुद्ध मेरा उपभोग कर डाला।

ज्यों ही राजाने यह बात सुनी, वह बहुत ही क्रुद्ध हुआ

और अपने रक्षा-पुरुषोंसे बोला—तुम लोग इसे श्मशानमे ले जाओ और शीघ्र ही इसका मस्तक काट डालो।

राजाकी आज्ञानुसार रक्षा-पुरुष सुदर्शनको श्मशान भूमिमें ले गय। और ज्यो ही इसके गलेपर तलवारका प्रयोग किया गया, तलवार ही पुष्पमाला बन गई। आकाशमें स्थित देवताओने यह विस्मय देखा और वे यह कहकर सुदर्शनको धन्यवाद देने लग—"धन्य है, सुदर्शनके शीलको, धन्य है सुदर्शनके शीलको।" देवोने इस प्रकार कहकर नाना वर्णके उज्ज्वल और सुगन्धित पुष्पोंसे प्रसन्न हृदय सुदर्शनकी पूजा की।

जब दन्तिवाहन राजाने यह अतिशय देखा तो वह जनसमूहके साथ सुदर्शनके निकट आया। उसने सुदर्शनकी प्रदक्षिणा की और उससे बार-बार क्षमा मागी। वह उससे कहने लगा—सुदर्शन ! तुम हमारा आधा राज्य ले लो और इच्छानुसार विविध भातिके भोगोको भोगते हुए इसी नगरीमे रहो।

जब सुदर्शनने जन-समूहसे घिरे हुए राजाकी यह बात सुनी तो वह कहने लगा—राजन्, न तो मुझे आपके राज्यसे प्रयोजन है और न भोगोसे ही। राज्य और भोग—दोनो ही महान् दुख देने वाले है और अनन्त ससारके बढाने वाले है। राजन्! जिन मानियीका मान गलित हो चुका है उन्हे पृथ्वीका लाभ होने पर भी क्या सुख मिल सकता है ? क्यो कि जव तक मनुष्यका मान है, तब तक उसका जीवन है। मान नष्ट होनेपर कहाँसे सुख मिल सकता है ? कहा भी है —

"मानिनो हतदर्पस्य लाभोऽपि न सुखायते।
जीवित मानमूल हि माने म्लाने कुत सुखम्॥"

अर्थात्—जिसका दर्प चूर हो चुका है, उस मानीको लाभ भी सुखकर नही हो सकता है, क्योकि जीवनका मूल मान है। जब मान ही जाता रहा तो कहाँसे सुख मिल सकता है ?

सुदर्शन कहने लगा—राजन्, यह मत समझना कि तुमने मेरे ऊपर यह उपसर्ग किया है। यह तो मेरे पूर्व जन्मके अशुभ कर्मोका ही फल है।

सुदर्शन दन्तिवाहन राजासे यह कह ही रहे थे कि इतनेमे वहाँ विमलवाहन नामके आचार्य आ पहुँचे। सुदर्शनने राजासे क्षमा मागी और आचार्यके पास पहुच कर उनकी तीन प्रदक्षिणा दी तथा उन्हे भक्ति पूर्वक नमस्कार किया। तत्पश्चात् वह उनसे दीक्षाकी प्रार्थना करने लगा। जव आचार्य विमल वाहनने सुदर्शनका जिनदीक्षाके प्रति उत्कट निश्चय देखा तो उन्होने इसे दैगम्बरी दीक्षा दे दी।

इधर जब अभया महादेवीको इस सातिशय घटनाका समाचार मिला और उसे मालूम हुआ कि सुदर्शनकी देवो तकने पूजा की तथा वह दीक्षा भी ले गया है तो उसका सारा शरीर भयसे कॉपने लगा। उसने फोसी लगा ली तथा मर कर वह पाटलिपुत्र नगरमे व्यन्तरी हुई।

पडिता धात्री भी राजाके भयसे शीघ्र ही चम्पापुरी-से भागकर पटना जा पहुची। धात्री पाटलिपुत्रकी समस्त गणिकाओ तथा नगरकी समस्त स्त्रियोसे अपने स्वदेश त्याग-की कथा तथा सुदर्शनकी कथा कहती हुई और प्रतिदिन अपनी निन्दा तथा गर्हा करती हुई देवदत्ता वेश्याके यहा रहने लगी। पाटलिपुत्रकी जनता भी धात्रीकी बात सुनती और मनमे बहुत ही आश्चर्य करती। इसने वहाके जन समूहको सुदर्शन मुनिके दर्शनके लिए इतना उत्सुक कर दिया कि वह बड़ी ही उत्कण्ठा-के साथ इनके दर्शनकी प्रतीक्षा करने लगा।

एक समयकी बात है। अत्यन्त धीरात्मा सुदर्शन महाराज विहार करते करते पाटलिपुत्र नगरमे आपहुँचे। सुदर्शन मुनिराज-का शरीर अनेक प्रकारके उपवासोसे खिन्न हो चुका था और केवल हाड चर्म मात्रही शेष रहा था। एक दिन पण्डिता धात्री-

ने इन्हे पारणाके लिए राजमार्गसे जाते हुए देखा। वह देवदत्ता से कहने लगी--सुन्दरी, जिस मानवात्माके कारण मै नष्ट हुई, उस साधुको तो देखो।

धात्रीकी बात सुनकर देवदत्ता कहने लगी-'पण्डिते, महादेवी और कपिलामे से कोई भी न कामशास्त्रकी पडिता थी, न काम-कलाविशारद थी और न मनुष्योके मनकी पारखो थी। तुम देखो, मै अभी अभी इस मुनिके चित्तको विक्षुब्ध करती हूँ। धात्रीसे इतना कहकर देवदत्ताने अपनी चेटीको बुलाया और उससे कहा कि तू जाकर इन मुनिराजसे कह कि भगवन्, आज आप हमारे घर भोजन कीजिए। चेटीकी प्रार्थना-पर मुनिराज देवदत्ताके घर आगए।

ज्यो ही सुदर्शन मुनिराजने देवदत्ताके घरके भीतर कदम रक्खा उसने दोनो किवाड लगवा दिये और वह तीन दिन तक इन मुनिराजके ऊपर भयकर उपसर्ग करती रही। परन्तु उस समय सुदर्शन मुनिने अपने मनको इतना आत्माभिमुख कर लिया कि यह निश्चय करना कठिन होगया कि यह काठके बने हुए है अथवा मिट्टी या पत्थरके। देवदत्ताने उस समय शतश अपने हाव-भावोका विलास दिखलाया, परन्तु सुदर्शनका चित्त जरा भी विक्षुब्ध न हो सका।

जब देवदत्ताने देखा कि सुदर्शन मुनिराज इतने पर भी स्थिर चित्त, गभीर और गुणसागर बने हुए है तो उसे बडा ही भय लगा और वह अपने दूषित अभिप्रायकी निन्दा करने लगी। वह रात होते ही मुनिराजको श्मशान ले गई और अपने मुरझाये हुए मुख-कमलको लेकर घर आगई।

सुदर्शन मुनिराज ज्यो ही महा भयकर स्मशान भूमिमें पहुँचे, उन्होने चार प्रकारके आहारका त्यागकर दिया और रात-में कायोत्सर्ग लगाकर ठहर गये। वहाँ महादेवी अभयाके जीवने

जो मरकर व्यन्तरी हुई थी, सुदर्शनको पहिचान लिया और लगातार सात दिन तक उनके ऊपर भयकर उपसर्ग किया । सात दिनके पश्चात् सुदर्शन मुनिराजने घातिया कर्मोको क्षय किया और उन्हे समस्त पदार्थोका साक्षात्कार करने वाला केवलज्ञान प्रकट होगया ।

केवल ज्ञान प्रकट होते ही तीर्थङ्करकी तरह सुदर्शन मुनीन्द्रके भी आठ प्रातिहार्य और चौतीस आतिशय प्रकट हो गये । केवल इतना ही अन्तर है कि मुण्ड केवलीके तीन छत्र, प्राकार, सिंहासन और समवसरणकी विभूति नही रहती है। मुण्ड केवलीके केवल दो ही विभूति होती है—एक तो चन्द्रमाकी तरह शुभ्र एक छत्र और दूसरे मनोहर भद्रपीठ । साधारणतया बारह गण भी होते ही है । इस प्रकार जब सुदर्शन मुनिराजको लोक और अलोकका साक्षात्कार करने वाला केवलज्ञान प्रकट होगया तो देव-समूह इनकी स्तुति बन्दनाके लिए आने लगा । इस बीच देवदत्ता, धात्री, व्यन्तरी और समस्त पुरवासी जनता बडी भक्तिके साथ केवलीके निकट आई । जब सुर, नर आदि समस्त देहधारी अपने अपने समुचित स्थान पर बैठ गये तो केवल ज्ञानरूपी निर्मल नेत्र वाले सुदर्शन योगीन्द्र इस प्रकार धर्मोपदेश देने लगे—

'भव्य जीवो, धर्मसे ही रूप सम्पत्ति मिलती है और धर्मसे ही उत्तम कुलमे जन्म मिलता है । धर्मसे ही धनसम्पत्ति मिलती है और धर्मसे ही निर्मल यश मिलता है । धर्म चिन्तामणिके समान है, धर्म ही कामधेनुके सदृश है । और धर्म ही समस्त प्राणियोको वशमे करने वाला उत्तम वशीकरण है ।

जो मनुष्य मानव तन पाकर भी धर्म नही करता है, वह निधि पाकर भी आँखोसे अन्धा है । ससार परिभ्रमण करने वाले प्राणी पापसे ही नरकमे जाते है । 'और पापसे ही

उन्हे तिर्यञ्च गतिमे जन्म लेना पडता है । इसके विपरीत दानसे भोग-सम्पत्ति मिलती है, तपसे स्वर्ग मिलता है और ज्ञानसे समस्त कर्मोंका क्षय स्वरूप मोक्ष मिलता है ।

पूर्व वर्णित व्यन्तरी, देवदत्ता वेश्या, पण्डिता धात्री तथा अन्य उपस्थित प्राणियोने सुदर्शन केवलीका धर्मोपदेश सुना तो सबको ही बडी प्रसन्नता हुई । किन्हीने भक्ति पूर्वक श्रावक धर्म अङ्गीकार किया और किन्हीने सम्यक्त्व धारण किया । कुछ लोगोने जो ससारसे एकदम त्रस्त हो चुके थे, समस्त परिग्रह छोड़ दिया और वे अपने पुत्रोको धन-सम्पत्ति सोपकर दिगम्बर साधु बन गये ।

केवलज्ञानी सुदर्शनने देशान्तरमे विहार करते हुए धर्मोपदेश दिया और अन्तमे वह समस्त कर्मोका नाश करके मोक्ष चले गये। इस प्रकार सुदर्शन योगीन्द्र, जो भवान्तरमे सुभग गोपाल थे, जिनेन्द्र भगवान्के नमस्कारके फलसे ही शाश्वत निर्वाण पदको प्राप्त हुए । कहा भी है –

"साध्येनाऽपि नमस्कार,य करोति जिनेश्वरे ।
स निस्तरति संसार कि पुन परमार्थतः ॥"

अर्थात्–जो बाह्यरूपसे भी जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार करता है, वह भी ससारसे पार हो जाता है, फिर जो परमार्थसे उनको नमस्कार करता है, उसका ससार तो एकदम आसन्न ही समझना चाहिए ।

इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार करनेवाले सुभग गोपालका कथानक समाप्त हुआ

——००——

६१. यम मुनिकी कथा

उण्ड्रदेशमे धर्मपुर नामका नगर था। इस नगरके राजाका नाम यम था और इसकी पत्नीका नाम धनदमति था। इन दोनोंके एक पुत्र था, जिसका नाम गर्दभ था, तथा एक पुत्री थी, जिसका नाम कोणिका था।

कोणिकाके सम्बन्धमे निमित्तज्ञने बतलाया था कि जो व्यक्ति इस सुकुमार कन्याको विवाहेगा वह निष्कटक होकर सम्पूर्ण पृथ्वीका उपभोग करेगा। जब यमको ज्योतिषीकी इस भविष्यवाणीका पता चला तो उसने कोणिकाको एक तलघरेमे रख दिया और कन्याको इस स्थानमे रखनेका किसीको भी पता न चलने दिया।

राजा यमकी अन्य भी बहुत सी कान्तिशाली स्त्रिया थी और उनसे बहुत ही रूपवान् पाँचसौ पुत्र थे।

यमके मन्त्रीका नाम दीर्घक था, जो बहुत ही सुप्रसिद्ध था और राजा भी लौकिक तथा अलौकिक समस्त शास्त्रोका अखण्ड पण्डित था। यमको अपने ज्ञानका बडा ही अहंकार था। उसकी आज्ञा निर्बाध मानी जाती थी और उसका तेज बहुत ही उग्र था। इसका शील यमके समान सतेज था और इसने समस्त शत्रुओको अपने अधीन कर रक्खा था। इस प्रकार राजा यम बड़े मान और वैभवके साथ अपने नगरमे रहता हुआ राज-काज करता था।

एक दिनकी बात है। सुधर्माचार्य अपने पाच सौ शिष्योके साथ विहार करते हुए धर्मनगरमे आये। जब धर्मपुरके श्रावकोको आचार्य-सघके आगमनका समाचार मिला तो वे चदोवा और ध्वज। आदि पूजाकी सामग्री लेकर मुनिवन्दनाके लिए चल दिए। ज्यों ही यह वृत्तान्त राजा यमके पास पहुँचा, उसे बड़ा ही अहकार हुआ। वह मुनियोंकी निन्दा करने लगा।

और इस प्रकार मुनि निन्दा करता हुआ ही मुनिराजके निकट चल दिया।

जैसे ही वह मुनियोकी निन्दा करता हुआ जाता था, तत्क्षण उसका सम्पूर्ण ज्ञान और बुद्धि विलीन हो गई। इस तरह यमका जब सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो चुका तो उसका ज्ञान सम्बन्धी अहकार भी गलित होगया और अब मुनियोके पास पहुचते ही उसके शरीरमें भक्तिसे रोमाञ्च हो आया।

राजा यमने मुनियोकी तीन प्रदक्षिणा दी और बड़ी ही भक्तिके साथ उनकी वन्दना की। तत्पश्चात् वह सुधर्माचार्य द्वारा प्रतिपादित जैनधर्मका हृदयहारी व्याख्यान सुनने लगा। इस व्याख्यानसे उसके अन्तस्में वैराग्यकी नदी उमड आई।

राजा यमने अपने गर्दभ नामके पुत्रको बुलवाया और समस्त राजाओकी उपस्थितिमे उसे राज्यका पट्ट बाध दिया। तदनन्तर उसने अपने पाँचसौ पुत्रोके तथा अन्य नरेशोके साथ सुधर्माचार्यके निकट जैन दीक्षा ले ली। जब यम इस प्रकार दीक्षित होकर साधु हो गया तो उसके समस्त पुत्र थोडे ही समयमें ग्रन्थोके तथा तत्त्वोके पारगामी पडित हो गये। परन्तु यमका यह हाल था कि वह चर्यासम्बन्धी उठने बैठनेके नियमोके सिवाय और कुछ जान ही न पाया।

यमने अपनेको जब इस प्रकार ज्ञानाभ्याससे विहीन देखा तो उसके मनमे बडा ही विराग हुआ। उसने सोचा कि अपनी इस प्रकारकी स्थितिमे मुझे एक क्षणके लिए भी इस सघमे नही रहना चाहिए। यह सोच कर उसने अपने गुरु महाराजसे-सघ छोड कर चले जानेके सम्बन्धमे बार बार कहा। जब आचार्य महाराजने भी इसका तीव्र आग्रह देखा तो इसे सघ छोड कर चले जानेकी आज्ञा दे दी। इस प्रकार यम मुनिराज सघ छोड़कर एकाकी विहार करते हुए पूर्व देशमे आये।

एक दिन वह विहार करते हुए जारहे थे कि उन्हे एक ऐसा आदमी दिखलाई दिया जो एक गाड़ीमे बैठा हुआ था, जिसे दो खच्चर खीच रहे थे। गाड़ी जौके खेतमेसे जा रही थी, खच्चर जौ खानेको झपट रहे थे और आदमी उनकी डोरे खीचता हुआ उन्हे पीट रहा था।

योगीराजको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने तत्काल एक खण्डित श्लोककी रचना कर डाली। रचना इस प्रकार थी:–

" तरामाकर्षणोऽसि त्व भूयोऽपि प्रतिकर्षणः।
लक्षितस्ते मया भावो यवं गर्दभ याचसे ॥"

अर्थात्–'हे खच्चर, तुम्हारा आकर्षण यथार्थ है, परन्तु आदमी तुम्हे खीच लेता है और तुम अपनी इच्छाकी पूर्ति नही कर पाते हो'।

यम मुनिराज इस श्लोकका पाठ करते हुए ही देवताकी स्तुति करते, और इसका पाठ करते हुए ही वह अपनी प्रतिदिनकी समस्त स्वाध्याय आदि क्रियाएँ करते तथा इस प्रकार खूब ही प्रसन्न रहते।

एक दूसरे दिनकी बात है। यम मुनिराज विहार करते हुए रास्तेसे जारहे थे कि उन्होने कोणिकाके साथ क्रीड़ा करते हुए कुछ कुमारोको देखा। यमने इस बार भी एक खण्ड श्लोककी रचना इस प्रकार की–

" आधावन्तः प्रधावन्त सधावन्तो मत मया।
मन्दबुद्धिसमायुक्ता श्छिद्रे पश्यत कोणिकाम् ॥"

अर्थात्–'मैने इन मन्द बुद्धि कुमारोको इधर-उधर दौड़ते हुए और आते हुए देखा। और पापमे पड़ी हुई कोणिकाको देखो'।

विशुद्ध हृदय यम मुनिराज अब इन दो पद्योंका पाठ करते हुए ही बड़ी भक्तिके साथ अपनी समस्त बन्दना आदि दैनिक क्रियाओको किया करते ।

एक तीसरे दिनकी घटना है । यम योगीन्द्र विहार करते हुए जा रहे थे कि उन्हे सध्याके समय एक जाता हुआ बानर दिखलाई दिया । यम साधुने बड़े ही प्रयत्नसे एक श्लोककी फिर रचना कर डाली । वह रचना इस प्रकार थी.–

" विषाणनालशीताङ्ग सन्ध्याया मा व्रज क्वचित् ।
बुभुक्षाग्रस्तचेतस्काद्दीर्घात्ते दृश्यते भयम् ॥ "

अर्थात्–'हे बानर, तुम कमलके नालकी तरह ठडी सन्ध्यामे अब कही न जाओ । तुम्हारा दीर्घ मन जो भूखसे पीडित हो रहा है उससे भय है' ।

योगिराज यम प्रतिदिन इन तीनों पद्यों द्वारा ही बडे भक्ति भावके साथ अपनी प्रतिदिनकी स्वाध्याय आदि क्रियायो-का पालन करने लगे ।

एक दिन विहार करते हुए वह एक सुन्दर गाँवके बीचसे निकले । इन्होने उस गॉवमे एक इस प्रकारकी विशाल बावड़ी देखी, जिसमें पत्थरकी सीढिया लगी हुई थी । यम मुनिराजने देखा कि इन पत्थरकी सीढियोमे कुछ गड्ढे बने हुए है । वे इन गड्ढोको देख कर बहुत आश्चर्यमे पडे ।

इसी समय एक स्त्री दो घडे लेकर पानी भरने आई । यम उससे पूछने लगे–कोणिका, बतलाओ तो इन पत्थरकी सीढियोके बीच ये गोल-गोल पक्तिबद्ध गड्ढे क्यो और कैसे बने हुए है ?

जब उसने मुनिराजकी यह सीधी-सादी बात सुनी तो उसे मालूम हुआ कि यह बिलकुल ही भोले है और तब वह बड़े ही कौतुकके साथ उनसे कहने लगी–स्वामिन् ! नगरकी

स्त्रियां इन स्थानोंपर जलसे भरे हुए विशाल घडे रखती है और यह पद्धति वहुत पुराने समयसे चली आरही है, इसी लिए इन पत्थरोंमे भी इतने गहरे गड्ढे पड गये है।

जव योगिराज यमने यह रहस्य सुना तो उनके मनमें बड़ा ही विस्मय हुआ। उन्होने तत्काल ही एक पद्यकी रचना कर डाली और उसे वार-वार पढने लगें। रचना इस प्रकार थी –

"तिष्ठता गच्छताऽन्येन मृदुना कठिनोऽपि च।
भिन्नो ग्रावापि कालेन नित्यस्थेन घटेन सः॥"

'देखो, आते जाते हुए मृदुल और नित्य घटने भी समय पाकर कठोर पत्थर फोड दिया'।

इस प्रकार श्लोक-पाठ करके यम मुनिराजके मनको वहुत ही विस्मय हुआ। वे विचारने लगे, क्या हमारे कर्म इस पत्थर-से भी कठोर है जो मैंने वन्ध और मोक्षको दिखलाने वाले आचार्य महाराजको छोड़ दिया और इस अधार्मिक तथा अनुचित एकाकी विहारको अपना लिया। यम साधु इस प्रकार वहुत देर तक सोचते रहे और तत्पश्चात् वे अपने गुरु महाराजके निकट चल दिये। चलते चलते वे गहन वृक्षावलीसे सघन धर्मपुरके निकट ठहर गये। वही रात होगई। और इस समय जो दीर्घक और गर्दभने यमको यहा ठहरा हुआ देखा तो वे एक भयंकर तलवार लेकर इन्हे मारनेके लिए आ पहुंचे। ज्यों ही दीर्घक तलवार निकालकर इन्ह मारनेके लिए उद्यत हुआ, वह मुनि-वधसे डर गया और उसने अपनी तलवार म्यानमे रख ली। जब गर्दभका नम्बर आया तो उसका भी यही हाल हुआ। इतनेमें मुनिराजका स्वाध्यायका समय होगया, वे इस प्रकार श्लोक-खण्डका पाठ करने लगे—

"आकर्षन्तौ प्रकर्षन्तौ स्वमतं क्रूरमानसौ।'

अर्थात्—दो क्रूर हृदय जीवोंने पहले तो पाप करना चाहा परन्तु बादमे शान्त रह गये।

जब गर्दभने मुनिराजका यह पाठ सुना तो वह सामने खडे हुए दीर्घकसे कहने लगा—हे महामते, इस मुनिने हम दोनोंको ही पहिचान लिया है। दोनोको बडी ही शङ्का हुई और वे परस्पर-में एक दूसरेको देखते हुए खड़े रह गये।

जब दीर्घक और गर्दभ योगिराज यमकी बातका उत्तर न देकर बिलकुल चुप रह गये तो योगी यम एक दूसरे खण्ड श्लोकका पाठ करने लगे—

'आधावन्तौ प्रधावन्तौ किञ्चिदेतौ समीपगौ'।

अर्थात्—आते हुए और दौड़ते हुए दोनो ही अब पासमे आगये है।

यह सुनकर गर्दभका शरीर भयसे काँप गया और वह दीर्घकसे कहने लगा—दीर्घक, तुमने तो यह बतलाया था कि यह मुनिराज इसलिए यहाँ आये है कि हम दोनोको मार डालेंगे और हमारा राज्य छीन लेगे। सो दीर्घक, यह हमारा राज्य अपहरण करने नही आये है। यह तो मेरी बहिन कोणिकाको समझाने आये है।

इस प्रकार सुनकर भी जब दीर्घक चुप रहगया तो योगिराज-ने तृतीय श्लोकका खण्ड पढना शुरू कर दिया।

"मृणालनालशीताङ्ग नक्तं मा याहि दर्दुरे"।

अर्थात्—हे कमल नालकी तरह शीतल शरीर वाले मेढक तुम रातमे मत जाओ।

गर्दभने यह श्लोक-खण्ड सुना और मौन रह कर इस प्रकार विचार करने लगा—यह दीर्घक नामका मन्त्री बड़ा ही धूर्त है और मन्त्री नही कुमन्त्री है। यह उद्धत है, स्वार्थी है, क्रूर है, और वञ्चक है। मै इसे अब अच्छी तरह समझ गया। दूसरे आदमीके साथ सैकड़ो उपकार करो, उसके साथ कितना ही रहो और उसे कितना ही मानो, परन्तु उसे कभी भी अपना

नही बनाया जा सकता, क्यों कि आखिर परगया पराया ही है। हमारे पिता इस साधु अवस्थामे रहकर भी पुत्रके स्नेहके कारण ही हमे शिक्षा देनेके लिए यहाँ आये हुए है। ठीक है, पिताके लिए पुत्र बहुत ही प्रिय होता है। गर्दभ इस प्रकार विचार करके अपनी पितृ-भक्तिसे प्रेरित होकर मुनिराजके पास पहुँचा। उसने भक्ति पूर्वक मुनिराजकी बन्दना की और उनसे अपने अपराधकी क्षमा मागी। तत्पश्चात् वह जैनधर्मको स्वीकार करके दीर्घके साथ घर लौट आया।

इधर योगिराज यम भी अपने गुरुमहाराजके निकट पहुँचे और उनके पासमे रहकर बडे ही आदरके साथ घोर तपस्या करने लग। इस प्रकार तपस्या करते करते यम मुनिराज-को अनेक ऋद्धियोंकी प्राप्ति हो गई।

जिनागममें पदानुसारिणी बुद्धि, कोष्ठबुद्धि और संभिन्न-श्रोतृका आदि बुद्धिया बतलाई है। उग्र तप, दीप्त तप, तप्त तप, महातप और घोर तप इत्यादि प्रकारके तपोका भी जिनागममे विधान है। अणिमा, महिमा, प्राप्ति, वशित्व, कामरूपिता, गरिमा, ईशिता और वीर्य इस प्रकार ये आठ लब्धियाँ है। विद्वानोने आठ चारण लब्धिया भी बतलाई है, जो अपने अपने स्वरूपके अनुसार फल देनेवाली है। वे चारण लब्धिया इस प्रकार है :—

जल लब्धि, तन्तु लब्धि, जघालब्धि, बीजलब्धि, पुष्पलब्धि, फल लब्धि, आकाश लब्धि और श्रेणिलब्धि। तथा आमौषधि खेलौषधि, मलौषधि, जल्लौषधि और सर्वौषधि ये भी पाँच लब्धिया है। विद्वानोने चार रस-लब्धिया भी बतलाई है और वे इस प्रकार है —अमृतलब्धि, क्षीर लब्धि, मधु लब्धि और घृतलब्धि। इसके सिवाय औषधिकी (?) अक्षीणता तथा आहार-की अक्षीणता इस प्रकार ये दो अक्षीण महानस लब्धिया है।

योगिराज यमको ये समस्त ही ऋद्धियां प्राप्त हो चुकी थी।

इस प्रकार उन्होंने धर्मनगरके निकटवर्ती कुमार पर्वतके शिखर-पर विराजमान होकर पाचसौ मुनियोके साथ श्रमणधर्मका विधिवत् पालन किया और अन्तमें चार प्रकारकी आराधनाका आराधन करके वह स्वर्ग सिधार गये ।

इस प्रकार तीन खण्डित श्लोकोके स्वाध्याय
करनेमें निरत रहने वाले यम मुनिराज-
के स्वर्ग-गमनको वतलाने वाला
यह कथानक सम्पूर्ण हुआ ।

——०○——

६२. दृढसूर्य चोरकी कथा

अवन्ती देशमे उज्जयिनी नामकी समृद्ध नगरी है । इस नगरीमें धनपाल नामका राजा रहता था । धनपाल बडा ही प्रतापशाली था । इसकी पत्नीका नाम धनमती था । धनमती धनपालके मन और नेत्रोंको बहुत ही प्रिय थी । उसके स्तन उन्नत थे और नेत्र कमल-दलके समान सुन्दर ।

इस राजाका एक सेठ था, जिसका नाम धनदत्त था । धनदत्त वहुत ही धन-सम्पन्न था । इसकी पत्नीका नाम धनदत्ता था । धनदत्ताका शरीर रूप-राशिमे निखर रहा था और वह वडी ही पतिव्रता थी ।

इसी नगरमे दृढसूर्य नामका चोर रहता था । इसकी पत्नी-का नाम वसन्तसेना था, जो वेश्या थी । दृढसूर्य उससे वहुत ही प्रेम करता था ।

एक दिनकी बात है । रानी धनमती मनोहर उद्यान मे आई हुई थी । वसन्तसेनाने इसके गलेमें पडे हुए सुन्दर हारको देखा तो उसके लिये वह वहुत ही दुखी हुई ।

जव दृढसूर्यने वसन्तसेनाको खिन्नमन देखा तो वह

उससे पूछने लगा—देवि, तुम आज दुखित क्यों हो ? और क्यो इस प्रकार अप्रसन्न मनसे बैठी हुई सोच कर रही हो ?

दृढसूर्यकी बात सुनकर वसन्तसेना कहने लगी—देव, धनमती रानीका हार देखकर ही मै कर्त्तव्य-विमूढ़ होगई हूँ और इस कारण ही मेरा मुख-कमल मुरझाया हुआ है । सो यदि तुमने आज धनमतीका हार लाकर मुझे नही दिया तो विश्वास रक्खो, मै बहुत शीघ्र ही अपने प्राण छोड दूँगी ।

दृढसूर्यने वसन्तसेनाकी बात सुनी और वह कहने लगा—भद्रे, तुम जरा भी शोक और दुख मत करो । मै तुम्हें अवश्य आज हार लाकर दूँगा । उसने वसन्तसेनासे इतना कहा और रात होते ही वह रानीके महलमे जा पहुँचा । उसने रानीके गलेमेसे हार उतार लिया और ज्यो ही वह उस मणिमय हारको लेकर चला, हारकी जगमगाती हुई ज्योतिसे आकाश चमक उठा और महलसे निकलते ही दृढसूर्यको यमपाल नामके कोतवालने पकड लिया ।

प्रभात हुआ और राजाके आज्ञानुसार यमपालने दृढसूर्य चोरको शूलीपर चढ़ा दिया । ठीक इसी समय धनदत्त सेठ जिनेन्द्र भगवान्‌की वन्दना करके लौट रहा था । दृढसूर्यने इसको देखा और देखते ही कहने लगा—"हे धनदत्त सेठ, तुम कुलीन श्रावक हो, दयावान् हो और सज्जन हो । मुझे इस समय बडे जोरकी प्यास लग रही है । यदि मुझे थोडा पानी पिला सको तो बड़ी कृपा होगी ।"

जब धनदत्तने देखा कि दृढसूर्य शूलीपर चढ़ा हुआ है और प्यासके मारे उसका मन छटपटा रहा है तो उसका हृदय दयार्द्र हो उठा और वह दृढसूर्यसे कहने लगा—"देखो दृढसूर्य, मुझे समस्त प्राणियोपर दया करने वाले गुरुराजकी बारह वर्ष तक सेवा करनेके बाद आज ही एक महान मन्त्र हाथ लगा है। सो यदि मै तुम्हें पानी लेने जाता हूँ तो बारह वर्षकी सेवाके फलस्व-

रूप प्राप्त किया गया यह मन्त्र भूला जाता हूँ। इसलिए यदि तुम इस महामन्त्रको भावपूर्वक कण्ठस्थ रख सको तो मैं तुम्हे ठडा पानी पिला सकता हूँ।"

दृढसूर्य बोला—हे प्राणियोपर दया करने वाले सेठ! आप वह मन्त्र मुझे जल्दी ही वतला दीजिए। धनदत्त सेठने इस मरणासन्न दृढसूर्यको महामन्त्र बतला दिया और आप पानी लेने चल दिया।

इस महामन्त्रका जाप करते करते ही दृढसूर्य मर गया और मरकर वह इस मन्त्रके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमें जाकर देव हुआ जहाँ दिव्य दुन्दुभियोकी गभीर ध्वनि हो रही थी और सुन्दर देवाङ्गनाए विद्यमान थी। उधर धनदत्त चोरको पञ्च-नमस्कार मन्त्र देकर सेठ अनेक मुनियोसे विराजमान चैत्यालयमें जा पहुँचा।

ज्यो ही धनपाल नरेशको खबर लगी कि धनदत्तका दृढसूर्य चोरके साथ सम्बन्ध है तो उसने धनदत्तके मकानको लूटना प्रारभ कर दिया।

दृढसूर्यके जीवने प्रथम स्वर्गमे पहुँचकर अवधिज्ञानसे अपने पूर्वभवका पता लगाया तो उसे अपने पूर्वजन्मका समस्त वृत्तान्त मालूम हो गया और उस समय उसे यह भी मालूम हुआ कि धनपाल राजा धनदत्तके ऊपर महान् उपसर्ग कर रहा है। यह जान कर इसे वड़ा ही क्रोध हो आया और वह तुरन्त ही चलकर धनदत्तके मकानपर आ पहुचा।

पूर्वभवके दृढसूर्यके जीव देवने धनदत्तके घर आये हुए धनपालके समस्त अनुचरोको अपनी मायाके बलमे गिरा दिया। उसने एक आदमीके नाककान काट डाले, उसका सिर मूड दिया और इस प्रकारकी अवस्थामे उसे धनपालके पास भेज दिया।

यह आदमी सभा भवनमे बैठे हुए धनपालके निकट पहुचा। उसका सारा शरीर भयसे कंप रहा था। धनपालने इस

आदमीको देखा और पूछा—भद्र, बतलाओ, तुम्हारी किसने यह दशा की है ? मै उसे अभी हाल यमराजके यहाँ भेजता हूँ।

इस सुभटका मन भयसे बहुत ही व्याकुल हो रहा था। वह टूटे-फूट शब्दोंमे बोला—'राजन्, धनदत्तके मकानके दरवाजे-पर एक आदमी बैठा हुआ है। उसका शरीर स्याहीके समान काला है और आँखे गुमचीके समान लाल-लाल है। उसने अपनी लाठीसे आपके द्वारा भेजे गये समस्त पुरुषोंको मार डाला है और उसने ही मेरी यह अवस्था कर दी है।'

ज्यो ही राजाने यह समाचार सुना, उसकी आँखे क्रोधसे लाल हो उठीं। उसने शीघ्र ही अपनी चतुरङ्ग सेना भेज दी। जैसे ही यह सेना पूर्व भवके दृढसूर्य देवके पास आई, उसने तत्क्षण उसे पृथ्वी पर दे पछाड़ा।

जब राजाको खबर लगी कि उसकी समस्त चतुरङ्ग सेना मार डाली गई, तो वह तुरन्त ही अपनी निजी सैन्य साथ ले उसके निकट जा पहुँचा। दृढसूर्य देवने राजाकी इस सेनाको भी तत्क्षण मार गिराया। इस प्रकार ज्यो ही धनपालने अपनी सेनाको पृथ्वी पर गिरते हुए देखा, उसका मन अत्यन्त व्याकुल हो उठा और वह शीघ्र ही युद्धस्थलसे भाग निकला।

धनपालका सारा शरीर भयसे काप रहा था। वह शीघ्र ही जिन मन्दिर पहुँचा और धनदत्त सेठको उसने नमस्कार किया। ज्यों ही वह धनदत्तसे इस घटना चक्रको सुनानेके लिए तैयार हुआ, इतनेमें वह देव भी जिनमन्दिर जा पहुँचा।

ज्यो ही देवने देखा कि धनपाल धनदत्तकी शरणमे जा पहुँचा है तो वह क्रोधसे अपने ओठ चबाता हुआ सेठसे कहने लगा। सेठजी ! आप अपने सामने बैठ हुए इस राजाको शीघ्र ही छोड़ दीजिए, जिससे मै आपके सामने ही अपने हाथसे इसे दण्ड दूँ।

धनदत्त बोला—अरे भाई, बतलाओ तो तुम कौन हो और किस कारण राजासे इतने क्रुद्ध हो रहे हो ?

देवने कहा—"सेठ जी, मै ससार-प्रसिद्ध दृढसूर्य नामका चोर हूँ । मै इस राजाके महलमे हार चुराने घुसा था । हार लेकर जब वहाँसे निकला तो कोतवालने मुझे पकड लिया । मै शूलीपर चढा दिया गया । मुझे उस समय वड़ी ही तीव्र प्यास लग रही थी और उसके मारे मेरा मन छटपटा रहा था । सो आपके पाससे मुझे पञ्चनमस्कार मन्त्र मिला । मैने इस पञ्चनमस्कार मन्त्रका ध्यान करते करते ही अपने प्राण छोडे और आपके समागमके कारण मै सौधर्म स्वर्गमें महर्द्धिक देव हो गया । श्रेष्ठिन्, जब मुझे अवधिज्ञानसे अपने पूर्वभवका वृत्तान्त मालूम हुआ और यह मालूम हुआ कि राजा आपसे रुष्ट होकर आपकी समस्त धन-सम्पत्ति लुटवा रहा है और आपको पीडा पहुँचाना चाहता है तो मै आपके गुणोसे आकर्षित होकर उस पीड़ाको दूर करनेके लिए यहा आया ।"

देव कहता गया—"सेठ जी, मैने इस राजाकी समस्त सेना मार डाली है,और अब इस राजाको मारनेको लिए यहाँ आया हूँ । अतएव आप इसे छोड दीजिए, मै इसे अभी हाल सजा देता हूँ ।"

देवताकी यह बात सुनकर धनदत्तको वडा ही विस्मय हुआ । वह देवसे कहने लगा— सज्जनोत्तम, अब तुम हमारे इस स्वामी-को छोड दो । तुमने हमारे प्रति खूब वात्सल्य दर्शाया ।

धनदत्त सेठके इच्छानुसार देवने राजाको अभयदान दे दिया और उसने अपने देवत्वके बलसे समस्त सेनाको भी पूर्ववत् सजीव कर दिया, जिससे वह तुरन्त उठ बैठी ।

जब धनपाल नरेशने यह अतिशय देखा तो उसे वडा ही वैराग्य हुआ । उसने अपनी सम्पूर्ण राज्य लक्ष्मी अपने पुत्रको सौप दी और वह वडी ही भक्तिके साथ समस्त वन्धु-वान्धवोसे

तथा सेठ धनदत्तसे पूछ कर जिनसेन मुनिराजके पास दीक्षित हो गया।

पूर्व भवके दृढसूर्य देवने धनदत्तकी सुवर्ण-कमलोसे भक्ति पूर्वक पूजा की और वह स्वर्ग चला गया।

इस प्रकार दढसूर्य चोरके शूलीपर चढाने तथा पञ्च नमस्कार मन्त्रके स्मरण मात्रसे देवत्वकी प्राप्तिको बतलाने वाला यह कथानक समाप्त हुआ।

—o·o—

६३ अर्हद्दासकी कथा

भव्य जीवो, यहा एक विभिन्न प्रकारसे तथा सक्षेपसे अर्हद्दासका कथानक लिखा जाता है जिसे आप लोग भाव-पूर्वक सुनिए—

शूरसेन देशमे उत्तर मथुरा नामकी नगरी है। इस नगरीमे उदितोदय नामका राजा रहता था। इसकी महादेवीका नाम उदिता था। उदिता बहुत ही रूपवती और सौभाग्यवती थी। इन दोनोक एक पुत्र था, जिसका नाम प्रमुदितोदय था।

इस राजाने अपने प्रतापसे समस्त शत्रुनरेशोंको अपने अधीन कर लिया था। उदितोदयके एक मन्त्री था, जिसका नाम सुबुद्धि था और जो मन्त्रकलामे बहुत ही निपुण था।

तथा इस राजाका एक सेठ था, जिसका नाम जिनदास था। वह राजाको बहुत ही प्रिय था। जिनदासकी आठ पत्निया थी। उनके नाम इस प्रकार थे:—पहलीका नाम मित्रश्री था। दूसरीका नाम कुन्दश्री था। तीसरीका नाम विष्णुश्री था, जिसकी कान्ति लक्ष्मीके समान थी। चौथीका नाम नागश्री था, जो नागकुमारीकी तरह सुन्दर थी। पाचवीका नाम पद्मलता था। छठीका नाम कनकलता था। सातवीका नाम विद्युल्लता था। और आठवी पत्नीका नाम कुन्दलता था।

इस नगरीमें एक स्वर्णखुर नामका महान् चोर रहता था। वह प्रतिदिन वडी-वडी चोरिया करता और उसीसे अपना निर्वाह करता था।

इस प्रकार सब लोग अपनी-अपनी मर्यादानुसार काल यापन कर रहे थे कि इतनेमे कामियोके मनको प्रसन्न करने वाला कौमुदी महोत्सव आ उपस्थित हुआ।

कार्तिक महीनाके शुक्लपक्षमे अष्टमीसे लेंकर पूर्णिमा तक ही कौमुदी महोत्सवका माहात्म्य बतलाया गया है। सो इस महोत्सवके अवसरपर अष्टमीसे लेकर पूर्णिमा तक उत्तर मथुरा पुरीकी समस्त नारिया प्रमद वनमे जाती और राज पुरुषोसे रक्षित होकर खूब ही स्वच्छन्द क्रीड़ा किया करती।

जब कौमुदी महोत्सवका समय निकट आगया तो अपने सुयशके कारण समस्त ससारमे सुप्रसिद्ध और नीतिज्ञ राजाने अपने नगरमे कौमुदी महोत्सव मनानेकी मुनादी पिटवा दी और सूचना करा दी कि इन क्रीडा करती हुई नारियोके बीचमे जो कोई पुरुष प्रवेश करेगा, भले ही वह हमारा लडका ही क्यो न हो, उसे प्राण दण्ड दिया जावेगा। और इस समय पुरुषोका कर्त्तव्य होगा कि वे नगरके अन्दर ही रहें और यहाँका कार्यक्रम सम्पन्न करे।

उदितोदय राजाने इस प्रकार कौमुदी महोत्सवकी घोषणा तो करा दी, परन्तु उसे महादेवीका विरह सताने लगा। उसका मन कामसे विह्वल हो गया और वह मन्त्रीसे कहने लगा—"मन्त्रिन्! मेरे मनमे कौतुक उत्पन्न हो रहा है कि मैं प्रमद वनमे जाकर कौमुदी महोत्सवके अवसरपर क्रीडा करती हुई स्त्रियोको देखू।"

जब महामति सुबुद्धि मन्त्रीने राजाकी यह बात सुनी और उसे महादेवीके दर्शन करनेके लिए अत्यन्त उत्कण्ठित पाया तो वह कहने लगा—" राजन्, आपने स्वय ही इस प्रकारकी

घोषणा कराई है कि किसी भी पुरुषको इन स्त्रियोके बीचमें नही जाना चाहिए। यदि आप स्वय ही वहा पहुँच जावेगे तो आप अपनी प्रतिज्ञाको अपने आप ही भङ्ग करेंगे और इस तरह आपका बड़ा ही अपयश फैलेगा। राजन्! आपने प्रतिज्ञा की है, आप अनेक गुणोके समुद्र है और समस्त राजाओमे प्रधान है। इस लिए आपका प्रमदवनमे स्त्रियोके बीच जाना कि ी भी तरह समुचित नही है।"

राजाने मन्त्रीकी यह हितकर बात सुनी, फिर भी वह कहने लगा—महामतिशाली मन्त्रिन्, मुझसे महादेवीका विरह सहन नही किया जा सकता। मै अवश्य ही वहाँ जाऊँगा।

राजाका अविचल आग्रह देख कर मत्री बोला—राजन्, मै आपको एक घटना सुनाता हूँ। आप इसे ध्यानसे सुनिए।

" कुरुजाङ्गल देशमे हस्तिनागपुर नामका एक नगर था। इस नगरका राजा सुयोधन था। सुयोधनके एक पत्नी थी, जिसका नाम धनदत्ता था। इसके एक मन्त्री था, जिसका नाम सुमित्र था। एक पुरोहित था, जिसका ाम सोमशर्मा था। और एक कोतवाल था, जिसका नाम यमपाश था।

एक दिनकी बात है। सुयोधन अपने कुछ शत्रुओपर चढाई करनेके लिए परदेश गया और यमपाशको राजकार्य-का भार सौप गया। जब वह शत्रुओंको जीतकर वापिस आया तो समस्त पुरवासी जनसमूह उसके दर्शन करनेक लिए आया।

जब राजाने अपने सामने बैठी विशाल जनता देखी तो वह महाजनोसे पूछने लगा—महाजनो, आपलोग अच्छी तरहसे रहे ना? कभी किसी प्रकारकी तकलीफ तो नही हुई?

राजाकी बात सुनकर सभी महाजन कहने लगे—राजन्, आपके आरक्षक यमपाशके प्रसादसे हम सब लोग बड़े ही आनन्दके साथ रहे।

पुरवासी महाजनोकी वात सुन कर सुयोधन महाराजको वडा क्रोध आया। वह सोचने लगा–'देखो, समस्त ही पुरवासी जनता और महाजन आरक्षक यमपाशकी ही गुणगाथा गाते हुए उसके प्रसादसे ही अपनी कुशलता वतला रहे ह, हमारे प्रसाद और उपकारका तो इन लोगोको बिलकुल ही ध्यान नही रहा है।'

इस प्रकार यमपाशके साथ ईर्ष्या रखनेके कारण राजाने पुरोहित और मन्त्रीको मिलाकर कोतवालके विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। इन तीनोने मिल कर रातमें राजखजाना खोद डाला और इसमेसे मूल्यवान् रत्न निकाल कर अन्यत्र रख दिया। तदनन्तर राजाने यमपाश कोतवालको बुलवाया और उससे खजानेके लूट जानेका वृत्तान्त सुनाया।

यमपाशको यह समाचार सुनकर वहुत ही डर लगा। वह तुरन्त ही खजानेके स्थानपर पहुँचा और उसे वहाँ रक्खी हुई अगूठी, यज्ञोपवीत और मणिमय खड़ाऊँ दिखलाई दी। वहाँ इन तीनो चीजोको देख कर उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। उसने इन तीनो वस्तुओको उठा लिया और भयभीत होता हुआ अपने मकानपर चला आया।

इसके वाद राजाने पुन यमपाशको अपने पास वुलवाया और क्रोधसे लाल-लाल आंखे दिखलाते हुए वह कहने लगा–"रे दुष्ट, तू दूसरोके मकानो और रत्नोकी तो वडी सावधानीके साथ रक्षा करता है, परन्तु हमारे महल और धनकी इतनी सावधानीके साथ क्यो रक्षा नही करता है? अव तेरी कुशल इसीमे है कि तू सात दिनके भीतर चोरी गये हुए द्रव्यको और चोरको हमारे सामने उपस्थित कर दे। यदि तूने यह नही किया और इसमें जरा भी असावधानी की तो मै तुझे अपनी इस तलवारसे सजा दूगा।"

राजाकी यह आज्ञा सुन कर कोतवालका मन असमजस-मे पड गया। उसने राजासे कहा—'अच्छी बात है। मै आपकी आज्ञाका पालन करूँगा।' और इतना कह कर वह राजाके पाससे चल दिया।

राजाके निकटसे चल कर यमपाश नगरीके महाजनों-आदिके पास पहुचा। उसका सम्पूर्ण शरीर काँप रहा था। उसने इन महाजनोसे कहा कि मैने चोरका पता लगा लिया है। आप लोग बडे ही स्नही है, सज्जनोकी सेवामे तत्पर रहते है और दयालु है। इसलिए आप लोगोका कर्तव्य है कि आप इस असह्य सकटके समय हमारी सहायता करें। इस अवसरपर यमपाशने जब राजकुमार, मन्त्रिपुत्र, पुरोहित-पुत्र और नगरके सेठ महाजनोको राजाकी मणिमय खड़ाऊ पुरोहितका यज्ञोपवीत और मन्त्रीकी अगूठी दिखलाई तो सबको बडा ही आश्चर्य हुआ। तदनन्तर कुशल और विशुद्ध हृदय यमपाश इन लोगोसे कहने लगा—

"आप लोग देखिए, राजाने खुद ही अपने घरकी चोरी की है, और मेरे ऊपर रुष्ट होने के कारण मुझे व्यर्थ ही इस जालमे फसाकर मारना चाहते है।"

जब सब लोगोने यमपाशके मुखसे इस रहस्यको सुना तो वे सब उससे कहने लगे—"कोतवाल, तुम जरा भी न डरो। हम सब लोग तुम्हारी सहायता करेंगे। तुम विश्वास रक्खो, यदि राजा स्वय ही शान्त नही हो जाते है तो हम सब लोगोको मिल कर उन्हे दण्ड देना पड़ेगा।"

इस प्रकार यमपाशने समस्त महाजनो आदिको अपना आशय समझा दिया और वह प्रसन्नताके साथ विनीत वेषमे राजाके आज्ञानुसार राजसभामे पहुँचा।

सुयोधन नरेशने ज्यो ही यमपाशको राजसभामे उपस्थित

होते देखा, उसने यमपाशसे कहा—क्यों कोतवाल, क्या चोरका पता लगा ? यदि लगा हो तो मुझे शीघ्र ही बतलाओ।

कोतवाल बोला—स्वामिन्, मैंने इधर-उधर खूब ही छान-बीन की, परन्तु मुझ चोरका पता नहीं चला। एक पुरुष सुभाषित पढ रहा था और एक आख्यान भी सुना रहा था, सो मेरा बहुतसा समय इसी आख्यानके सुननेमें निकल गया।

राजा कहने लगा—कोतवाल वह कैसा आख्यान था ? कोतवाल उसे इस प्रकार सुनाने लगा—

"स्थिता वय चिरकाल पादपे निरुपद्रवे ।
मूलात् समुत्थिता वल्ली जात शरणतो भयम् ॥"

"हम लोग चिरकाल तक उपद्रवसे शून्य वृक्षपर रहे, परन्तु कुछ दिनोके पश्चात् वृक्षके मूल भागसे एक लता उत्पन्न हुई और अब रक्षकसे ही भय खडा हो गया।"

एक वृक्षपर रहने वाले पक्षिगण इस प्रकार कह रहे थे, जिसकी कथा इस प्रकार है—

"एक वनमे सरोवरके किनारे एक सरल वृक्ष था, जिस-पर अनेक सुन्दर पक्षी निवास करते थे। और ये बहुत ही कलरव किया करते थे।

एक बार एक वृद्ध हंसने जो इन पक्षियोका नायक था, देखा कि इस वृक्ष के नीचे एक सुकुमार लताका अकुर उग रहा है। इस अकुरको देखकर हस इन पक्षियोसे कहने लगा—आप लोगोको चाहिए कि आप सब बहुश्रुत और अनुभवी बुड्ढोंकी बातको सदा ही स्थिरचित्तसे सुने। इस वृक्षके नीचेसे यह जो कोमल अकुर उग रहा है, हम सबको मिलकर इसे चोंच और नखोसे नष्ट कर देना चाहिये।

वृद्धकी यह परिणाममे हितकर बात सुनकर युवा पक्षी हँस पडे और वृद्ध हससे कहने लगे—अरे वृद्ध, तुम वृद्ध हो

गये हो और मौतसे डरते हो। तुम्हारी मति मारी गई है इसीलिए तुम यह बात कह रहे हो। क्या लताका यह अकुर, इतना बढ जायगा कि हमारी सामर्थ्यसे भी बाहर हो जायगा ?

जब वृद्धहमने यह उपहासपूर्ण वात सुनी तो वह मौन होकर और अपने अङ्गोको सकोच कर रह गया।

काल-क्रममे वह अकुर बढता हुआ लताके रूपमे परिणत होगया। लता वृक्षसे लिपट गई और एक दिन एक बहेलिया इसके सहारे उस उन्नत वृक्षपर चढ गया। उसने तुरन्त ही समस्त हसोको बाध लिया और बडी ही प्रसन्नताके साथ उन्हें पृथ्वीपर गिराने लगा। इस समय समस्त पक्षियोके शरीर भयके कारण एकदम कम्पित हो रहे थे। वृद्ध हसने इन हसोसे कहा कि अभी तुम लोग अपने शरीर बिलकुल शिथिल कर दो। जब यह बहेलिया तुम सबको एक एक करके जमीनपर गिरा चुके तो सब एक साथ उडकर चल देना। यही हुआ। ज्यों ही बहेलियाने इन्हे एक एक करके गिराया, ये सब चुपचाप पड़े रहे और जब सब पक्षियोको गिरा चुका तो वे धूर्त वृद्ध हसकी सूचनानुसार तुरन्त ही आकाशमें उड गये।"

यमपाश कोतवाल सुयोधन राजासे कहने लगा—राजन्, वस्तुत मै यही आख्यान सुनता रहा और इसके सुनने तथा समझनेमे ही मेरा सारा समय निकल गया।

इस प्रकार कोतवालका पहला दिन तो समाप्त हुआ। दूसरा दिन हुआ। राजा सुयोधन सभामे आया। यमपाश भी मनमे विस्मय छिपाये सभामे पहुँचा। जब राजाने कोतवालको सामने उपस्थित देखा तो वह कोतवालसे पूछने लगा—क्या तुमने आज चोरका पता लगा पाया है ? यदि लगा सके हो तो मुझे बतलाओ ?

यमपाशने उत्तर दिया—राजन्, मैने बहुत ही खोज की,

परन्तु चोरका पता नही चल सका । इसके सिवाय एक कुम्हार एक आख्यान सुना रहा था । सो उसके सुननेमे ही बहुतसा समय निकल गया । कुम्भकार कह रहा था–

"जिस मिट्टीके पिण्डसे मै दीन दुखी प्राणियोके लिए सदैव भिक्षा देता रहा, जिस मृत्पिण्डसे मैने देवताओको बलि दी, जिस पिण्डसे मैने अपने घर आये हुए महान् स्नेही स्वजनोका प्रीतिपूर्वक सम्मान किया, और जिसे बहुत दूरसे लाकर मैने बडे ही क्लेशसे तैयार किया, खेद, आज उसीने मेरी कमर तोड दी ! आज मुझे रक्षकसे ही भय होगया।

इसी समय किसी मित्रने बुद्धिमान् कुम्हारसे पूछा-मित्र, बतलाओ तो किस चीजने तुम्हारी कमर तोड दी ? वह उससे कहने लगा-मित्र, जिस मृत्पिण्डसे मै जीविका चलाता हूँ उसीने मेरी कमर तोड दी है।

यमपाश कोतवाल सुयोधन महाराजसे कहने लगा–हे समस्त प्राणियोंके शरण्य और समस्त जनताके प्रेम-पात्र राजन्, कल कुम्भकारकी यह राम कहानी सुनता रहगया ।

तीसरा दिन आया । यमपाश पुनः पुलकित मनके साथ राज-सभामे पहुँचा । राजाने आज भी कोतवालसे चोरके मिलने-का समाचार पूछा । इस बार भी यमपाशने नकारात्मक उत्तर दिया । और वह आजके सुने हुए आख्यानको राजासे इस प्रकार सुनाने लगा–

"पिता जिसका गला दबावे, माता जिसे विष दे और राजा जिसे लूटनेके लिए तैयार हो वह किसकी शरणमे जावे ?"

घटनाका सम्बन्ध निम्न प्रकार है–

"भरत क्षेत्रमे धर्मपुर नामका सुन्दर नगर था । इस नगरके राजाका नाम वरधर्म था और इसकी पत्नीका नाम वरधर्मा ।

वरधर्मके एक मन्त्री था, जिसका नाम जयदेव था। जय-देवकी पत्नीका नाम जयदेवी था और ये दोनो ही पारस्परिक प्रेमके साथ बडे ही सुखसे अपना जीवन-यापन करते थे।

एक दिनकी बात है। महान् बलशाली राजा और मन्त्री दोनों ही एक शक्ति सम्पन्न राजाको जीतनेके लिए बड़ी भारी सेनाके साथ परदेशके लिए रवाना हुए। राजाने थोडे ही दिनो-के भीतर उस शत्रुको अपने वशमे कर लिया और तत्पश्चात् वह शीघ्र ही ध्वजाओकी पक्तिसे सुशोभित नगरको लौट आया।

वह ज्यो ही चित्र-सज्जित दीवाल वाले नगरके प्रधान द्वारसे प्रवेश करने लगा, वह विशाल द्वार एकदम अर्रा पडा। ज्यो ही राजाने इस नगरके द्वारको गिरते हुए देखा, उसने इसे बडा भारी अपशकुन समझा और वह नगरमें न जाकर उसके बाहर ही एक स्थानपर ठहर गया।

राजाने इस द्वारको फिरसे उठवाया, परन्तु वह इस बार भी गिर गया। यह देखकर राजाको बड़ा विस्मय हुआ और वह मन्त्री जयदेवसे कहने लगा—मन्त्रिन्, इस समय तुम हमें कोई सुन्दर उपाय बतलाओ, जिससे यह उन्नत नगर द्वार स्थिर बना रह सके।

मन्त्री बोला—राजन्! आप अपने मनको इस चिन्तासे विह्वल क्यो कर रहे है? इस नगर द्वारके स्थिर बने रहनेका हमारी समझमे केवल एक ही उपाय है। और वह यह है कि आप एक पुरुषकी हत्या करके इस कोटके दरवाजेपर उसकी बलि चढावे।

राजा यह सुनकर चुप रह गया। इस बीच ही पुरवासी जनता आ पहुँची और उसे इस घटनाका पता चला तो वह राजा से कहने लगी-राजन, इस सम्बन्धमे आप बिलकुल चुप रहिए। हम लोग सब ठीक किये लेते है। हम लोगोमेसे जो भी इस

बलिकी खातिर मनुष्य देगा, उसे हम लोग बडे ही आदरके साथ एक लाख दीनार देंगे।

इस तरह पुरवासी जनताके अनुरोधसे सारे नगरमे यह घोषणा करा दी गई कि जो नगर द्वारकी बलिके लिए एक आदमी देगा, उसे एक लाख दीनारें दी जावेगी। इस घोषणाको सब लोगोने पसन्द किया।

परच, इसी धर्मपुर नामके नगरमे एक गोचरदत्त नामका ब्राह्मण रहता था। वह बडा ही कठोर भाषी था और दारिद्रय-से मारा हुआ था। इसकी पत्नीका नाम दत्ता था। इन दोनोके सात पुत्र थे। पहलेका नाम सुदत्त था, दूसरेका नाम शिव-दत्त था, तीसरेका नाम गङ्गदत्त था, चौथेका नाम वसुदत्त था, पाँचवेका नाम सूर्यदत्त था, छठेका नाम विष्णुदत्त था और सातवेका नाम इन्द्रदत्त था।

ज्यो ही गोचरदत्तकी पत्नीने यह घोषणा सुनी, उसका मन बडा ही प्रसन्न हुआ। वह दारिद्रयसे पीडित थी, अतएव अपने पतिसे कहने लगी—यद्यपि सभी पुत्र अपने प्रिय है, परन्तु इनमेसे किसी एकको भी देकर एक लाख दीनारे प्राप्त की जा सकती है।

गोचरदत्त ब्राह्मणने जैसे ही अपनी पत्नीकी यह बात सुनी और उसका मन धनके प्रति आकर्षित देखा, वह भी बडा ही प्रसन्न हुआ और अपनी पत्नीसे कहने लगा—प्रिये, इस समय हम जैसे टकियोंको द्रव्यसे मतलब है, पुत्रसे इतना मतलब नही है क्योकि पुत्र तो और भी हो जावेंगे। प्रिये, इस-लिए तुम एक पुत्र देकर धन ले आओ। इस प्रकार पतिकी स्वी-कृति लेकर दत्ता वहाँ जा पहुँची, जहा घोषणा सुनाई जा रही थी। वह इन घोषणा करने वालोंसे कहने लगी—मै अपना एक पुत्र आप लोगोके लिए देनेको तैयार हूँ। जब घोषणा करने

वालोंने ब्राह्मणीकी यह बात सुनी तो वे बोले—अच्छी बात है लाओ पुत्र ?

दत्ताने इन घोषणा करने वाले नागरिकोको अपना सबसे छोटा पुत्र इन्द्रदत्त दे दिया और आप एक लाख दीनारें लेकर अपने घर आगई।

नागरिकोंने भी जब इन्द्रदत्तको स्वयं उसके माता-पिता द्वारा सौपते पाया तो उन्होंने भी इसे स्वीकार कर लिया और वे इसे लेकर राजाके निकट चल दिये। इस प्रकार इन्द्रदत्तके पिताने इसके गलेमे फासी लगा दी और माताने विष पिला दिया। इस तरह माता, पिता और नागरिक इस लडकेको लिए जा रहे थे। ऐसी स्थितिमें भी इन्द्रदत्त हँसता जा रहा था।

जब किसी एक पुरुषने इन्द्रदत्तको हंसते हुए देखा तो वह उससे पूछने लगा-पुत्र, तुम इस प्रकारसे हसते हुए क्यो जा रहे हो ? क्या तुम्हे पता नही है, आज नागरिक नगर-द्वारपर तुम्हे मारकर बलि देंगे ?

इन्द्रदत्त कहने लगा—तात, बालकको जब माँसे डर लगता है तो वह अपना डर मिटानेके लिए पिताके पास जाता है। और जब पितासे डर लगता है तो उसे दूर करनेके लिए वह माताके पास जाता है। तथा जब माता-पितासे उसे भयकी आशङ्का रहती है तो वह राजाके पास इस बुद्धिसे जाता है कि वह उसका भय दूर करेगा। और तात, जब माता, पिता तथा राजासे भी बालकको डर लगने लगता है तो वह समस्त पुरवासियोकी महत् शरणमे पहुँचता है। परन्तु जब माता-पिता बालकका गला दबा रहे हो और राजा तथा पुरवासी जनता ही उसके प्राण लेनेको तैयार हो रही हो, तब मुझ जैसे बालकको डरनेकी क्या जरूरत है ?

ज्यों ही इस व्यक्तिने बालकका यह मार्मिक उत्तर सुना, उसका हृदय भर आया। उसने राजाके पास जाकर इस बालककी यह मनोव्यथा सुनाई। राजाने इसे तत्काल छुडवा दिया। और उसी समय आकाशमे देवता दुन्दुभिया बजाने लगे।

इधर जब संतुष्ट हुए राजाने इन्दुदत्ताको उन्मुक्त कर दिया तो नगरका द्वार भी अपने आप तैयार होगया और उसके फिरसे गिरनेकी नौबत नही आई।"

जब सुयोधन राजाने यमपाशके मुँहसे यह कथानक सुना तो राजाको जरा आश्चर्य हुआ किन्तु वह चुप रहा।

चौथा दिन आया और यमपाश कोतवाल पुनः राज-सभामे प्रविष्ट हुआ। सुयोधनने ज्यो ही उसे अपने सामने उपस्थित पाया, वह कोतवालसे कहने लगा–यमपाश, क्या नगरमे इधर-उधर घूमते हुए आज भी वह दुराचारी चोर तुम्हारे हाथ लग सका है? यदि लगा हो तो शीघ्र ही मुझे बतलाओ?

यमपाश कहने लगा–राजन्, चोरका तो आज भी कही पता नही चला है। हा, मैंने घूमते हुए एक कथानक अवश्य सुना है। सो आप चाहें तो उसे सुन लीजिए। वह इस प्रकार है–

"जहाके सम्पूर्ण पानीमे विष मिला हुआ हो, दुष्टोके हाथ मृत्यु होती हो और राजा स्वच्छन्द प्रकृतिका हो, वहा सज्जन किस प्रकार रह सकते है?"

इतना कह कर यमपाश इस वक्तव्यसे सम्बन्धित कथा-नक सुनाने लगा। और बोला–राजन्, यह कथानक बडा ही सुन्दर है, समस्त प्राणियोंका उपकार करने वाला है, सम्पूर्ण ससारमे प्रसिद्ध है और विद्वानोंके कानोके लिए रसा-

यनके तुल्य है। यमपाश इतना कह कर ही रह गया और इस प्रकार चौथा दिन भी निकल गया।

पांचवा दिन आया और यमपाश फिर राजाकी सेवामे हाजिर हुआ। इस बार भी वह सभाके बीच एक कथानक सुनाने लगा। वह बोला "जो गगा समस्त देश देशान्तरमे प्रसिद्ध है और हम सब लोगोके मनको विस्मय जनक है, देखो तो वही गङ्गा प्राण-नाशक हो रही है?"

"जिससे बीज उत्पन्न होते हैं और वृक्ष सीचे जाते है, हमें उसके बीच ही मरना होगा? खेद, रक्षक ही भक्षक होगया है।" यमपाश इस वक्तव्यसे सम्बन्धित घटना इस प्रकार सुनाने लगा–

"पाटलिपुत्र (पटना) नगरमे एक वसुपाल नामका राजा रहता था। इसकी पत्नीका नाम वसुमती था। इसी वसुपाल राजाके दरबारमे एक कवि था। इस कविका नाम चित्रकवि था। चित्रकवि आशुकवि था। वह बातकी बातमे सुन्दर रचना तैयार करके रखदेता था। उसकी प्रतिभा भी बहुत ही विलक्षण थी।

एक दिनकी बात है। सभासद लोग इसकी रचनापर बड़े ही आश्चर्यान्वित हुए। उन लोगोने चित्रकविके साथ हंसी करनी चाही और ईर्ष्यावश उसे गङ्गामे फेक दिया। इस प्रकार ज्यो ही यह कवि वेगके साथ गङ्गाके प्रवाहमे बहता जा रहा था, सभ्योंने उससे एक सुभाषित सुनानेको कहा।

चित्रकविने जब सभ्योंकी यह बात सुनी तो उसने विद्वानोंके मनको मुग्ध करने वाला और शब्द तथा अर्थसे रमणीय निम्न आशयका सुभाषित सुनाया–

"जिसके द्वारा बीज उगते है और वृक्ष सीचे जाते है, मै उसीके बीच मरूगा। खेद, रक्षक ही भक्षक बन गया है।"

छठवां दिन आया तो यमपाश सुयोधनकी सेवामें उपस्थित हुआ। वह इस बार भी निम्न कथानक सुनाने लगा–

" जहां चपल चित्त वाले बन्दर बगीचेके रक्षक हों, मद्य पीने वाले ही मद्य-निषेधके प्रचारक हो और भेड़िये बकरियोकी रक्षा करने वाले हो, इस प्रकार एकसे एक अनर्थके साधन उपस्थित हों, और सभी अपना अपना प्रयोजन सिद्ध करनेमे लगे हो, वहा कार्य मूलसे ही नष्ट हुआ समझना चाहिए।

इस वक्तव्यकी घटना इस प्रकार है –

"पाटलिपुत्र (पटना) नगरमें एक सुभद्र नामका राजा रहता था। एक बार एक मनुष्यने कुतूहल वश इस राजासे पूछा–राजन् , आपको सब ही राजा आकर नमस्कार करते है और आप सब राजाओके रक्षक भी है। सो राजन्, आप यह बतलाइए कि दुनियामे बगीचोकी रक्षा करनेके लिए किसे नियुक्त करना चाहिए ? यदि बन्दर महाशय ही सदा उद्यानकी रक्षा करे, मद्यपायी ही मद्य-निषेधका प्रयत्न करे और भेडिया बकरियोके बचानेका प्रयत्न करे तो साराका सारा ससार ही विनष्ट हुआ समझ लेना चाहिए।"

सातवां दिन हुआ तो यमपाश पुन: राजाकी सेवामें हाजिर हुआ और राजासे बोला–

" जब बहूने अपनी सासकी साड़ी एरण्डके वृक्षपर रक्खी हुई देखी तो वह अपने पतिदेवसे कहने लगी–प्रियतम, लता तो जडसे ही नष्ट होगई है। अब तुम्हे जो रुचे सो करो।"

यमपाश इस वक्तव्यसे सम्बन्धित घटना सुनाने लगा–

"उत्स ऐसे सुन्दर उज्जयिनी नगरीमे एक शुद्धात्मा व्यापारी रहता था। इसका नाम यशोभद्र था और यह बहुत बडा धनी था।

एक बार अपनी मातासे आज्ञा लेकर जब वह उज्जयिनीसे व्यापारियोंके साथ विदेश जाने लगा तो उसने अपनी स्त्रियोंको भी साथमे ले लिया और ज्यों ही वह सन्ध्याके समय परदेशसे लौट कर आया, उसी एरण्ड वृक्षपर टगी हुई अपनी मांकी साड़ी दिखलाई दी। यह देखते ही क्रोधके कारण यशोभद्रकी आंखोमे खून उतर आया। उसने अपनी स्त्रियोसे कहा-तुम लोग, अभी यही ठहरो, मै जाकर देखता हूँ क्या मामला है?

ज्यो ही कोतवाल यमपाशने यह कथानक सुनाया, सुयोधन महाराजकी भ्रकुटियाँ तन गईं और उसे बहुत तेज गुस्सा आगया। वह कोतवालसे कहने लगा—अरे दुष्ट, तूने ये भद्दे भद्द किस्से सुनाकर छ दिन तो किसी तरह निकाल दिये। अब यह सांतवा दिन है। सो तू आज शीघ्र ही मेरे सामने चोरको उपस्थित कर। यदि तूने आज भी चोरको उपस्थित नही किया तो विश्वास रख, मै आज अवश्य ही तुझे प्राण दण्ड दूँगा।

सुयोधनकी राज-सभामे युवराज, मन्त्रीका पुत्र, और पुरोहितका पुत्र आदि सब ही लोग उपस्थित थे। इस लिए ज्योही यमपाशने राजाकी क्रोध पूर्ण आज्ञा सुनी, सहसा समस्त उपस्थित सभासदोके सामने उसने मणिमय खड़ाऊँ, अगूठी और यज्ञोपवीत लाकर रखदिया और कहने लगा—सभ्यों, जहां मन्त्री और पुरोहितको साझेदार बनाकर राजा ही चोर हो, वहाँ सब लोगोको वनके लिए ही प्रस्थान कर देना चाहिए। इस समय हम लोगोंका रक्षक ही भक्षक बन गया है।

ज्योंही सभ्योने यमपाशकी बात सुनी, उन्हे उसकी सत्यतापर विश्वास हो गया। सबको मालूम होगया कि सुयोधन राजा अन्यायी और मन्त्री तथा पुरोहित भी धूर्त

और अधर्मी है । यह जान कर समस्त सामन्तोने और युवराजने तुरन्त ही इन तीनोको पिटवा कर अपने देशसे निकलवा दिया । मन्त्रिपुत्र, सामन्त और यमपाशने युवराजकी भक्ति की और आदर किया और इस प्रकार वह चिरकाल तक अपने विस्तृत साम्राज्यका सचालन करने लगा ।

सुबुद्धि नामका मन्त्री राजा उदितोदयको यह कथानक सुना कर कहने लगा–राजन्, इसी प्रकार आपका भी कर्त्तव्य है कि आप आर्योचित मर्यादाका उल्लघन न करें और प्रमद वनमें स्त्रियोंके बीच न जावे ।

उदितोदयने सुबुद्धि मन्त्रीकी बातपर ध्यान दिया और उसके कहनेके अनुसार वह प्रमद वनमे जानेसे रुक गया । परन्तु मन्त्रीसे कहने लगा–मन्त्रिन्, मै आपकी बात मान लेता हूँ और स्त्रियोके बीच नही जाता हूँ ; किन्तु अपने नगरमे जो कुछ मनोहर और नेत्रोको प्रिय लगने वाली सुन्दर छटा है, चलो चल कर उसीका निरीक्षण करें ।

राजाकी इच्छा देख कर मन्त्री भी नगरकी अनुपम शोभा देखनेके लिए राजाके साथ राज-भवनसे चल दिया और दोनो नगरमे घूमने लगे । ज्यो ही ये दोनो कुछ आगे बढे, इन्हे रूप्यखुरका लड़का स्वर्णखुर अपनी लीलासे धीरे-धीरे चलता हुआ आगे दिखलाई दिया । इस स्वर्णखुरको देखकर इन्हे बडा विस्मय हुआ । इस लिए ये दोनो भी मार्गके कौतुक पूर्ण दृश्योको देखते हुए स्वर्णखुरके पीछे-पीछे चलने लगे ।

चलते चलते इनलोगोने देखा कि स्वर्णखुर नामका चोर अर्हद्दास सेठके मकानके बाहरी कोटसे जाकर उसके अन्दरके एक सघन वृक्षपर चढ़ गया है । यह देख ये दोनो भी स्वर्णखुरके रास्तेसे ही चलकर शीघ्र ही उस वृक्षके नीचे चुप चाप खड़े हो गये ।

ठीक इसी समय आठ दिनके उपवासी प्रसन्न हृदय अर्हद्दास सेठ अपनी अतिशय रूपवती पत्नियोसे कहने लगे—देखो, आज इस कार्तिककी शुक्ल पूर्णिमाके दिन नगरकी सभी स्त्रियाँ तो नन्दन वनकी तरह सुन्दर प्रमद वनमे कौमुदी महोत्सव मनानेके लिए गयी हुई है, परन्तु हम लोगोने आठ दिन तक उपवास और धर्म-साधन करके जो पुण्य कमाया है उसके कारण हमारी इच्छा है कि हम सब सर्वोत्तम श्री सहस्रकूट जिन चैत्यालयकी बन्दना करनेके लिए चले।

ज्यों ही सेठकी पत्नियोने सेठ जीकी यह बात सुनी, उनके शरीरमे भक्तिसे रोमाञ्च हो आये और उनके मन आनन्दसे भर गये। वे सेठजीसे कहने लगी—प्राणनाथ, हमलोग जल्दी ही भवबाधासे विमुक्त जिन भगवानकी बन्दनाके लिए चलें, जिससे हम सबके समस्त पाप-पुञ्ज धुल जावे और हमारी आत्मा विशुद्ध हो जावे।

अर्हद्दास सेठने जब अपनी पत्नियोका भी यह आग्रह देखा तो उसके चित्तमे बड़ा ही संतोष हुआ। उसने अपनी आठों ही पत्नियोंको अपने साथ ले लिया और सबलोग सहस्रकूट चैत्यालयमे पहुचे और उन्होने ससारका उच्छेद करनेवाली जिनेन्द्र भगवान्‌की स्तुति की। फिर सबलोग एक स्थानपर बैठ गये। इतनेमें अर्हद्दास सेठने कुतूहल वश अपने सामने बैठी हुई पत्नियोसे पूछा—हमारे मनमे एक कुतूहल उत्पन्न हो रहा है, क्या आप लोग उसे शान्त कर सकेंगी? यदि हां तो आप लोग ठीक-ठीक बतलाइए कि आप लोगोका सम्यक्त्व किस-किस कारणसे दृढ़ हुआ है?

जब सेठकी पत्नियोने सेठजीकी यह बात सुनी तो वे कहने लगी—स्वामिन्, सबसे पहले आप ही बतलाइए कि आपको किस निमित्तसे सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई? इसके बाद

इसी परिपाटीसे हमलोग भी अपने अपने सम्यक्त्वकी प्राप्ति और उसकी दृढताका कारण बतलावेंगी।

ज्यो ही शुद्धात्मा अर्हद्दासने अपनी पत्नियोका यह सुन्दर और समुचित उत्तर सुना, वह मनमें बडा ही प्रसन्न हुआ और अपने सम्यक्त्वकी दृढताके कारणको सुनाने लगा। उसने कहा–प्रियतमाओ, आपलोग शुद्ध मनसे एक घडी भरके लिए अपने चित्तको सावधान करके मेरी बात सुने–

"इसी मथुरा नगरीमे उदितोदय नामका राजा रहता है। यह राजा बहुत ही बलवान् है। इसके मन्त्रीका नाम सुबुद्धि है। सुबुद्धि सचमुच बडा ही बुद्धिमान् है और उसे सब ही विद्वान् आदरकी दृष्टिसे देखते है।

इसी नगरीमे एक सुवर्णखुर नामका चोर रहता है, जिसे अनेक प्रकारकी विद्याएँ सिद्ध है और यह वृक्षपर चढ कर कौमुदी महोत्सवका दृश्य देखता है।

अर्हद्दास कहता गया–देखो, इस नामावलीको ध्यानमें रखना। मथुरा नामकी सुन्दर नगरी, राजगृह नामका सुन्दर नगर, हस्तिनागपुर, कौशाम्बी नगरी, बनारस नगरी, चम्पापुरी, समृद्ध उज्जयिनी नगरी और धन-धान्य तथा जलाशयोसे मण्डित सूर्यकौशाम्बी नगरी। इसके अतिरिक्त यह नामावली भी याद रखना। जिनदास सेठ, उसकी पत्नी जिनदत्ता, शरीरको सौम्यप्रभावाली सोमश्री, कमलोकी शोभा विजित करनेवाली पद्मश्री, प्रियभाषी तथा जनप्रिय सोमशर्मा, सूर्यके समान तेजस्विनी मित्रश्री, रूपवती खण्डश्री, सुन्दर आकारवाली विष्णुश्री, नागकुमारीके समान सुन्दर नागश्री, मनोहर पद्मलता सर्वोत्तम कनकलता, और विद्युल्लताके समान रमणीय विद्युल्लता।"

अर्हद्दासने इस सूत्रात्मक नामावलीको सुनाया और इसके

पश्चात् वह अपनी पत्नियोंसे अपने सम्यक्त्वकी दृढताके कारण भूत शूलीके द्वारा मारे जानेवालेके आख्यानको इस प्रकार सुनाने लगा—

"इसी नगरीमे प्रमोदवाहन नामका राजा रहता था। प्रमोदवाहनकी पत्नीका नाम यशोमती था। इन दोनोके एक उदितोदय नामका पुत्र हुआ। उदितोदयमे अनेक गुणसमूह एकत्रित होगये थें और वह बड़ा ही बलवान् है। इसकी पत्नीका नाम महोदया है, जिसका शरीर रूप-राशिसे खूब ही निखर रहा है।

इस राजाके मन्त्रीका नाम सुबुद्धि है और इसकी पत्नी-का नाम प्रभा। प्रभा बहुत ही कान्तिमती है। इन दोनोके एक सुबुद्धि नामका पुत्र हुआ जो ज्ञान और विज्ञानमे खूब ही बढ़ा-चढ़ा है।

सुवर्ण राशिसे समृद्ध इसी नगरीमे एक रूप्यखुर नाम-का चोर रहता था, जिसकी पत्नीका नाम रूप्यखुरा था। इन दोनोके एक सुवर्णखुर नामका पुत्र हुआ, जो बड़ा ही तेजस्वी है। सुवर्णखुरको अनेक विद्याएँ तथा अञ्जन सिद्ध है और वह इनके कारण चोरीसे अपनी जीविका निर्वाह किया करता है।

इसी नगरमे एक जिनदत्त नामका सेठ रहता था, जो बड़ा ही धनी था। इसकी पत्नीका नाम जिनदत्ता था। जिनदत्ता सदा ही जिनभक्तिमे तत्पर रहा करती थी। इन दोनों गुणज्ञ दम्पतिके एक अर्हद्दास नाम का पुत्र हुआ, जो मै हूँ और जिसकी आप सब आठ स्त्रिया है।"

अर्हद्दास जैसे जैसे इस कथानकको सुना रहा था वैसे-वैसे वृक्षपर चढ़े हुए सुवर्णखुरके मनमे तथा वृक्षके नीचे

खडे हुए राजा और मन्त्रीके मनमें बडा ही विस्मय बढ रहा था और ये सब मन ही मन बड़े ही आनन्दित हो रहे थे।

इसके बाद अर्हद्दास कहने लगा—"वह रूप्यखुर नामका चोर नगरमें चोरी करके अपनी जीविका चलाता था, जुआ खेलता था और अपने दोनो नेत्रोमे अजन आँज कर राजाकी भोजन शालामें जाता तथा राजाके साथ प्रतिदिन भोजन किया करता था। इसका परिणाम यह हुआ कि राजा दिन प्रतिदिन दुर्बल होता गया और उसके शरीरमे केवल हड्डी और चर्म ही शेष रह गया।

जब मन्त्रियोने राजाको दिन प्रतिदिन अधिकाधिक रूपसे दुर्बल होते हुए पाया तो उन्हे पता चला कि अवश्य ही कोई मायावी राजाके साथ भोजन करता है और यह जान कर वे उस धूर्तको खोज निकालनेका प्रयत्न करने लगे।

जब राजाके भोजनका समय हुआ तो राजाकी भोजन-शालाम बडी ही सावधानीके साथ अकौवाके फूल फैला दिये गये, घड़ोमे बिषैला धुवा करवा दिया गया और कुछ पुरुषों-को हाथमे तलवार देकर इधर-उधर खड़ा कर दिया गया।

ज्यो ही राजा भोजन करने बैठा, रूप्यखुर चोरने भोजन-शालामे प्रवेश किया और ज्यो ही वह राजाके साथ भोजन करनेके लिए जल्दी-जल्दी जाने लगा, अकौवाके फूल चरर-मरर हुए और उससे पता चल गया कि चोर आगया है। एक आदमीने उसी समय तुरन्त ही विषैले धुवाँसे भरे हुए घड़ोके मुह उघडवा दिये और इससे भोजनागारमें सर्वत्र धुवा भर गया। यह धुवाँ रूप्यखुरकी आँखोमे लगा और इससे उसे बडी व्यथा होने लगी। तुरन्त ही उसकी आँखोसे आँसुओकी झडी लग गई और उसकी आखोमे अजा हुआ कज्जल निकल गया। ज्यो ही काजल आँखोसे हटा रूप्यखुर सबके सामने प्रकट

होगया। और राजाके द्वारा नियुक्त पुरुषोके द्वारा वह पकड़ लिया गया।

इन रक्षा-पुरुषोंने रूप्यखुरको खूब कसकर बाँध लिया। वे इसे राजाके आज्ञानुसार नगरसे बाहर ले गये और वहाँ ले जाकर इसे शूलीपर चढा दिया। राजाने समस्त दिशाओंमे आयुधधारी कुछ पुरुषोको छिपा दिया और उन्हे आज्ञा दी कि जो कोई व्यक्ति रूप्यखुरसे बात करे तुम लोग उसे तुरन्त ही पकड लेना। हम उसकी समस्त धन-सम्पत्ति लुटवा लेगे और उसे कठोर दण्ड देगे।

प्रभात कालके समय जब रूप्यखुर शूलीपर चढा हुआ था और उसे जोरकी प्यास सता रही थी, सेठ जिनदत्त जिनेन्द्र भगवान् तथा मुनियोकी भक्ति पूर्वक बन्दना करके और धर्म-श्रवण करके बड़ी ही प्रसन्नताके साथ अपने घरकी ओर लौट रहे थे कि इतनेमें व्याकुल हृदय रूप्यखुरने इन्हे देखा और देखते ही कहने लगा—"सेठ जी, आप सच्चे श्रावक है, समस्त प्राणियोंपर दयाशील है और आपकी कीर्ति समस्त भुवन तथा दिगन्तरालमे व्याप्त हो रही है। इस समय मेरा मन प्याससे एकदम छटपटा रहा है। यदि आप मुझे पानी पिला दें तो बड़ी कृपा होगी। मै अब मरा ही जारहा हूँ।" जिनदत्तने रूप्यखुरकी यह बात सुनी और इसे शूलीपर चढा देखा और देखा कि रूप्यखुरके प्राण कण्ठगत हो चुके है तो वह कहने लगा—"भद्र, मैंने बारह बर्षकी सेवा करके तो एक समस्त मनोरथोको पूर्ण करनेवाला मन्त्र प्राप्त कर पाया है। यदि पानी लेने जाता हूँ तो यह मन्त्र भूला जाता हूँ। इसलिए हे वत्स, एक काम करो। जब तक मै पानी लेकर आऊ तुम ससारका नाश करनेवाले इस महामन्त्रको कण्ठस्थ रखना।"

रूप्यखुर बोला—"अच्छी बात है सेठ जी, आप इस मनोरथ-

को पूर्ण करनेवाले मन्त्रको मुझे दे दीजिए और आप जल ले आइए। मै इसे बराबर पवित्र भावोके साथ कण्ठस्थ रक्खूँगा।"

इसके पश्चात् जिनदत्तने रूप्यखुरको पञ्चनमस्कार मन्त्र दिया और उसने मस्तकपर अञ्जलि रखकर भक्ति भावके साथ उसे ग्रहण कर लिया। और वह उस मन्त्रका भक्ति पूर्वक ध्यान करता हुआ ही मर गया तथा मरकर सौधर्म स्वर्गमे जाकर देव हो गया।

इधर जिनदत्त सेठ ज्यो ही घरसे पानी लेकर वापिस लौटा और उसने देखा कि चोर मस्तकसे हाथ जोडे हुए पञ्च-नमस्कार मन्त्रको जपते-जपते ही मर गया है तो उसने जान लिया कि वह स्वर्ग ही गया है। सेठ अपने घर चला आया और इसके बाद क्षान्ति गुहामे ठहरे हुए समाधिगुप्त नामके विद्वान् आचार्यके पास चला गया।

इस बीच ही राजाके द्वारा नियुक्त पुरुषोने जिनदत्तको चोरके साथ बातचीत करते हुए देख लिया था, सो उन्होंने जाकर यह समाचार राजाको सुना दिया।

ज्योही राजाने इन लोगोके मुहसे यह समाचार सुना, उसे बहुत ही क्रोध आया। उसने अपने रक्षा पुरुषोको आज्ञा दी कि जाकर धनदत्तको बाधलाओ और उसका सम्पर्ण धन लूट लो।

ज्योही राजाके इन भयकर सुभटोने राजाका यह आदेश सुना उन्हें बहुत ही सन्तोष हुआ और उन्होने इस राजाज्ञाको ऐसा ही समझा जैसे वह किसी देवताकी आज्ञा हो। वे लोग राजाकी उक्त आज्ञा पाकर वहाँसे चल पडे। पीछेसे राजा भी साथ हो लिया।

इधर पूर्वभवके रूप्यखुर चोरको अवधि ज्ञानके द्वारा जिन-दत्तके ऊपर आये हुए महान् उपसर्गका पता चला और उसने निश्चय किया कि मेरे कारण ही जिनदत्तके ऊपर उपसर्ग आया है । सो वह देव तत्काल ही समस्त प्राणियोको डरा देने वाले बेतालका भयकर रूप बना जिनदत्तके मकानके दरवाजे-पर आ खड़ा हुआ ।

ज्योही देवने देखा कि राजा बडे भारी सुभटोको साथमे लेकर जिनदत्तके मकानकी ओर बढ़ा आ रहा है तो वह सामने जा उपस्थित हुआ ।

जब राजाने हाथमे लकड़ी लिए इस भयकर वेषधारी देवको देखा तो उसके मनमें आया कि अब मरनेमे कोई कसर नही रही। इतनेमे ही इस भयकर देवने जोरसे गर्जना की और वह हाथमे दण्डा लिए हुए रोषके साथ राजाकी ओर झपटा और उससे कहने लगा–अरे दुराचारी, घोर पापी और मूर्ख राजन् ! तुम जीतेजी यहाँसे नही भाग सकते । मै अभी तुम्हे इस दण्डेसे सजा देता हूँ ।

इस देवसे राजाको इतना डर लगा कि उसे अपने वस्त्र और बालोकी भी सुधि न रही और भागकर वह उस क्षान्ति गुहामे पहुँचा, जहाँ आचार्य सघ और सेठ जिनदत्त विराजमान थे। उसने सेठसे कहा–सेठजी ! सेठजी ! मुझे बचाइए। और इतना कह कर वह सेठजीके पास जा बैठा ।

इतनेमें ही अत्यन्त तेजोमूर्ति देवभी वहाँ जा पहुँचा और क्रोधसे आँखोको लाल-लाल करके वह जिनदत्तसे कहने लगा–सेठ जी, आप इस दुष्ट, दुराचारी राजाकी क्यो रक्षा करते है ? आप इसे छोड दीजिये मै इसे अभी इसकी करनीकी सजा देता हूँ ।

देवताकी बात सुन कर जिनदत्त कहने लगा–देव, आप अब इन्हे क्षमा कर दीजिए ।

जब इस पूर्वभवके चोर देवने जिनदत्तकी यह बात सुनी तो उसने जिनदत्तकी तीन प्रदक्षिणा दी और उसे भक्ति पूर्वक प्रणाम किया। तदनन्तर वह उनसे कहने लगा—सेठ जी, आप ही हमारे परम गुरु हो। यह कह उसने आचार्यको तथा साधुओके सघको भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और वह बडी ही विनयके साथ सेठजीके पास बैठ गया।

जब राजाने मुनि-परिषदमे बैठे हुए और कान्तिसे चमकते हुए शरीर धारी देवको देखा तो उसका मन बहुत ही आश्चर्यान्वित हुआ और वह इस देवसे कहने लगा—क्यो देव, क्या आपके स्वर्गलोकमे ऐसा ही विनय-क्रम है जो आप पहले साधु सघको नमस्कार न करके श्रावकको नमस्कार करते हो ?

गुरु भक्ति-परायण देवने जब राजाकी यह बात सुनी और उसके मनको कौतुकसे पूर्ण पाया तो वह राजासे कहने लगा—"राजेन्द्र, विद्वत्सम्मत विनयका मुझे भी पता है। मुझे भी मालूम है कि पहले जिनेन्द्र भगवान् और साधुओको नमस्कार किया जाता है और तदनन्तर मूलगुण, अणुव्रत तथा शिक्षाव्रतका पालन करने वाले श्रावकोको इच्छाकार किया जाता है। किन्तु जिनदत्त सेठ हमारे गुरु है और महान् मित्र है। इसी लिए मैने सबसे पहले इन्हे नमस्कार किया है।"

यह सुनकर राजा बोला—देव, आप मुझे यह बतलाइए कि यह सेठ किस प्रकारसे आपके गुरु है ? इतना कहकर राजाका मन इस रहस्यको जाननेके लिए उत्सुक हो उठा। यह देखकर वह देव बडी ही प्रसन्नताके साथ इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाने लगा—

"राजन् ! मै रूप्यखुर नामका चोर हूँ और यह जिनदत्त नामके सेठ है। मै चोरी करता हुआ पकडा गया और आपने मुझे शूलीपर चढ़वा दिया। सेठने मुझे पञ्च नमस्कार

मन्त्र दिया और इसके पुण्य प्रभावसे मैं स्वर्गमें देव हुआ। राजन्, यही कारण है जो जिनदत्तको मैंने अपना गुरु बतलाया है और इसी कारणसे मैंने मुनि-सघको छोड़कर पहले जिनदत्तको नमन किया है।"

देवताकी बात सुनकर राजाको बड़ा ही कुतुहल हुआ। देवके सातिशय रूपने राजाके नेत्रोको आकर्षित करलिया और उसका मन बहुत ही पुलकित हो उठा।

राजा, मन्त्री और पुरोहितने जब इस आश्चर्यको देखा तो उन्होने अपने अपने पुत्रोको राज्यश्री आदि वैभव सौंप कर दिगम्बर दीक्षा ले ली। किन्ही पुरुषोंने सम्यक्त्वका लाभ लिया और किन्हीने श्रावकके व्रतोको धारण किया। कोई मध्यस्थ रहे और कोई जिनधर्मकी प्रशसा मात्र करके ही रहगये।

इस समय देवने भी सम्यक्त्वका लाभ लिया और पुन प्रणाम किया और हाथ जोडकर इस प्रकार कहने लगा--

श्रेष्ठिन्, आपके चरण-कमलकी कृपासे ही मैंने इस जैन-धर्मका लाभ लिया है। मै अब कृतकृत्य हूँ और अपनेको बड़ा ही पुण्यात्मा समझता हूँ। यह कहकर उसने जिनदत्त सेठको भक्ति-पूर्वक बार-बार नमस्कार किया और वह सेठके गुणोंका स्मरण करता हुआ सौधर्म स्वर्गको चला गया।"

जिनदत्तके सुपुत्र अर्हद्दास सामने बैठी हुई अपनी पत्नियोंसे कहने लगे कि मै इस आश्चर्य पूर्ण घटनाको सुनकर ही दृढ़ श्रद्धानी बना।

सेठकी बात सुनकर इसकी समस्त पत्नियां कहने लगी—प्राणनाथ, आपका कहना बिल्कुल यथार्थ है और आपके इस रोचक कथनको हम लोगोंने बड़े ही आदरके साथ सुना है। हम सब आपके इस कथनका अहर्निश श्रद्धान करेगी, उसमे रुचि रक्खेगीं और उसपर सदैव प्रत्यय रक्खेंगी।

परन्तु इन स्त्रियोंमेंसे कुन्दलता कहने लगी–श्रेष्ठिन् ! आपने जो कथानक सुनाया है, उसे न तो आपने ही ठीकतौरसे कहा है और न मैंने ही उसे रुचिसे सुना है। न आपने उस कथानकको अच्छी तरह बतलाया है और न अच्छी तरह उसे देखा ही है। मुझे आपके इस कथनपर न श्रद्धा है न थोडा भी प्रत्यय ही है। आपका यह कथानक न किसीको रुचिकर हो सकता है और न म किसीसे इस कथनकी चर्चा ही करूँगी। इसके सिवाय मै अपने मन, वचन और कायसे इस कथानकका स्पर्श तक नही करूँगी।"

वृक्षके नीचे बैठा हुआ राजा, कुन्दलताकी इस बातको सुन रहा था। सो इस बातको सुन कर उसके मनमे बडा ही विस्मय हुआ और कुन्दलताके प्रति रोष भी। वह सोचने लगा–इतना अतिशय तो मैंने भी देखा है कि मेरे पिता प्रमोद वाहन मुझे राज्य देकर महान् निर्ग्रन्थ श्रमण हो गये। यह कुन्दलता देवी अत्यन्त दुष्ट है और मदसे विह्वल है। यही कारण है जो यह कह रही है कि मै मन, वचन और कायसे भी सेठके कथनका प्रत्यय नही करती। राजा सोचता गया–मैंने इस प्रकारका आश्चर्य सुना है, देखा है और अनुभव किया है। फिर भी यह कुन्दलता कितनी मूर्ख है जो सेठके कथनपर जरा भी विश्वास नही कर रही है। मै सेठकी इस नितान्त दुष्ट पत्नीको कल अवश्य ही इस धृष्टताकी सजा दूगा।

वृक्षपर चढा हुआ सुवर्णखुर चोर और वृक्षके नीचे बैठा हुआ सुबुद्धि मन्त्री भी अपने मनमे विचारने लगे–देखो तो यह सेठकी पत्नी कितनी धृष्ट है ? पता नही, यह सेठकी बातपर क्यो प्रत्यय नही कर रही है ?

इस प्रकार शूलीपर चढाये गये रूप्यखुर चोरकी मृत्यु-
के दृष्टान्तसे सम्बद्ध अर्हद्दासका
यह कथानक समाप्त हुआ।

---

६४. जिनदत्ता और मित्रश्रीकी कथा

अर्हद्दास सेठने अपनी पहली पत्नी मित्रश्रीसे पूछा–प्रिये, अब तुम बतलाओ कि तुम्हारा सम्यक्त्व किस कारणसे स्थिर हुआ ? अर्हद्दास इतना कह कर रह गये और उनका मन मित्रश्रीकी बात सुननेको उत्सुक हो उठा।

अर्हद्दासके मनको प्रिय लगनेवाली मित्रश्री सेठानीने ज्यों ही सेठकी यह बात सुनी, वह बोली–

श्रेष्ठिन्, मगध नामके महान् देशमें राजगृह नामका एक समृद्ध नगर है। उसमे नरशूर नामका राजा रहता था और इसकी पत्नीका नाम स्वर्णलेखा था। इसी नगरमें एक ऋषभदास नामका सेठ रहता था, जो बहुत ही धनी था। इसकी पत्नीका नाम जिनदत्ता था। जिनदत्ता सौन्दर्यमे समस्त स्त्रियोंमे सर्वोत्तम थी। इन दोनों दम्पतियोमे बडा ही स्नेह था और दोनों ही सुख-सागरके मध्यमे गोते लगाते हुए आनन्दसे जीवन बिता रहे थे।

एक दिनकी बात है। सती जिनदत्ताने जब देखा कि उसके कोई सन्तान नही है तो वह अपने पतिदेवसे कहने लगी–प्राणनाथ, आप सन्तानके निमित्त किसी अन्य कन्या के साथ विवाह कर लीजिए, क्योंकि पुत्रके बिना धर्म नष्ट हो जाता है और धर्मके नष्ट हो जानेपर सब कुछ नष्ट हो जाता है।

इसी नगरमे एक जिनदास नामका सेठ रहता था, जो बड़ा ही जनप्रिय था। जिनदासकी पत्नीका नाम जिनदासी था और इन दोनोंके एक पुत्री थी, जिसका नाम जिनदत्ता था।

जिनदासकी एक अन्य पत्नी थी, जिसका नाम बन्धुमती था और जो नितान्त मिथ्यादृष्टी थी। इसके एक कनकश्री

नामकी कन्या थी, जिसका शरीर सोनेके समान सुन्दर था।

इधर जब ऋषभदासकी छोटी पत्नीकी मृत्यु हो गई तो जिनदत्ताने बडे ही प्रयत्नसे कनकश्रीका विवाह ऋषभदासके साथ कर दिया। ऋषभदासने भी कनकश्रीके साथ विधिवत् विवाह कर लिया और उसको सहर्ष सम्पूर्ण सम्पन्न घर सौप दिया। और स्वयं जिनदत्ताके साथ सदैव धर्म चर्चा करता हुआ अपना अधिकाश समय जिन मन्दिरमे व्यतीत करने लगा। मध्याह्नके समय दोनो घर आकर उत्तम भोजन करते और फिर जिनालयमें पहुँचकर धर्मचर्चा करनेमे व्यस्त हो जाते।

एक दिनकी बात है। बन्धुश्री अपनी पुत्रीके स्नेहके कारण कनकश्रीके घर आई और उससे पूछने लगी—पुत्रि, तुम्हारा पति तुम्हारे साथ स्नेह पूर्वक रहता है या नही ?

अपनी माताके मुखसे यह बात सुनकर कनकश्री बहुत ही क्रुद्ध हुई। उसकी आँखोसे आँसू ढुलक पडे और वह मातासे कहने लगी—माता, जब तुम मूर्ख, दुष्ट, वृद्ध और सौतवाले आदमीको मुझे सौप चुकी फिर भी मुझसे पति-स्नेहकी बात पूछ रही हो ? माता, तुम विश्वास रक्खो मै विवाहके दिन ही पतिदेवके साथ सोयी थी और इसके पश्चात् मै स्वप्नमे भी नही जान पायी कि पतिदेव क्या वस्तु है। मै दिन भर अधीन और क्रीत दासीकी तरह गृह-कार्य-मे जुती रहती हूँ और फिर रातमे टूटी खटियापर अकेली ही चुपचाप पडी रहती हूँ। परन्तु वे दोनो ही दम्पति प्रसन्नता-के साथ जिन मन्दिर जाते है और मध्याह्नके समय घर आकर भोजन करते है। और इसके पश्चात् वे दोनों अपने इसी भवनमें मनमे काम-विलासको लिये हुए और अनेक प्रकार-की क्रीडा-गोष्ठी करते हुए अपना जीवन-यापन करते है।

मेरा यह हाल है कि मैं दिन भर गृहस्थीकी सभी क्रियाओं-मे व्यस्त रहती हूँ और रातके समय अकेली पडी पडी अपने जीवनकी निन्दा करती हुई जिन्दगी बिताती रहती हूँ। हे माता, तुम मनस्विनी हो, अत मेरी बातपर विश्वास करो कि मैंने महीनेमे, पक्षमे, दिनमे और रातमे कभी भी पतिदेवके समागम सुखका अनुभव नही किया है। यह सब तुम्हारा ही प्रसाद है।

अपनी पुत्रीकी यह दुःख भरी कहानी सुनकर बन्धुमती बोली—पुत्री! वस्तुत दुष्ट जिनदत्ताने ही हमे ठग लिया है। उसने मुझसे यह प्रतिज्ञा की थी कि मै निश्चयसे तुम्हारी पुत्रीको अपने पतिकी प्रेम-पात्र बना दूंगी। इसके सिवाय उसने यह भी कहा था कि मै ब्रह्मचर्य व्रत ले लूंगी और जरा भी पति के सुखका अनुभव नही करूगी तथा राग रहित होकर जिन-मन्दिरमे ही पतिके साथ रहा करूँगी। हे पुत्री! जब जिनदत्ताने मुझे इस प्रकारका वचन दिया और उसका पति भी तुम्हारे आदेशके पालन करनेके लिये तैयार हो गया तो ही मैंने तुम्हें देना स्वीकार किया था। अब जब तक जिनदत्ता मरती नही है, तब तक तुम कुछ दिन और बिताओ। बन्धुश्रीको अपनी पुत्रीकी इस शोचनीय अवस्थापर बड़ा क्रोध आया और उसका चित्त क्रूर हो उठा। वह अपनी पुत्री-को आश्वासन देकर अपने घर लौट गई। घर पहुँचते ही वह जिनदत्ताके वधका विचार करती हुई समय बिताने लगी।

एक दिनकी बात है। एक चण्डमारि नामका कापालिक जो यमदूत जैसा मालूम देता था, घूमता-घामता हुआ बन्धश्री-के घर भिक्षा लेने आया। बन्धुश्रीने जिनदत्ताके अपकारकी भावनासे उसे खूब ही घीकी पूडिया तथा मीठा आहार कराया।

जब बन्धुश्रीने चण्डमारिका इस प्रकार अतिशय आदर सत्कार किया तो उससे बन्धुश्रीका अभिप्राय छिपा नही रह

सका और वह धूर्त बडे ही मीठे शब्दोमें उससे कहने लगा—"हे भद्रे ! विद्या, मन्त्र, योग्य औषधि, उत्तम वशीकरण, उच्चाटन, मारण, स्तम्भन, मोहन, अञ्जन आदि जो भी ससारमे प्रसिद्ध वस्तुएँ है, मै उन सबको जानता हूँ तथा ससारमे अन्य कोई व्यक्ति इस प्रकारका नही है जो इनका जानकार हो। सो यदि तुम्हारा कोई रहस्यपूर्ण गुप्त कार्य हो तो मुझे बतलाओ। मै उसे बहुत ही शीघ्र कर सकता हूँ।

कापालिकका यह कथन सुनकर बन्धुश्रीका मुख-मण्डल प्रसन्न हो उठा। वह उससे बोली—"हे पुत्र, तुम्हारे होते हुए मुझे ससारमें कुछ भी दुर्लभ नही है। फिर भी एक बात अवश्य है। मैने 'जिनदत्ताका अत्यन्त आग्रह देखकर तुम्हारी बहिन कनकश्रीका विवाह ऋषभदास सेठके साथ कर दिया था, परन्तु खेद है कि जिनदत्ताने धोखा दिया और आजकल वह बडे ही कष्टसे अपने दिन काट रही है। अब तुमसे मेरा यही निवेदन है कि तुम मेरी बात मान कर जिनदत्ताको मार डालो जिससे तुम्हारी बहिन कनकश्री प्रसन्न मनके साथ जीवन यापन करने लगे।

बन्धुश्रीकी यह बात सुनकर कापालिक बोला—अच्छी बात है माता ! मारना तो हमारे कुलका भूषण है। मै कृष्ण चतुर्दशीकी रातमे अवश्य ही वेताल विद्याको सिद्ध करने जाऊँगा, सो तुम मुझे पुष्प और धूप आदि लाकर दे देना।

बन्धुश्रीने भी कृष्ण चतुर्दशीके दिन कापालिकके लिये पुष्प, दीप और धूप आदि ले जाकर शीघ्र ही उसके सामने रख दिए। कापालिकने उस दिन उपवास किया और वह इस सब पुष्प आदि सागग्रीको लेकर रातमे भयकर स्मशान भूमिमें जा पहुँचा।

उसने मनुष्यका शव लिया और उसे अपने सामने रख कर वह वेताल-विद्या सिद्ध करनेमें लग गया। कुछ समयकी

साधनाके पश्चात् वेताल विद्या सिद्ध हो गई और वह हाथ-मे भयकर तलवार लेकर कापालिकके सामने आई और उससे कहने लगी—बोलो कापालिक, मेरे लिये क्या आदेश है ?

ज्यो ही स्मशानभूमिमें बैठे हुए चण्डमारि कापालिकने वेताल विद्याकी बात सुनी और उसे अपने सामने उपस्थित पाया तो वह वेताल विद्यासे कहने लगा—हे वेताल महाविद्ये ! मैं तुम्हे आदेश देता हूँ कि तुम शीघ्र जिन चैत्यालयमे जाओ और वहाँ जाकर पापिनी जिनदत्ताको मार आओ।

भयकर वेताल विद्याने कापालिककी आज्ञा पाकर हाथमे खड्ग लिया और शब्द करती हुई वह जिन चैत्यालय तक पहुँची। किन्तु बाहर ही ठहर कर रह गई। ऋषभदास और जिनदत्ता दोनोंने ही कृष्ण चतुर्दशीका उपवास किया था और इस समय दोनों ही मन्दिरमे धर्म-साधन कर रहे थे। सो ज्यो ही इन लोगोंने इस वेताल विद्याकी यह भयकर गर्जना सुनी, इनके चित्त भयभीत हो गये और दोनो ही भगवान्के निकट कायोत्सर्ग करने लगे।

वेताल विद्याने चैत्यालयके अन्दर जानेका बडा ही प्रयत्न किया, परन्तु वह चैत्यालयके भीतर न जा सकी और अकृतार्थ होकर कापालिकके पास लौट आई।

कापालिकने इस बार फिर वेताल विद्याको सिद्ध किया। और इसे हाथमे तलवार लिये हुए जिनदत्ताको मारने भेजा। परन्तु पहलेकी तरह वेताल विद्या प्रयत्न करनेपर भी चैत्यालयके अन्दर न जा सकी और तुरन्त वापिस लौटकर कापालिकके पास आ गई।

तीसरी बार फिर कापालिकने इसे सिद्ध किया और इस बार फिर वह वेताल विद्या हाथमे तलवार लेकर उसके सामने आई। उसने पुन. इस बार भी वेताल विद्याको जिनदत्ताको मारने भेजा। वह जिन चैत्यालय तक पहुँची, परन्तु इस

बार भी चैत्यालयके अन्दर न जा सकी और शक्तिहीन होकर चण्डमारिके निकट वापिस चली आई।

चौथी बार फिर कापालिकने तलवारके साथ इसे सिद्ध किया। वह सिद्ध होकर इसके सामने उपस्थित हो गई। इस बार कापालिक वेताल विद्यासे कहने लगा—विद्ये, मैं आदेश करता हूँ कि जिनदत्ता और कनकश्रीमेंसे जो दुराचारणी हो उसे मार डालो और अपना काम सम्पूर्ण करके यहाँ आ जाओ।

इस बार ज्यो ही वेताल विद्याने कापालिकका यह आदेश सुना, वह तत्काल वहाँसे चल दी और सोती हुई कनकश्रीको मार कर तुरन्त ही चण्डमारिके पास आ पहुँची। जब कापालिकने वेताल विद्याके कृपाणको खूनसे लाल देखा वह तुरन्त अपने घर चल दिया। और अपनी सफलताका समाचार बन्धुश्रीके पास भिजवा दिया।

प्रभात काल हुआ। बन्धुश्रीको इस समाचारसे बहुत ही सतोष हुआ कि जिनदत्ताकी मृत्यु हो चुकी। वह तुरन्त ही अपने दामाद ऋषभदास सेठके यहाँ पहुँची। वहाँ पहुँच कर जब उसे पता चला कि उसकी पुत्री ही दिवगत हुई है तो वह फूट-फूट कर रोने लगी और कहने लगी—अरे लोगो, सुनो, जिनदत्ताने मेरी पुत्री कनकश्रीको मार डाला।

बन्धुश्रीने शीघ्र ही राजासे भी यह समाचार कहा। ज्यो ही राजाने यह वृत्तान्त सुना, उसने तुरन्त ही अपने रक्षा-पुरुषोको आज्ञा दी कि तुम लोग जाकर जिनदत्ताके पति ऋषभदासको बाध कर यहाँ ले आओ और उसकी समस्त धन-सम्पत्ति भी छीन लाओ।

रक्षा पुरुष राजाकी आज्ञा पाते ही वहाँसे चल दिये और ऋषभदास सेठके मकानपर जा पहुँचे। परन्तु ज्यो ही शासन

देवताको इस बातका पता चला, उसने तुरन्त ही इन लोगो-को कीलित कर दिया।

इधर जब जिनदत्ताके पति ऋषभदासको यह खबर लगी तो उसने इसे अपने ऊपर आया हुआ एक महान् उपसर्ग समझा और वह इसकी शान्तिके लिये चैत्यालयमे जाकर कायोत्सर्ग करने लगा।

तदनन्तर शासन देवता कापालिकके मठमे पहुची। उसने कापालिकका मद चूर किया और वहाँसे कापालिकको बाध कर उसने राजाके महलके दरवाजेपर लाकर डाल दिया। देवताके बन्धनसे चण्डमारि कापालिकको इतनी तीव्र वेदना हुई कि उसके कारण उसका मन एकदम व्याकुल होगया और वह नगरके मध्यमे पडा पडा बड़ी ही दीनता पूर्वक रोने-चिल्लाने लगा। वह कहने लगा—ओ महाजनो, मैं बिलकुल निर्दोष और निरपराधी हूँ आप लोग एकचित्त होकर मेरी बात सुन लीजिए।

"महाजनों, मैने बन्धुश्रीके कहनेसे ही जिनदत्ताको मारने-के लिए वेताल विद्या सिद्ध की थी। जब वह विद्या सिद्ध होकर मेरे सामने उपस्थित हुई तो मैने इसे तीन बार जिनदत्ताके वधके लिए भेजा, परन्तु जिनदत्ताके चैत्यालयमे रहनेके कारण वह उसका वध नही कर सकी और जब अकृतार्थ होकर मेरे पास वापिस आई तो मैने इसे आदेश दिया कि जिनदत्ता और कनकश्रीमें जो कोई दुराचारिणी हो तुम उसे ही मारकर मेरे पास आओ। इस प्रकार कहकर जब मैंने चौथी बार वेताल विद्याको अपने पाससे रवाना किया तो उसने जाकर कनकश्रीको मार डाला और इस तरह अपना काम करके वह मेरे पास आगई।"

शासन देवताने चंडमारि कापालिकके मुँहसे बार बार

इस घटनाको कहलवाया और कापालिक भी इस बृत्तान्तको बार बार सुनाता हुआ नगरमे चक्कर काटने लगा ।

इधर पापिनी बन्धुश्रीको भी भूत, यक्ष और पिशाचोने खूब ही पीटा और वह भी निम्न प्रकारसे कहती हुई नगर मे घूमने लगी । वह कहने लगी—"भो भो महाजनो, आप लोग मेरी स्पष्ट बातको सुन लीजिए । कनकश्रीकी जो यह मृत्यु हुई है, उसमे जिनदत्ताका जरा भी दोष नही है । इसमे मेरा ही दोष है । महाजनो ! मुझ अभागिनने ही कापालिकसे प्रबल प्रेरणा की थी कि तुम अपनी विद्याके बलसे जिनदत्ताको मार डालो । परन्तु दुर्भाग्य, कि कापालिकने तो इसे जिनदत्ताको मारनेकी गरजसे भेजा था और मारी गई हमारी मधुरभाषिणी कनकश्री पुत्री । जब सबेरे मै जिनदत्तके यहा पहुँची और मैने कनकश्रीको मरा हुआ पाया तो मैने यह समाचार गडा कि जिनदत्ताने कनकश्रीको मार डाला है । वस्तुतः जिनदत्ताने कनकश्रीको नही मारा है । वह वेताल विद्याके द्वारा ही दिवगत हुई है । जिनदत्ता पुण्यात्मा और निर्दोष थी सो चण्डमारिकी विद्या इसका कुछ भी बिगाड़ नही कर सकी ।"

इस प्रकार कापालिक तथा बन्धुश्रीकी बातसे राजाको और नगर निवासी जनताको यह अच्छी तरह मालम होगया कि जिनदत्ता बिलकुल निर्दोष और पवित्र है । तदनन्तर नगरकी देवियोने भी मिलकर इस शीलमूर्ति जिनदत्ताकी बड़े भारी वैभव और उत्सवके साथ पूजा की ।

मित्रश्री सेठ अर्हद्दाससे कहने लगी—श्रेष्ठिन्, इस आश्चर्य पूर्ण दृश्यको देखकर अनेक मनुष्योंने जैनधर्म स्वीकार कर लिया और अनेक मनुष्य उसके प्रगाढ भक्त बन गये । नरशूर राजा, मन्त्री और पुरोहित आदिक समाधिगुप्त मुनिराजके पास पहुँचे और उन्हें प्रणाम करके, उनके निकट उन्होने दैगम्बरी दीक्षा

लेली। नाथ, जिनदत्ताके इस अतिशयको देख कर ही मेरे सम्यक्त्वमें दृढता आई है।"

जब मित्रश्रीके इस सार पूर्ण कथनको सेठकी अन्य धर्मात्मा पत्नियोंने सुना तो वे कहने लगी-बहिन, तुमने बहुत ही अच्छी घटना देखी और सुनी। तुम्हारा कथन बिलकुल सच्चा है। हम लोग इस कथनका श्रद्धान करती हैं और प्रत्यय करती हैं। हम लोगोको यह कथन रुचिकर भी लगा और हृदयकी अनुभूतिने उसका स्पर्श भी किया। परन्तु सेठकी सबसे छोटी पत्नी कुन्दलता कहने लगी-मित्रश्री, तुमने इस घटनाको न तो ठीक तरहसे देखा है और न ठीक तरहसे तुमने उसे कहा है। मेरी तुम्हारे इस कथनपर न कुछ श्रद्धा है और न मैं इसपर प्रत्यय ही रखती हूँ। इसके सिवाय तुम्हारा कथानक न मेरे मनको रुचिकर हुआ है और न मेरे अनुभवमे यह उतरता है कि ससारमे इस प्रकारकी घटना भी घटित हो सकती है।

जब राजा उदितोदयने कुन्दलताकी यह बात सुनी तो उसकी आँखे क्रोधसे लाल होगई और वह कहने लगा-मैं कल अवश्य ही इस कुन्दलताको दण्ड दूंगा।

इस प्रकार वेताल विद्यासे निर्भय जिनदत्ता और मित्रश्रीके सम्यक्त्वकी दृढताको सूचित करने वाला यह द्वितीय कथानक समाप्त हुआ।

---

६५. खण्डश्रीकी कथा

अबकी बार अर्हद्दास सेठने अपनी पत्नी खण्डश्रीसे पूछा-प्रिये! बतलाओ तो तुम्हारा सम्यक्त्व किस प्रकारसे स्थिर हुआ?

खण्डश्री अपने सम्यक्त्वकी दृढताके कारणको इस प्रकार सुनाने लगी-

"कुरुजाङ्गल देशमे हस्तिनापुर नामका एक सुन्दर नगर है। इस नगरमे महीधर नामक राजा रहता था। इस राजाकी पत्नीका नाम महीधरी था।

इसी नगरमें एक सोमदत्त नामका ब्राह्मण रहता था, जिसकी पत्नीका नाम सोमिल्ला था। इन दोनोके एक कन्या थी, जिसका नाम सौम्या था और जो बहुत ही मधुरभाषिणी तथा सौम्य भावसे सम्पन्न थी।

एक समयकी बात है। सोमदत्तको महती दरिद्रताने घेर लिया, जिसके कारण उसे बडा ही वैराग्य हुआ। वह सुगुप्त आचार्य महाराजके पास पहुँचा और उसने सौम्या-के साथ पाच अणुव्रत ले लिये और श्रावक बन गया।

इसी नगरमे एक जिनदास नामका सेठ रहता था। जिनदास बहुत ही धनी था। इसके एक पत्नी थी, जिसका नाम ऋषभ दासी था। जिनदासने जब सोमदत्तकी भीषण दरिद्रता देखी तो वह धर्मवात्सल्यके कारण सोमदत्त तथा सौम्याको अपने घर ले आया।

एक दिनकी बात है। सोमदत्तको मालूम हुआ कि उसकी आयु वहुत ही थोडी रह गई है तो उसने अपनी कन्या सौम्या बुद्धिमान् जिनदासको सौंप दी। वह जिनदाससे कहने लगा—हे जनप्रिय जिनदास! मै आपको यह कन्या सौपे जा रहा हूँ। सो आप इसे किसी जिनेन्द्र भगवान्के चरण-कमलके भक्त सुपात्र श्रावकको दे देना। इतना कहकर सोमदत्तने शय्या पर लेटे हुए ही समस्त आरभ-परिग्रह छोड़ दिया और श्रमण होगया। उसने समाधि पूर्वक मृत्यु की और स्वर्गमें जाकर देव होगया।

इधर सौम्यमति सौम्या भी जिनदासके घर रहने लगी और जिनालयमे प्रतिदिन प्रसन्न मनसे पूजा करती हुई अपना समय बिताने लगी। सौम्याके सुन्दर रूप और शीलको जो भी ब्राह्मण

देखता वह अपने पुत्रके लिए जिनदाससे इस मनस्विनी कन्याकी याचना करने लग जाता। इस प्रकार बहुतसे ब्राह्मणोने इस सौम्या कन्याको मांगा, परन्तु जिनदासने उन्हे देना ठीक नही समझा और उसने समस्त ब्राह्मणोको केवल यही उत्तर दिया कि मै यह मनोहर कन्या उसी श्रावकको दूँगा, जो सुरूप होगा सुशील होगा और सुकुलीन होगा।

एक दिनकी बात है। सात व्यसनका सेवन करने वाला एक धूर्त कुछ जुवारियोंके साथ जुवा खेल रहा था। इसका नाम रुद्रदत्त था और जातिसे यह ब्राह्मण था। जुवा खेलते समय इसने सुन्दराङ्गी सौम्याको देखा और वह अपने साथी जुवारियोसे कहने लगा—"देखो मित्रो, यह कन्या कितनी रूपवती, युवती और शुद्ध हृदय वाली है। मै बहुत शीघ्र इसके साथ अपना विधिवत् विवाह करूँगा।"

जब अन्य जुवारियोंने रुद्रदत्तकी यह बात सुनी तो वे इससे कहने लगे—"मित्र! क्या तुम्हे मालूम नहीं है कि जिनदास सेठ यह कन्या किसी सुशील और कुलीन श्रावकको ही देना चाहते है? जो जनप्रिय जिनदास सज्जन ब्राह्मणोंके बार बार प्रार्थना करनेपर भी अपनी यह कन्या उन्हें नही दे रहा है, वह सात व्यसनका सेवन करने वाले, चोर, पापी और जुवारीको किस प्रकार दे देगा?"

रुद्रदत्तने जुवारियोंकी यह बात सुनकर प्रतिज्ञा की कि मै अपना विवाह इस सौम्या कन्याके साथ ही करके रहूँगा। यह कर उस धूर्त रुद्रदत्तने वह देश छोड दिया और वह इस कन्याकी प्राप्तिके प्रयत्नमे देशान्तरके लिए प्रस्थान कर गया। कुछ समय तक वह देश देशान्तरोमे घूमता रहा और फिर उसने क्षुल्लकका वेष बनाया और जिनदास सेठके चैत्यालयमे आ पहुँचा। जब जिनदासने इसे देखा तो उसने इससे इच्छाकार किया और बड़े ही संतोषके साथ उससे पूछा—

"हे धर्ममूर्ति क्षुल्लक महराज, आप किस स्थानसे पधार रहे है ?"

जिनदासकी बात सुनकर क्षुल्लक महाराज कहने लगे—"ओ महान् श्रावक, मै अभी पूर्वदेशसे विहार करता हुआ आ रहा हूँ। मैने समस्त सिद्ध क्षेत्रो और समस्त चैत्यालयो-की भाव पूर्वक बन्दना की है और इस समय हमारी आत्मा भक्तिसे गद्‌गद हो रही है। अब मै शान्ति, कुन्थु और अर नाथ तीर्थकरोकी जन्मभूमि तथा दीक्षा भूमिकी बन्दना करनेके लिए यहाँ आया हूँ। इसके सिवाय आपकी भक्ति देखनेकी भी बहुत दिनोसे मनमे लालसा थी।"

क्षुल्लक महाराजकी यह बात सुनकर सेठका मन क्षुल्लक महाराजके गुणोके प्रति आकर्षित हो उठा। वह सामने बैठे हुए रुद्रदत्तसे उसके पूर्व आश्रमको पूछने लगा।

सेठकी बात सुनकर रुद्रदत्त कहने लगा—"सेठ जी, इसी नगरमे एक सोमशर्मा नामका ब्राह्मण रहता था। उस सोम-गोत्रीय सोमशर्माकी सोमशर्मा नामकी एक ब्राह्मणी थी। मै इसी ब्राह्मणीका विनीतात्मा और विशुद्ध बुद्धिशाली रुद्रदत्त नामका पुत्र हूँ। सेठ जी, जब हमारे माता-पिताका स्वर्गवास होगया तो मै ससारके तीर्थक्षेत्रोकी बन्दनाके लिए निकल पड़ा और इस तीर्थाटनके समय मुझे समस्त प्राणियो-का बन्धु जैनधर्म हाथ लगा। जब मुझे जैनधर्मका लाभ होगया तो मैने सोचा कि अब मुझे धनसे, गोत्रसे, स्वजनो-से और माता-पितासे क्या प्रयोजन है ? और यह सोचकर मै ब्रह्मचारी होगया और व्रत तथा शीलोका पालन करने लगा। तबसे ही जिनेन्द भगवानकी पूजा-वन्दना करता हुआ अपना काल-यापन कर रहा हूँ।"

रुद्रदत्तकी यह बात सुनकर जिनदासके मनमे बहुत ही कौतुक हुआ और उसे रुद्रदत्त इस प्रकारका दिखलाई दिया

मानो वह मूर्तिमान् धर्म हो। वह रुद्रदत्तसे कहने लगा—"हे स्वामिन्! आपने जो यह ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया है सो वह सदाके लिए लिया है अथवा किसी निश्चित अवधि तकके लिए? आप यह बात मुझे निश्चय पूर्वक बतलाइए।"

जिनदासकी बात सुनकर क्षुल्लक महाराज कहने लगे—"श्रेष्ठिन्! हमने इस ब्रह्मचर्य व्रतको सदाके लिए नही लिया है। परन्तु जब मैंने परमोत्तम जैनधर्म अङ्गीकार कर लिया है तो अब मुझे संसार समुद्रमें डुबोने वाले मैथुनसे कोई मतलब नही रह गया है।"

क्षुल्लक वेषधारी रुद्रदत्तकी यह बात सुनकर जिनदासके मनमें अधिकाधिक कुतूहल बढने लगा। उसने फिर रुद्रदत्तसे पूछा—महाराज यदि आपने सदाके लिए ब्रह्मचर्य व्रत नहीं लिया है तो हमारे घरमें एक बहुत ही सुन्दर ब्राह्मण कन्या है और उसे हम किसी भी मिथ्यादृष्टी पात्रको नही देना चाहते है। हमारी इच्छा उसे किसी सम्यग्दृष्टी श्रावकको देनेकी है। सो यदि आपकी इच्छा विवाह करनेकी हो तो मैं इस कन्याका विवाह आपके साथ कर सकता हूँ।"

जिनदास सेठकी बात सुनकर रुद्रदत्त कहने लगा—"श्रेष्ठिन्, किसी बडे ही पुण्य योगसे तो मैंने यह जैनधर्म प्राप्त किया है। और इस समय सब प्रकारके गृह बन्धनसे निश्चिन्त होकर धर्म-साधन कर रहा हूँ। इस लिए अब तो चित्त नही चाहता कि फिरसे अपनेको ससारके जजालमे फंसाऊँ।"

यद्यपि रुद्रदत्तने इस प्रकार सेठसे अपने विवाह न करनेकी इच्छा प्रकट की, किन्तु वह इसपर अन्त तक स्थिर न रह सका और जिनदासने रुद्रदत्तके साथ सुन्दरी सौम्याका विधिवत् पाणिग्रहण सस्कार सम्पन्न कर दिया।

इस प्रकार जिस दिन रुद्रदत्तने सौम्याके साथ अपना

विवाह संस्कार निष्पन्न किया उसी दिन वह हाथमें नवीन कङ्कण बाधे हुए जुवारियोके निकट हसता हुआ पहुचा और उनसे बडे ही आनन्दके साथ कहने लगा—मित्रो, आप लोगोंके बीच उस दिन मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, सौम्याके साथ विधिपूर्वक विवाह कर लेनेसे आज भली भाति पूर्ण हो चुकी। इस प्रकार सौम्याके साथ विवाह करनेके पश्चात् रुद्रदत्त फिर जुवारियोके साथ दिन रात द्यूत क्रीडा करने लगा और इसी प्रकार धूर्तताके साथ सानन्द अपना जीवन विताने लगा।

परन्च, इसी नगरमे सुमित्रा नामकी एक वृद्धा वेश्या रहती थी। इसकी लडकीका नाम कामलता था। कामलता बहुत सुन्दर थी और उसके साथ रुद्रदत्तका पहलेसे ही प्रगाढ स्नेह-सम्बन्ध चला आ रहा था, सो वह उसके साथ भाति भातिके मनोरम भोगोका भोग करने लगा।

जब सौम्याको मालूम हुआ कि उसे एक बहुत ही धूर्त और मायावी रुद्रदत्तने विवाह लिया है तो वह अपने मकान-के अन्दर रहती हुई ही अपने व्रत और शीलकी रक्षा करने लगी। सौम्याके पिताने उसे बहुत सा धन दिया था, सो उसने एक उत्तुङ्ग सहस्रकूट जिन चैत्यालयका निर्माण करवाया और तत्पश्चात् उसने माङ्गलिक गाजे बाजेके साथ मन्दिरकी प्रतिष्ठा करवाई और इस महोत्सवमे सम्मिलित हुई समस्त जनताको एक प्रीतिभोज भी दिया। इस अवसरपर सौम्याने रुद्रदत्त, और कामलता आदि सबका स्नेहके साथ निमन्त्रण किया और उन्हे अपने घर भोजन कराया।

इस समय सुमित्राने एक बहुत ही भयकर षड्यन्त्र रचा। उसने एक घडेमे फूल-माला तथा भयकर और विषैला साप बन्द किया और उसपर एक स्वच्छ वस्त्र लपेटा तथा उसपर दही, दूब अक्षत डाले। घडेको इस प्रकार बाहरसे बहुत ही सुन्दर और माङ्गलिक बनाकर सुमित्राने इसे दुष्ट मनसे लाल कमलके समान सुन्दर कामलताके हाथमें दे दिया।

इधर जब रुद्रदत्त आदि सब लोग अच्छी तरह भोजन कर चुके और पान-सुपारी लेकर जिन मन्दिर चले गये तो जिनेन्द्र भगवानकी भक्त सौम्याने बड़े ही सरल भावसे उस घड़ेको कामलताके हाथसे ले लिया। उसने घड़ेको खोला और उसके अन्दरसे पुष्पमाला उठाई तथा गुमचीके समान लालनेत्र और चपल जिह्वा वाला काला साप भी उठाया। परन्तु सौम्याके हाथका स्पर्श होते ही वह भयकर साप तत्क्षण पुष्पमाला बन गया। सौम्या इस विशाल और सुगन्धित पुष्पमालाको लेकर जिन-मन्दिर पहुची और बडी ही भक्ति-के साथ उसने इस मालाके द्वारा भगवान्के चरण कमलकी अर्चना की। तदनन्तर उसने अपने घर आये हुए रुद्रदत्त आदि को खूब अच्छी तरहसे भोजन कराया और भोजनके अन्तमे उन्हे पान सुपारी दी। इसके साथ ही उसने कामलताके हाथ-पर उसकी मा द्वारा भेट की गई माला उपहार स्वरूप रख दी। ज्यों ही कामलताने अपने हाथमे उस मालाको लिया, वह कृष्ण सर्पके रूपमे बदल गई और उसने कामलताको डस लिया।

जब कामलताकी माता सुमित्राने देखा कि उसकी पुत्रीको सांपने डस लिया है तो उसने उस सांपको कामलताके हाथसे हटाकर एक घडेमे बन्द कर दिया। इधर कामलताका सम्पूर्ण शरीर विषसे व्याप्त हो गया और वह कुछ क्षणोंके बाद ही बड़े वेगसे पृथ्वीपर गिर गई।

जब कामलताकी माता सुमित्राने देखा कि उसकी पुत्रीका शरीर एकदम निश्चेष्ट हो गया है, तो उसकी आँखोसे आँसू टपकने लगे और वह जोर जोरसे चिल्लाने लगी—अरे लोगो, देखो, इस सौम्याने सौतिया डाहसे हमारी कामलताको अकारण ही साँपके द्वारा मरवा डाला है।

जब सौम्याने सुमित्राकी यह बात सुनी और कामलताको सापके द्वारा डसा हुआ देखा तो वह उस घड़ेको लेकर राजाके

पास जा पहुँची। ज्यों ही राजाको कामलताकी मृत्युका समाचार मिला, उसने सौम्यासे पूछा—सौम्या, बतलाओ तो यह कामलता किस प्रकारसे मर गई है? सौम्या बोली—'राजन्, कामलताकी मृत्यु किस प्रकार हुई, मुझे इसका कोई पता नही है। फिर भी राजन्, आप मेरी एक बात अवश्य ही सुन लीजिए। वह बात इस प्रकार है –

"सुमित्रा और कामलता दोनो ही एक घडेमें कुछ मालाएँ रखकर लायी थी। सो मैंने इन मालाओंके द्वारा बडी ही भक्तिके साथ जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा की और जब यह कामलता जिनमन्दिरसे लौटकर माताके साथ जाने लगी तो मैंने एक माला जो भगवान्‌की पूजासे बची थी, कामलताको भेंटमें दे दी। राजन्! इस कार मैंने तो अपनी पूजासे बची हुई मालाको ही कामलताके लिए उपहार स्वरूप दिया। परन्तु सुमित्रा कह रही है कि तुमने सापके द्वारा मेरी पुत्रीको मार डाला है। यदि यह मान लूँ कि कामलताको सापने डस लिया है तो राजन् इसके रहस्यको सुमित्रा ही जानती है। मुझे इस सम्बन्धकी कोई भी रहस्यपूर्ण बात मालूम नही है।"

सौम्या कहती गयी—"राजन! मै तो समस्त प्राणियोके परम हितकारी जैनधर्मको ही जानती हू और मुझ जैसी जिनश्रद्धानीसे यह दुष्कर्म होना कदापि सम्भव नही है।"

इसी बीच सुमित्रा भी उस भयकर सांपको घडेमें बन्द किये हुए राज सभामे आ पहुची और उसने राजाको उस घडेका साप दिखलाया और कहा—राजन्, हमारी पुत्री कामलता अपने पतिके लिए बहुत ही प्रिय थी और इस कारण सौम्या इससे ईर्ष्या रखती थी। सो इसने यह भयकर साप मगवाकर उसके द्वारा हमारी कामलताको डसवा दिया और इसे मार डाला।

सुमित्राने यह कहकर तत्काल ही घडेके सांपको राजाके सामने छुडवा दिया। साँपके छूटते ही सौम्याने उसे अपने कमलके समान कोमल हाथमे ले लिया। ज्यों ही सौम्याने इसे अपने हाथमे लिया वह तुरन्त पाँच वर्णके खिले सुन्दर फूलोकी मालाके रूपमे परिणत हो गया। परन्तु ज्यो ही सुमित्राने पुन इसे अपने हाथमे लिया, वह तत्क्षण समस्त प्राणियोंको डराने वाले विराट साँपके रूपमें परिणत हो गई।

इसके बाद सौम्याने निश्चेतन कामलताको अपने हाथसे स्पर्श किया तो तुरन्त ही उसके शरीरमे रमा हुआ विषका वेग शान्त हो गया और वह सभामे ही उठकर खडी हो गयी।

यह दृश्य देखकर राजाको बहुत ही आश्चर्य और कुतूहल हुआ। उसने सामने उपस्थित सुमित्रासे शपथ लिवाई और उससे सत्य सत्य बात सुनानेके लिए कहा।

राजाकी बात सुनकर सुमित्रा कहने लगी—"राजन् यदि आप सच्ची ही बात पूछते है तो वह यह है कि मै सौम्याको मारनेके लिए सापको घड़ेमे बन्द करके लायी थी। परन्तु आश्चर्य है कि इस सांपने सौम्याको नही डसा और धर्मने इसकी रक्षा कर ली, लेकिन इसके विपरीत मेरी पुत्री कामलताको इसने क्रोधमे आकर काट खाया।"

इस घटनाको देखकर नगरकी देविया कहने लगी—पवित्र हृदय सौम्याका शील धन्य है, सत्य धन्य है, धैर्य धन्य ह और इसकी जैन धर्मके प्रति जो परम भक्ति है, वह धन्य है। देवियोंने सौम्याके शील आदिकी इस प्रकार प्रशसा करके राजाकी सभामे ही सौम्याके मस्तकके ऊपर पुष्पोकी वर्षा की।

इस अतिशयको देखकर रुद्रदत, राजा और जिनदास आदि सबके सब दर्शक गण जैनधर्मके परम भक्त बनगये। इतना ही नही, इन्होने अपने जीवनको, धनको, यौवनको और सम्पत्तिको सबको ही चपल और अस्थिर समझ

कर समस्त आरभ परिग्रह छोड दिया तथा धर्मसेन आचार्यके निकट दिगम्बरी दीक्षा ले ली।

इसके सिवाय नागरिक जन और महिलाओने, जो इस घटनाके साक्षी थे, तथा सुमित्रा और कामलता आदिने भक्तिके साथ श्रावकके व्रत ले लिये।

अपने पतिदेवसे इस आश्चर्य गर्भित कथानकको सुनाते सुनाते ही खण्डश्रीका शरीर भक्तिसे रोमाञ्चित हो उठा और वह अत्यन्त आश्चर्यके भावमें कहने लगी—"प्राणनाथ, जब मैंने इस प्रकार सौम्याके शीलकी प्रशंसा सुनी, देवियोके द्वारा उसकी पूजा देखी, महान् भयकर साँपको पुष्पमालाके रूपमे परिणत होते हुए देखा और स्थिरचित्त सौम्याकी जिन-भक्ति देखी तो प्रियतम, यह देखकर ही मेरे सम्यक्त्वमें स्थि-रता आई।"

इस प्रकार सौम्या ब्राह्मणीको देखकर खण्डश्रीके दृढ सम्यक्त्वी होनेका कथानक समाप्त हुआ।

—o—

६६. विष्णुश्रीकी कथा

अब अर्हद्दास सेठने विष्णुश्रीसे पूछा—हे प्रिये, अब तुम अपने सम्यक्त्वकी स्थिरताका कारण बतलाओ? वह कहने लगी—

"श्रेष्ठिन्! वत्सकावती देशमें अजितजय नामका राजा रहता था। इसकी पत्नीका नाम महादेवी था, जो इसे बहुत ही प्रिय थी। तथा इस राजाके एक मन्त्री था, जिसका नाम सोमश्री था। सोमश्रीकी पत्नीका नाम विमलमती था। विमलमती बहुत ही रूपवती थी, युवती थी और कला तथा विज्ञानमे पारगत थी।

इन दोनों पति-पत्नियोंमे मंत्री मिथ्यादृष्टी था। वह खूब धन-धान्यसे सम्पन्न था और मिथ्यादृष्टी साधुओंको निरन्तर वस्त्र भोजन देता रहता था।

एक दिनकी बात है। एक महीनेके उपवासी समाधिगुप्त नामके आचार्य पर्यटन करते हुए सोमश्रीके घर आये। ज्यो ही सोमश्रीने अपने घर भिक्षाके लिए आये हुए एक दुर्बल साधुको देखा, उसने तत्काल उठकर बड़ी ही श्रद्धा भक्तिके साथ उन मुनिराजको पडगाहा और अच्छी तरहसे पका हुआ आहार भिक्षाके रूपमे विधिवत् उन्हे दिया।

जब विशुद्धात्मा मुनिराज आहार कर चुके और उसने मुनिराजकी भावपूर्वक वन्दना की तो वह यह कहकर उसके यहाँसे चलदिए कि "तुम अपने दानके फलको प्राप्त करो।"

इस प्रकार जब वह तपोमूर्ति साधु सोमश्रीके घरसे चले गये तो उसके घर पचाश्चर्योंकी वर्षा हुई। अर्थात् आकाशसे धन वृष्टि हुई, पुष्प वृष्टि हुई, शीतल, मन्द और सुगन्धित वायु बहने लगी, देवोने दुदुभिया बजाई और देवताओने बडी ही प्रसन्नताके साथ सबके मन और कानोंको सुखद "धन्य दान, धन्यदान" की जय ध्वनियां की।

जब मन्त्री सोमश्रीने मुनिदानके कारण अपने घरमे होने वाली यह पञ्चाश्चर्यकी वर्षा देखी तो उसका मन बहुत ही विस्मित और प्रसन्न हुआ। वह सोचने लगा—मैंने अग्नि-होत्र विधान करके, वेद-वेदाङ्गके पाठी अनेक ब्राह्मणोको इच्छानुसार खूब ही दान दिया। इसके साथ ही परिव्राजक, शैव, और कापालिकोंको भी खूब ही आदरके साथ दान दिया, परन्तु इस प्रकारका आश्चर्य तो आजतक नही देखा। ठीक है पुण्यात्मा प्राणियोंके लिए संसारमें कोई वस्तु दुर्लभ नही है।

इस प्रकार विचार करते-करते मन्त्रीका शरीर संतोषसे रोमाञ्चित हो उठा और उसकी आत्माम अद्भुत शान्ति जाग्रत हुई। ठीक है, जो विवेकशील होता है वह कभी न कभी प्रबुद्ध होता ही है। इस तरह मन्त्रीके हृदयमे जब खूब ही शान्तिका सँचार होगया और उसका मन भक्तिसे भर-गया तो वह समाधि गुप्त मुनिराजके पास पहुँचा और उन्हे नमस्कार करके पूछने लगा—महाराज, मैंने आजतक महातपस्वी ब्राह्मणोको सोना, घोडे, तिल, हाथी, दास, दासी, रथ, पृथ्वी, घर, कन्या और कपिला गाय—इस तरह दसों ही प्रकारके दान खूब दिये, परन्तु मैने आजतक भी इस प्रकार महान् अतिशय नही देखा।

सोमश्रीकी यह भोली बात सुन कर मुनिराज बोले-मन्त्रिन्, ससारमे ये दान प्रशस्त दान नही है। मनीषी जन चार प्रकारके दानको ही प्रशस्त दान बतलाते है। वे दान है—आहारदान, अभयदान, शास्त्रदान और औषधदान। मन्त्रिन्, इस समय मै तुम्हें विद्वज्जनसम्मत आहार दान-का माहात्म्य बतलाता हूँ, सो तुम उसे एकचित्त होकर साव-धानीके साथ सुनो।

"दक्षिणदेशमें विन्या नामकी एक बडी नदी है। इस नदीके तटपर एक विन्यातट नामका लोकप्रसिद्ध नगर था। इस नगरमे सोमप्रभ नामका राजा रहता था। इसकी पत्नी का नाम सोमप्रभा था। सोमप्रभा बहुत ही सुन्दर थी और राजाको बहुत ही प्रिय थी।

एक समयकी बात है। सोमप्रभ नरेशने बडी ही प्रसन्नताके साथ अपने नगरके निकटवर्ती प्रदेशमें सुवर्ण यज्ञ किया। जब यह यज्ञ प्रारभ हो गया। तो राजा इस यज्ञ-के प्रारंभ, मध्य और अन्तमें ब्राह्मणोको बार-बार सुवर्णका दान करने लगा।

सोमप्रभकी यज्ञशालाके निकट ही एक विश्वभूति नामका तपस्वी रहता था। यह तपस्वी शिशिरकालमे शिला वीन करके अपनी जीविका-निर्वाह किया करता था। ग्रीष्म-कालमे कपोत जैसी वृत्तिसे निर्वाह करता था और वर्षाकालमें चकवे जैसी वृत्तिसे निर्वाह करता था। यह तपस्वी कपोत वृत्तिसे सत्तु बनाकर और उनको पानीमे घोलकर उसके समान भाग वाले चार पिण्ड बनाता एक पिण्डको वह अग्निमें होम देता, दूसरेको अपने पासमे रखकर दान करनेके लिए अतिथियोंकी प्रतीक्षा किया करता।

एक दिनकी बात है। पिहितास्रव नामके मुनिराज एक महीनेका उपवास किये हुये आहारके लिए विहार करते-करते विश्वभूतिके घर आ पहुचे। पिहितास्रव मुनिराजको अपने घर आया हुआ देखकर विश्वभूतिके हृदयमे भक्तिका स्रोत उमड पडा। वह मुनिराजको देखते ही उठ खडा हुआ और उन्हें नमस्कार करके निवेदन करने लगा—आइए महाराज, ठहरिए। तपस्वीने इस प्रकार मुनिराजको ठहरा कर बड़ी ही श्रद्धा और भक्तिके साथ उन्हे सत्तूका एक पिण्ड बना कर दिया। जब मुनिराजने सत्तूके इस एक पिण्डको खा लिया तो उसने अपने लिए तथा अपनी पत्नीके लिए तैयार किये गये दो अन्य पिण्ड भी मुनिराजको आहारमे दे दिये। इस प्रकार जब मुनिराज सत्तूके तीनों पिण्ड लेकर अपना आहार समाप्त कर चुके तो उनके मनमें बडा संतोष हुआ। मुनिराजने आहार कर चुकनेपर विश्वभूतिको आशीर्वाद दिया और वे बड़ी ही मन्दगतिके साथ उसके मकानसे निकलकर चल दिए।

जब मुनिराज आहार करके चले गये तो विश्वभूतिके घर-पर पचाश्चर्योकी वर्षा हुई। इस आश्चर्य पूर्ण दृश्यको राजा और नगर निवासी सभी ब्राह्मणोंने देखा तथा सबको यह देख कर बड़ा ही विस्मय हुआ। उन सबको ऐसा मालूम हुआ जैसे

विश्वभूतिने सुवर्णयज्ञ किया हो और इसीसे वे सबके सब उसके घर पहुचे ।

परन्तु ज्यो ही राजा और ब्राह्मण विश्वभूतिके घरमे बरसाये गये इन रत्नोको उठाने लगे, त्यो ही वे सब काले अङ्गारोके रूपमे परिणत हो गये । जब राजाने इन रत्नोको अगारे बनते देखा तो उसे बहुत ही आश्चर्य हुआ और उसने विश्वभूतिके घर आये हुए ब्राह्मणोंसे पूछा—ब्राह्मणों, आप लोग हमे यह बतलाइए कि यदि सुवर्णयज्ञके माहात्म्यके कारण इन रत्नोकी वर्षा हुई है तो अब ये सब रत्न हम लोगोके स्पर्श करते ही अंगारे क्यो बने जा रहे है ?

जब नकुलने राजाकी यह बात सुनी तो वह कहने लगा—"राजन्, विश्वभूतिके घरपर जो वर्षा हुई है सो यह सुवर्ण-यज्ञके कारण नही हुई है । इस पञ्चवर्णकी उज्ज्वल धन-वृष्टिमे विश्वभूतिके द्वारा दिया गया मुनिदान ही कारण है । इसलिए आपको विश्वभूतिका यह धन नही लेना चाहिए । यह धन आहारदानसे उत्पन्न हुआ है और विश्वभूतिका पुण्य इसकी रक्षा कर रहा है ।"

जब राजाने नकुलकी यह बात सुनी तो वह इस समृद्धि-सम्पन्न विश्वभूतिसे कहने लगा—विश्वभूति, मै तुम्हें अपने सुवर्णयज्ञके आधे फलको दे सकता हूँ, यदि तुम मुझे भी अपने मुनिराजको दिये गये आहारदानका फल दे सको । सोमप्रभ राजा विश्वभूतिके इस दानसे बहुत ही सतुष्ट था, परन्तु विश्वभूतिने राजाकी यह बात तनिक भी स्वीकार न की ।

इस प्रकार समाधिगुप्त नामके आचार्य सोमश्रीसे कहने लगे—मन्त्रिन्, इस उदाहरणसे तुम्हे स्पष्ट होगया होगा कि ससारमे सुवर्ण आदि दस प्रकारके दान भी साधारण आहा-रदानकी तुलना तक नही कर सकते ।

समाधिगुप्त आचार्य पुन· कहने लगे—हे धर्मात्मा मन्त्रिन्, अब तुम्हे मै संक्षेपमे अभयदान आदि दानोके माहात्म्यको बतलाता हूँ, सो तुम सुनो। इस दानका इतना महान् माहात्म्य है कि मनुष्य यदि सोनेका सुमेरुपर्वत और सम्पूर्ण पृथ्वी भी दान दे तो वह एकको जीवन दान देनेके फलकी बराबरी नही कर सकता। कहा भी है—

"यो दद्यात् काञ्चनं मेरुं कृत्स्ना चापि वसुन्धराम्।
एकस्य जीवित दद्यात् फलेन न सम भवेत्॥"

अर्थात्—जो सोनेके सुमेरु पर्वत और सम्पूर्ण पृथ्वीका भी त्याग करे तो वह एक व्यक्तिको दिये हुए जीवन-दानकी तुलनामे नही आ सकता है।

समाधि-गुप्त मुनिराज कहने लगे—मन्त्रिन्, यह तो अभदानका माहात्म्य है। अब तुम्हे मै शास्त्र-दानका माहात्म्य सक्षेपमें बतलाता हूँ—

"एक ब्राह्मण पाण्डुरीक साँपको ले जा रहा था। सो वह साँप कहने लगा—जो स्त्रियोंके गुप्त चरित्रको प्रकट करता है, वह दीर्घजीवी नही होता। तथा जो गुरु अपने शिष्यको एक अक्षर भी पढाता है ससारमे इससे बढ़कर अन्य धन नही है, जिसे देकर इस ऋणसे मुक्त हुआ जा सके। कहा भी है:—

'नीयमानः स्वपर्णेन नाग पण्डुरिरब्रवीत्।
य स्त्रीणा गुह्यमाख्याति तदन्तं तस्य जीवितम्॥
एकमप्यक्षरे यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत्।
पृथिव्या नास्ति तद्द्रव्य यद्दत्वाऽनृणी भवेत्॥"

समाधि-गुप्त मुनिराज सोमश्री,से कहने लगे—मन्त्रिन्, यह शास्त्र-दानका माहात्म्य है। अब मै तुम्हें औषध-दानके माहात्म्यको बतलाता हूँ।

मन्त्रिन्, जो व्यक्ति रोगसे पीडित साधुओंको औषध दान करता है, वह सौ जन्म तक नीरोग रह कर

जीवित रहता है। मुनिराज कहने लगे—मन्त्रिन्, ये चार दान ही ससारमे प्रशस्त माने गये है और इनसे ही सद्गुणोका लाभ माना गया है। इसके विपरीत जो अन्य गोधन आदिका दान है वह कभी भी प्रशस्त नही माना गया"।

इस प्रकार सोमश्रीने जब देय और अदेय वस्तुका फल सुना और जैनधर्मका उपदेश सुना तो उसकी आत्मा बहुत ही प्रसन्न हुई तथा उसका मन लोकधर्मस विरक्त हो गया। उसने समाधि-गुप्त मुनिराजके निकट मद्य, मास, मधु और पाच उदुम्बर फल छोड दिए तथा पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार प्रकारके शिक्षाव्रतोके साथ शङ्कादि दोषसे रहित और मेरुके समान निश्चल सम्यक्त्वको स्वीकार कर-लिया। और इस तरह सोमश्री एक विशुद्धात्मा व्यक्ति बन गया। तदनन्तर सोमश्रीने समाधि गुप्त स्वामीको नमस्कार किया और वह बडी ही भक्तिके साथ उनकी सेवामे विनय करने लगा—महाराज, मै जीवन पर्यन्त लोहके शस्त्रको ग्रहण नही करूगा। सोमश्रीने इस प्रतिज्ञाके पश्चात् एक बार फिर समाधि-गुप्त मुनिराजको श्रद्धा पूर्वक नमस्कार किया और जैनधर्मसे विभूषित होकर वह बडी ही प्रसन्नताके साथ अपने घर आ गया।

घर आकर सोमश्रीने काठकी छुरी तथा काठकी ही तल-वार और म्यान बनवाई और इन्हे ही अपने साथ लेकर राज सभाम आने जाने लगा।

एक दिन कुछ पुरोहित लोगोने ईर्ष्याबश राजासे यह बात कहदी। उन्होने कहा—महाराज, आपका यह मन्त्री बहुत ही दुष्टात्मा है और आपके प्रति जरा भी सद्भाव नही रखता। यह काठकी छुरी तथा काठकी ही तलवारको काठके म्यानमें रखकर आपकी सेवा करता है।

जब राजाने यह समाचार सुना तो वह सोमश्रीसे दिल-

ही दिलमे बहुत नाराज हुआ। एक बार राजाने सभामे एक प्रसङ्ग छेड दिया और वह नील कमलके समान चमकती हुई अपनी तलवार देखने लगा। राजाके मनमे छल था अत: वह क्रमसे सभी राजाओकी तलवारे देखने लगा। इसके पश्चात् उसने सोमश्रीसे कहा—भद्र, जरा तुम भी अपनी तलवार दिखलाना। देखे तुम्हारी तलवार कैसी है ?

सोमश्रीने राजा अजितजयको म्यानमे रक्खी हुई अपनी तलवार दे दी। राजाने भी सोमश्रीके हाथसे वह चमकती हुई तलवार ले ली और उसे म्यानसे खीचा। म्यानसे खीचते ही तलवारके प्रभापुञ्जने आकाश और पृथ्वीको जगमग कर दिया और उस समय वह इस प्रकार मालूम दी जैसे दिपता हुआ सूर्य हो।

ज्यो ही राजाने इस तलवारको खोला वह क्रुद्ध मनसे उन चुगलखोरोंके मुखोकी ओर देखने लगा। राजाको इस चमकती हुई लौहकी तलवारपर बडा ही आश्चर्य हुआ। उसने इस तलवारको हाथमे लेकर अपनी मेघके समान गभीर वाणीसे समस्त सभ्योसे कहा—"आप लोगोमेसे कुछ सभ्योंने मुझे यह बतलाया था कि सोमश्री काठकी ही छुरी लेकर मेरे यहाँ आता जाता है और मेरी सेवा करता है। उन सभ्योंने इसे महान् दुष्टात्मा और पापात्मा बतलाया था। सभ्यो, अब आप लोग सोमश्रीकी इस तलवारको अच्छी तरह-से देख लीजिए।"

महाराज अजितजयकी बात सुनकर सोमश्री कहने लगा—"राजन्, मैंने अपने गुरु महाराजके निकट एक ऐसा ही व्रत लिया है। वह व्रत इस प्रकार है कि मै समस्त अनर्थोंकी जड़ लोहके शस्त्रको जीवन भर मन, वचन और कायसे ग्रहण नही करूँगा। राजन्, मुझसे द्वेष रखनेवाले मन्त्री और पुरो-

हितने आपको जो गुप्त समाचार दिया है वह सत्य ही है असत्य नही ।"

सोमश्री कहता गया—"राजन्, वस्तुत मै काठकी छुरी और काठकी तलवारके द्वारा ही बहुत दिनोसे रात-दिन आपकी सेवा करता आ रहा हूँ ।"

मत्री सोमश्रीकी यह बात सुनकर अजितजय राजाकी जैनधर्ममे और अधिक श्रद्धा होगई । राजाने उसका खूब सम्मान किया। इसके पश्चात् ही वहाँ नगर देवियाँ आ पहुँची । उन्होने सोमश्रीको मणिजटित सुवर्णमय सिंहासनपर बिठलाया और स्वच्छ जलसे भरे हुए मणिमय तथा सुवर्णमय कलशोसे उसका विधिवत् माङ्गलिक अभिषेक किया ।

इसके बाद नगरनिवासी समस्त जन-समूह भी आकर वहाँ एकत्रित होगया और उसने भी बडी भक्ति, उत्साह तथा उत्सवके साथ सोमश्रीकी पूजा की ।

विष्णुश्री कहने लगी—प्राण नाथ, सोमश्रीके इस धार्मिक माहात्म्यको देखकर कुछ मनुष्योके मनमें मोक्ष प्राप्तिकी अभिलाषा जागृत हो उठी और वे जिनसेन गुरुके निकट दीक्षित हो गये । बहुतसे मनुष्योने आश्चर्यान्वित होकर सम्यक्त्व प्राप्त किया और जैनधर्मका लाभ लिया । इस अतिशयको देखकर ही मेरे सम्यक्त्वमे स्थिरता आई है ।"

इस प्रकार मंत्री सोमश्रीके सम्यग्दर्शनके लाभ तथा
सुवर्णयज्ञ आदिकी अनेक कथाओसे सम्बद्ध
विष्णुश्रीके दृढ सम्यक्त्वको बतलाने
वाला यह कथानक सम्पूर्ण हुआ

—०—

६७. नागश्रीकी कथा

तदनन्तर अर्हद्दास सेठने अपनी चौथी पत्नी नागश्रीसे पूछा—प्रिये अब तुम बतलाओ कि तुम्हारे सम्यक्त्वकी स्थिरताका क्या कारण है ? नागश्री बोली—अब मै अपने सम्यक्त्वकी स्थिरताका कारण बतलाती हूँ। आप सुनिए—

"काशी नामक सुरम्य देशमे वाराणसी नामकी नगरी है। इस नगरीमें जितशत्रु नामका राजा रहता था। जितशत्रुकी पत्नीका नाम स्वर्णचित्रा था, जो राजाको बहुत प्रिय थी। इन दोनोके एक कन्या थी जिसका नाम मुण्डिका था। मुण्डिका अपने माता-पिताको बहुत ही प्रिय थी।

मुण्डिकाको बाल्य अवस्थामे मिट्टी खानेका व्यसन था। एक बार ऋषभश्री आर्यिकाने इसे मिट्टी खाते हुए देखा तो आर्यिका वात्सल्य वश मुण्डिकासे कहने लगी-पुत्री, इस मिट्टीके खानेमे बहुत दोष है। इसमें अनन्त पृथिवीकायके जीवोकी हिंसा होती है। इसलिए मिट्टी कदापि नही खानी चाहिए।

आर्यिकाकी बात सुनकर मुण्डिकाकी रुचि धर्माचरणकी ओर बढी। उसने मिट्टी न खानेका नियम ले लिया। जबसे उसने मिट्टी खाना छोड दिया, उसका शरीर देवाङ्गनाओके समान सुन्दर होगया। उसका इतना सौन्दर्य निखरा कि जो भी राजा इसे देखता, उसके प्रति आकर्षित हो जाता और उसकी याचना करने लगता। इस प्रकार अनेक राजा मुण्डिकाको देखकर मोहित हुए और इन लोगोने उसकी याचना भी की, परन्तु जितशत्रुने इन सबको इनकार कर दिया।

एक समयकी बात है। भगदत्त नामके राजाने अपनी विशाल सेनाके साथ चारों ओरसे वाराणसीको घेर लिया। उसने जितशत्रुक पास दूत भेजा कि या तो वह उसे अपनी

मुण्डिका कन्या तथा आधा राज्य दे। नही तो उसकी बुरी तरहसे दुर्गति की जायगी।

दूत जितशत्रुके पास पहुचा और उसने भगदत्तकी आज्ञा उसे जा सुनाई। इस प्रकार जब जितशत्रुको मालूम हुआ कि भगदत्त उसकी कन्या चाहता है तो उसे बडा क्रोध आया। उसने दूतको बुरी तरहसे डाटा। उधर तिरस्कृत दूत अपने स्वामी भगदत्तके पास पहुँचा। इधर जितशत्रु युद्ध करनेके लिए अपने नगरसे निकल पडा।

जब भगदत्तने दूतके मुखसे जितशत्रुकी बात सुनी तो वह भी सेनाके साथ जितशत्रुका सामना करनेके लिए चल पडा। इसके पश्चात् कन्याके पीछे दोनो ओरकी सेनाओंमें भयकर सग्राम छिड गया और इसमें दोनो ओरके वीर सैनिको-का सहार होने लगा। ठीक ही है, स्त्रिया युद्धका कारण है।

इस युद्धमें घोडेने घोडेको गिराया, हाथीने हाथीको गिराया, रथके सवारने रथके सवारको गिराया और पदातिने पदातिको गिराया। उस समय घोडोकी हिनहिनाहट, हाथियो-की चिग्घाड, रथोकी चीत्कार, पदातियोकी गर्जना और पृथ्वी तथा आकाशको आपूर्ण करनेवाले रणके बाजोके शब्दसे इतना विराट कोलाहल हो रहा था कि किसीकी बात परस्परमें एक दूसरेको बिलकुल ही सुनाई नही देती थी।

भगदत्तने जितशत्रुको पराजित करदिया और वह युद्धसे भाग निकला। यह सुनकर जितशत्रुका समस्त अन्त पुर भय-से कापने लगा और जितशत्रुकी समतिके अनुसार वह शत्रुसे डरकर भाग निकला। किन्तु बार बार कहनेपर भी मुण्डिका जानेके लिए तैयार नही हुई। वह अपने पितासे बोली—पिता जी, मै तो यही रहकर अपने पूर्व जन्ममे किये शुभाशुभ कर्मोंके फलको भोगूंगी। आपको यहाँ डर लग रहा है, सो आप चले जाइए।

जब जितशत्रुने पुत्रीकी यह धीरता पूर्ण बात सुनी तो उसकी आँखोंमे आँसू आगये और वह कहने लगा–पुत्रि, तुम जैसी सर्वाङ्ग सुन्दर पुत्रीको यहाँ अकेली छोडकर जाना कदापि ठीक न होगा। सोचो, तुम्हारा यह प्रस्ताव कहाँ तक समुचित है? मुझे तो इससे बडा डर लगता है।

यह सुनकर मुण्डिका स्थिरचित्तसे बोली-पिता जी! आप मेरी चिन्ता न कीजिए। व्रतसे अथवा पुण्यसे किसी न किसी प्रकार मेरी रक्षा हो ही जायगी। यद्यपि शत्रु महान् पराक्रमी है, प्रतापी है, अधिक सेना लिए हुए है और आपके तिरस्कार करने पर उतारू है। वह कभी भी अपने वैरभावको नहीं छोड़ सकता है। अत. यहाँ आपके प्राण सकट मे है, सो आप अवश्य ही इस स्थानसे प्रस्थान कर दीजिए। इस प्रकार पुत्रीकी इच्छानुसार जितशत्रु वहांसे चल दिया।

सुन्दरी मुण्डिकाने जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार किया, प्रत्याख्यान किया और अपने अन्त करणको स्थिर किया। और इस प्रकार ध्यान करती हुई वह ज्यो ही भगदत्तकी दृष्टि-के सामने आई, त्योंही जलदेवीके समान गङ्गा नदीमे प्रवेश कर गई।

ज्यो ही धीर हृदय मुण्डिका गगामे कूदी, तत्काल उसे एक सुन्दर द्वीप दिखाई दिया। इस प्रकार मुण्डिका तरगों-से भीषण गगा नदीमे प्रवेश करके भी जरा भी नही डरी और विश्वस्त होकर आनन्दके साथ उस द्वीपमें ठहरी रही।

इधर भगदत्त राजा मुण्डिकाकी रूप-माधुरीपर मोहित हो कर ज्यों ही गगामे प्रवेश करने लगा, गङ्गा देवीने उसे किनारे पर ही स्तम्भित कर दिया।

प्रभातकाल हुआ और समस्त जनताने देखा कि भगदत्त राजा गङ्गाके जलमें निश्चेष्ट खडा हुआ है। इस समाचारको सुनकर नगरकी सम्पूर्ण जनता एकत्रित हो गई और उधर

अन्तःपुरमें जब यह समाचार पहुँचा तो वह भी बहुत ही विह्वल होकर राजाके निकट जा पहुँचा। ज्यो ही भगदत्तकी स्त्रियोंने राजाकी यह अवस्था देखी, वे एक दम शोकाकुल हो उठी। उनकी आँखोसे आँसू निकलने लगे, वे रोने-चिल्लाने लगी और बडी ही दीनताके साथ पतिकी भीख मागने लगी।

मुण्डिकाने ज्योही स्त्री मण्डलका रोना चिल्लाना सुना उसका हृदय करुणासे पिघल गया और वह महलसे बाहर निकलकर कहने लगी—जिस देव, देवी अथवा मनुष्यने मेरे प्रति यह अतिशय दिखलाया हो, वह अब इस राजाको तत्काल छोड दे।

मुण्डिकाके इतना कहते ही राजा तत्काल छूट गया। छूटते ही उसकी जानमे जान आई और उसका मन बडा विस्मित हुआ।

देवताओने बड़ी ही भक्तिके साथ मुण्डिकाको सिहासन-पर विराजमान किया और उसका जलसे अभिषेक किया। और जब अभिषेक हो चुका तो देवताओने मुण्डिकाकी बड़ी ही श्रद्धाके साथ पूजा की।

भगदत्त राजा भी यह सम्पूर्ण दृश्य देख रहा था। इस समय वह मानरूपी पर्वतसे गिर चुका था, विनीत बन गया था और उसका हृदय आश्चर्यसे आन्दोलित हो रहा था। वह मनमे सोचने लगा—इस सुन्दरी कन्याके रूपको धन्य है, शीलको धन्य है और धैर्यको धन्य है। ये तीनो ही वस्तुए अन्य स्त्रियोमे दुर्लभ है।

राजा भगदत्त अपने मनमे यह सोचता हुआ मुण्डिकाके निकट आया और उसे नमस्कार करके अपने अपराधकी क्षमा याचना करने लगा। इस प्रकार भगदत्तके द्वारा पहले पीड़ित होनेपर भी मुण्डिका इस राजा तथा इसके सामन्तोके

द्वारा एव नगर-निवासी समस्त जनताके द्वारा खूब ही सत्कृत हुई ।

जब जितशत्रुको अपनी पुत्रीके इस माहात्म्यका पता लगा तो वह तुरन्त ही अपने अन्त.पुरको साथ लेकर मुण्डिकाके पास आ पहुचा ।

इसी समय भगदत्त राजाके मनमे एकदम वैराग्य भाव जागृत हुआ और उसने जितशत्रु महाराजसे अपने पापकी क्षमा याचना की। अब भगदत्त राजा जितेन्द्रिय हो चुका था और कामके ऊपर भी विजय प्राप्त कर चुका था। सो उसने विरक्त होकर अपने पुत्रको राज्य दे दिया और धर्मसेन मुनिराजके निकट दिगम्बरी दीक्षा ले ली। इसके साथ ही अन्य राजाओं-के मन भी भोगोंसे उदास हो गये और वे भी इन्ही मुनिराजके निकट दीक्षित हो गये ।

यह अतिशय देखकर कुछ लोगोने भक्तिपूर्वक सम्यक्त्व धारण किया और कुछ लोग अणुव्रत लेकर जिनधर्म परायण श्रावक बन गये ।

मुण्डिका आदि स्त्रियां भी अत्यन्त विरक्त हुईं और ऋषभश्री आर्यिकाके निकट दीक्षा लेकर आर्यिका हो गईं ।

नागश्री अर्हद्दास सेठसे कहने लगी—सेठ जी, इस प्रकार मुण्डिकाके अतिशयको देखकर ही मेरा सम्यक्त्व दृढ़ हुआ है।"

इस प्रकार मुण्डिकाके मृत्तिका भक्षणके त्यागके फलको
देखनेसे दृढ सम्यक्त्ववाली नागश्रीका यह
पाचवा कथानक समाप्त हुआ।

---

६८. पद्मलताकी कथा

तदनन्तर सेठ अर्हद्दासने पाचवी पत्नी पद्मलतासे पूछा-प्रिये, तुम भी अपने सम्यक्त्वकी स्थिरताका कारण बतलाओ। सेठकी बात सुनकर पद्मलता बोली-अच्छी बात है,सुनिए-

"अङ्ग नामके देशमे चम्पा नामकी नगरी है। इसमे दन्तिवाहन नामका राजा रहता था। इस राजाकी एक महादेवी थी जिसका नाम विनयशोका था। विनयशोका बडी ही विनयवती और सदाचारिणी थी तथा राजाके मनको बहुत ही प्रिय थी।

इसी नगरमें एक महान् समृद्ध सेठ रहता था, जिसका नाम ऋषभदत्त था। ऋषभदत्तकी पत्नीका नाम पद्मावती था। ये दोनो ही दम्पति परस्परमे बडे ही प्रेमानुरक्त थे और इन दोनोंके कमलके समान सुन्दराङ्गी एक पद्मश्री नामकी कन्या थी। पद्मश्री सम्यग्दर्शनसे सुशोभित थी और बहुत ही गुणवती थी।

इसी नगरमे एक बुद्धदास नामका सेठ रहता था, जो बौद्ध उपासक था। इसकी पत्नीका नाम बुद्धश्री था और वह भी बौद्ध उपासिका थी। इन दोनोके मन और नेत्रोको हरण करने वाला एक बुद्धसघ नामका पुत्र था। बुद्धसघका शरीर रूपराशिसे निखर रहा था और वह बुद्ध भगवान्का बहुत ही भक्त था।

एक दिनकी बात है। बुद्धसघ अपने आयतनोको देखता हुआ विहार कर रहा था कि इतनेमें सर्वोत्तम आयतन स्वरूप जिन-मन्दिरमे जा पहुचा। वहा इसने फूलोसे जिन पूजा करती हुई पद्मश्रीको देखा तो वह इसे देखते ही कामसे विह्वल हो गया। इसके बाद बुद्धसघ अपने घर पहुंचा-

और इसने स्नान-भोजन आदि सब कुछ छोड दिया तथा मौन लेकर शय्यापर जा लेटा ।

जब बुद्धसघकी माताने देखा कि उसका पुत्र बिलकुल चुपचाप होकर शय्यापर पडा हुआ है, और उसका सम्पूर्ण मुख-कमल मुरझाया हुआ है तो उसने बुद्धसघसे पूछा—पुत्र, इस प्रकार भोजन, ताम्बूल, पुष्प, स्नान और काश्मीर केशर आदि छोड़कर तुम किस कारण शय्यापर पडे हुए हो ?

ज्यों ही कामके बाणोसे आहत बुद्धसघने माताकी यह बात सुनी,वह गरम गरम श्वासोच्छ्वास निकालता हुआ माता से कहने लगा—माता, मेरा ध्रुव विश्वास है कि यदि मुझे ऋषभदत्ताकी पुत्री पद्मश्री मिलती है तो मेरा जीवन है और यदि मुझे उसकी प्राप्ति नही होती तो माता, मेरी यह सुदृढ़ प्रतिज्ञा है कि मै कल अवश्य ही प्राण-घात कर लूगा ।

जब बुद्धसघकी माताने अपने पुत्रकी यह बात सुनी तो वह उसकी प्रतिज्ञासे डर गयी और अपने पतिक पास जाकर पुत्रकी स्थिति और प्रतिज्ञाका सम्पूर्ण समाचार सुना दिया ।

जब बुद्धसंघके पिताने अपनी स्त्रीसे उक्त समाचार सुने तो वह अपने पुत्रसे कहने लगा—'पुत्र, हम लोग उपासक है और मासभक्षी है । उधर पद्मश्रीका पिता ऋषभदत्त श्रावक है । और इस बातको सब ही लोग जानते है कि वह भगवान् जिनेन्द्रके सिवाय अन्य किसीकी भी भक्ति नही करता है । सो पुत्र, तुम ही बतलाओ वह जैन सेठ हम जैसे बौद्धोंके लिए अपनी कन्या किस प्रकार दे सकता है ? अथवा पुत्र, हमने एक उपाय खोज निकाला है, जिससे वह अवश्य ही अपनी पुत्रीका विवाह तुम्हारे साथ कर देगा । अत तुम चिन्ता छोड़ दो और विश्वस्त हो जाओ ।'

इस प्रकार विचार करके वे दोनो यशोधर मुनिराजके पास

पहुचे और वहां पहुचकर बडी ही प्रसन्नताके साथ यथोचित स्थानपर जा बैठे। उन दोनोने मुनिराजके निकट जैनधर्मका उपदेश सुना, अणुव्रत स्वीकार किये और बहुत ही विनयमूर्ति बने हुए छली श्रावक बन गये। दोनोने बौद्धधर्म छोड दिया और जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा करने लगे। इसके अतिरिक्त साधुओके लिए बार-बार आहारदान भी देने लगे। दोनों ही पर्वके प्रत्येक अवसरपर बड़ी ही प्रसन्नताके साथ उपवास करने लगे और इस प्रकार सेठ ऋषभदत्त भी धर्म-वात्सल्यके कारण इनसे बहुत स्नेह करने लगा।

एक दिनकी बात है। वृद्ध बुद्धदासने उपवास किया था और वह ऋषभदत्तके चैत्यालयमें ही उपोषित बैठा हुआ था। सो ऋषभदत्त सेठ इसे सहर्ष अपने घर पारणाके लिए ले गया। वहा सेठने बुद्धदासको खीर परोसी और उससे भोजन करने की प्रार्थना की, परन्तु बुद्धदास बड़ी विनयके साथ बोला—सेठ जी! यदि तुम अपनी पुत्री पद्मश्री मेरे पुत्र बुद्धसंघके लिए देना स्वीकार करो तो मै भोजन करूगा।

जब सेठने बुद्धदासकी यह बात सुनी तो वह कहने लगा—भद्र, हम अपनी कन्याएँ विद्वान् श्रावकोंको ही देते है। सो आप भी श्रावक है, अतः आपके पुत्रको अपनी कन्या देनेमे हमे कोई आपत्ति नही है। इस प्रकार जब ऋषभदत्तने अपनी पुत्री देना स्वीकार किया तो दोनों ही विधिवत् भोजन करने लगे।

इसके बाद ऋषभदत्तने वीतराग जिनेन्द्र भगवान्‌की पुष्प और धूप आदिसे महती सेवा की तथा शख और अन्य माङ्गलिक गाजे-बाजेके साथ पद्मश्री तथा बुद्धसंघका विधिपूर्वक पाणिग्रहण सस्कार सम्पन्न कर दिया।

इस प्रकार जब दोनो पिता-पुत्र पद्मश्रीको विधिवत् विवाह

लायें तो इन दोनोंने एक दिनका उपवास रक्खा। तत्पश्चात् एक बौद्ध भिक्षुने पद्मश्रीको भेद प्रभेदपूर्वक बौद्धधर्म-का उपदेश दिया; परन्तु पद्मश्रीको अपने जैनधर्म पर अविचल श्रद्धा थी, सो उसे बौद्धर्म बिलकुल ही रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ।

बौद्ध भिक्षु पुन पद्मश्रीसे कहने लगे–"हमारा बुद्धधर्म ही समस्त प्राणियोंका हितकारी है, सब जीवोंके प्रति करुणाशील और सुखदायी है। इसके सिवा हे पुत्रि, हम लोगोंका ज्ञान भी भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालवर्ती पदार्थोंका ज्ञाता है, और बौद्धलोग इस ज्ञानको प्राप्त करके ससारमे सुखी रहते हैं।

हे पुत्रि, मैं अपने सत्य और साधु ज्ञानके द्वारा लोकके समस्त पदार्थोंको, जो जिस रूपसे व्यवस्थित है, जानता हूँ। तुम्हारे पिताने व्यर्थ ही जैनधर्मको अङ्गीकार किया और इसीके कारण उसे भयकर जगलमें हरिण होना पडा।"

जब पद्मश्रीने भिक्षुओंकी यह बात सुनी तो वह कहने लगी–"भिक्षुओ, मुझे आप लोगोके ज्ञानका अच्छी तरह पता है, जिसके कारण आपलोगोंको यह मालूम हो गया कि मेरे पिता अनेक वृक्षोसे भरे वनमें हरिण हुए हैं।"

एक दिनकी बात है। पद्मश्रीने समस्त बौद्ध भिक्षुओंका अपने घरपर आमन्त्रण किया। समस्त भिक्षु अपने-अपने जूते पहिने तथा छाते लिए हुए आये और वे क्रमानुसार बैठते गये। उन्होंने अपने अपने जूते पद्मश्रीके घरके एक कोनेमें रख दिए। पद्मश्रीने इन भिक्षुओंका एक-एक जूता मगवा लिया और उनके बहुत छोटे-छोटे टुकड़े करवा लिए। उसने जूतोंके इन टुकड़ोंको मिलाते हुए अनेक प्रकारके सुगन्धित और रसमय भोजन तैयार किये। जब सब प्रकारके व्यञ्जन तैयार हो गये तो पद्मश्रीने समस्त भिक्षुओंको वे व्यञ्जन खूब ही

परोसे और भिक्षुओंने भी अंगुलियोंके संकेतसे उन्हे और माँग माँग कर संतोषके साथ आहार किया।

जब सब ही भिक्षुक भोजन कर चुके तो उन सबने जूतोके स्थान पर केवल एक-एक जूता ही मौजूद पाया। यह देख कर उन लोगोको बडा ही आश्चर्य हुआ और वे तुरन्त ही पद्मश्रीसे विनय पूर्वक पूछने लगे–हे उपासिके, हम लोगोने उस घरमे अपने जूते उतारे थे, परन्तु समझमें नही आता कि हम लोगोंका एक एक जूता कहां गायब हो गया? आप कृपा करके अपने मकानमें इनकी सावधानीके साथ तलाश करवा दीजिए और उन्हें हम लोगोंको देदीजिए, जिससे हम शीघ्र ही सहर्ष अपने डेरे पर जा सके।

जब पद्मश्रीने इन भिक्षुओके मुंहसे यह बात सुनी तो वह कहने लगी–"भिक्षुओ, आप लोगोको पास तो वह ज्ञान है, जो समस्त वस्तुओका प्रकाशक है। फिर जिस ज्ञानसे आपलोग यह बतला सकते है कि तुम्हारा पिता वनमे हरिणके रूपमें उत्पन्न हुआ है, उस ज्ञानसे आप लोग अपने जूतोका पता नही लगा सकते?"

जैसे ही बौद्ध भिक्षुओने पद्मश्रीकी यह बात सुनी वे उससे बहुत ही विगडे और उन्होने यह समाचार बुद्धदाससे जा सुनाया। वे कहने लगे–देखो, उपासक! तुम्हारी बहूने हमलोगोका निमन्त्रण किया और उसमे हम-लोगोंका एक-एक जूता पकाकर हम लोगोको ही भोजनमें मिलाकर खिला दिया।

जब बुद्धदासने यह समाचार सुना तो उसे बडा ही क्रोध आया, उसकी आँखोमें खून उतर आया और राजाके पास जा कर उसने उसे बहुतसा धन भेट किया और अपनी बहू द्वारा बौद्ध भिक्षुओके तिरस्कृत किये जानेका सब समाचार जा सुनाया। राजाको भी इस समाचारसे बहुत ही क्रोध

आया तथा उसने शीघ्र ही बुद्धसंघ और पद्मश्रीको अपने देशसे निकाल दिया।

जब ये दोनो देशसे निकाल दिये गये तो रास्तेमे किन्ही दो व्यापारियोंसे इनकी भेट हो गई और वे दोनों बडे ही दुखित हृदयसे इन व्यापारियोके साथ परदेश चले गये।

रास्तेमे इन व्यापारियों ने अनजानमे, अपने समस्त परिवारके साथ विषमिश्रित भोजन कर लिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि व्यापारी और उनके समस्त साथी जन दिवंगत हो गये। बुद्धसघने भी इन लोगोंके साथ ही यह विषमय भोजन किया था, सो उसका सम्पूर्ण शरीर भी विषसे प्रभावित हो गया और वह मरे हुएकी तरह निश्चेष्ट हो गया।

यह समाचार जब बुद्धदासके पास पहुंचा तो उसे बहुत ही शोक हुआ और वह अपने आदमियोको लेकर उस प्रदेशमे आ पहुँचा। उसने आते ही मृतकल्प पुत्रको देखा तो जोर-जोरसे रोना और चिल्लाना शुरू कर दिया—'पद्मश्रीने हमारे पुत्रको विष देकर मार डाला है! अरे भाइयो, इतना ही नही, पद्मश्रीने इस व्यापारी मण्डलको भी विष खिला कर अकारण ही मार डाला है।' इस प्रकार बुद्धदासने यह असत्य समाचार सर्वत्र जा सुनाया।

इतना ही नही। बुद्धदासने समस्त उपस्थित जनताके सामने अपने मरे हुए पुत्रको हाथसे उठाया और उसे पद्मश्रीके ऊपर फेक दिया।

जब बुद्धदास इस प्रकारसे अपनी दुर्जन-लीलाका प्रदर्शन कर चुका तो पद्मश्रीने जिनेन्द्र भगवान्का स्मरण किया और कहने लगी—यदि रात्रिभोजन व्रतका कुछ भी माहात्म्य हो तो मेरे पतिदेव अभी हाल ही उठ कर बैठ जावे और स्वस्थ हो जावे।

पद्मश्रीने इतना कहा ही था कि बुद्धसघ और वह व्यापारी मण्डल विष-मुक्त हो गया और तत्काल ही सब-लोग उठ बैठे।

देवताओने इस समय आकाशमे स्थित होकर महान् वैभवके साथ पद्मश्रीकी खूबा ही पूजा की। जब वे लोग पद्म-श्रीकी खूब ही प्रसन्न मनके साथ पूजा कर चुके तो अदृश्य हो कर बार-बार कहने लगें-पद्मश्रीके शीलको धन्य है, पद्म-श्रीके सत्य अणुव्रतको धन्य है, उसकी जिनभक्तिको धन्य है और उसकी जिनधर्मकी रुचिको धन्य है।

जब दन्तिवाहन राजा और उसके मन्त्रियोने यह आश्चर्य पूर्ण दृश्य देखा तो वे बहुत ही आश्चर्यान्वित हुए। उस समय राजा, मन्त्री और कतिपय पुरवासियोके मनमें बडा ही वैराग्य उदित हुआ। उन्होने अपने पुत्रोको समस्त राज्य-भार तथा सम्पत्ति सौंप कर समस्त परिग्रहको छोड दिया तथा श्रीधर मुनिराजके पास वे सबके सब दीक्षित हो गये।

बुद्धदास, बुद्धसघ और समस्त व्यापारी मण्डल भी जैनधर्मकी शरणमे जा पहुचे।

इस प्रकार पद्मलता अर्हद्दास सेठ तथा अन्य सेठानियोसे कहने लगी—इस अतिशयको देख कर ही मेरा सम्यक्त्व सुदृढ़ हुआ ह।"

इस प्रकार पद्मश्रीके निश्चल सम्यक्त्व और रात्रिभोजन त्याग व्रतके माहात्म्यसे सुदृढ सम्यक्त्वशाली पद्मलताका यह छठवाँ कथानक समाप्त हुआ।

—०—

६७. कनकलताकी कथा

तदनन्तर सेठ अर्हद्दास कनकलतासे पूछने लगे—प्रिये, अब तुम अपने सम्यक्त्वकी स्थिरताका कारण बतलाओ ? यह सुन कर कनकलता भी निम्न प्रकार आख्यान सुनाने लगी—

"अवन्ती नामके महान् देशमें उज्जयिनी नामकी नगरी है। इस नगरीमे एक नरपाल नामका राजा रहता था। नरपाल बहुत ही समृद्ध था और विद्वानोके लिए बड़ा ही प्रिय था। इस राजाके एक महादेवी थी, जिसका नाम कनकमाला था। कनकमालाका शरीर सुवर्णके समान सुन्दर था और वह राजाके मनको बहुत ही प्रिय थी।

इसी नगरीमे एक सेठ रहता था, जिसका नाम समुद्रदत्त था। वह जैन श्रावक था और रत्न सम्पत्तिका उसके यहाँ अटूट भण्डार था। समुद्रदत्तकी पत्नीका नाम सागरदत्ता था, जो बहुत ही सुन्दर थी। इन दोनोंके एक पुत्र था, जिसका नाम ओमक था और एक पुत्री थी, जिसका नाम जिनदत्ता था।

तथा वत्सकावती देशमे कौशाम्बी नामकी नगरी है। इस नगरीमें अर्हद्दास नामका धीर बुद्धिशाली सेठ रहता था। इसकी पत्नीका नाम जिनदासी था। इन दोनोके ऋषभदास नामका एक पुत्र था, जो बहुत ही बुद्धिमान् था। सो समुद्रदत्तने अपनी कन्या जिनदत्ताका विवाह महान् उत्सवपूर्वक ऋषभदासके साथ कर दिया।

इधर समुद्रदत्तका पुत्र ओमक सप्त व्यसनोंका सेवन करने लगा और उज्जयिनीमें ही इधर-उधर घूमकर बार बार चोरियां करने लगा। एक बार ओमक किसीके घरमें चोरी करने घुसा था सो कोतवालने उसे पकड़ लिया, परन्तु सेठके लिहाजके कारण वह महान् चोर होनेपर भी छोड़ दिया गया।

ओमक एक बार फिर धनकी लालसासे किसी अन्यके

मकानमें घुसा तो अबकी बार राजाने ही उसे पकड लिया और वह इसके ऊपर बहुत ही क्रुद्ध हुआ। राजाने तुरन्त ही समुद्रदत्त सेठको बुलाया और उससे कहा—"सेठ जी, देखो, आज मैंने ही स्वय आपके लडकेको चोरी करते हुए पकड़ा है। यह अनेको बार इस प्रकार चोरी करते हुए पकडा गया है; परन्तु मैंने आपके लिहाजके कारण ही इसे छोड दिया। अब आप अपने लडकेको समझा दीजिए कि वह आगे चोरी न करे। यदि वह फ़िरसे चोरी करता हुआ पकडा गया तो आप ध्यान रखिए, मै इसे अवश्य मरवा डालूगा।"

राजाकी यह चेतावनी सुनकर सेठको ओमकके ऊपर बड़ा ही क्रोध आया और उसने तत्काल ही इस कुल-दूषणको उज्जयिनीसे निकाल दिया।

एक दिन वह कुछ व्यापारी-पुत्रोके साथ अपनी बहिन जिनदत्ताके यहाँ जा पहुँचा। जिनदत्ताने इन व्यापारी-पुत्रोका तो भोजन और वस्त्र आदिसे खूब ही सत्कार किया, परन्तु ओमककी खबर तक न ली। इस कारण ओमकको अपने मनमे बडा ही खेद हुआ और वह तुरन्त ही मुनिगुप्त मुनिराजके निकट जा पहुँचा।

ओमकने मुनिराजको भक्ति पूर्वक नमस्कार किया और श्रद्धाके साथ धर्मका उपदेश सुना तथा उसने मुनिराजके निकट बड़ी ही विनयके साथ प्रतिज्ञा की कि मुझे जिस फलका नाम मालम न होगा, मै उस फलको कभी न खाऊँगा, भले ही वह फल चाहे जितना सुन्दर हो।

जब जिनदत्ताको मालूम हुआ कि उसका भाई ओमक मुनिराजके दर्शन करने गया है और उनके निकट उसने सम्यग्दर्शनको प्राप्त किया है तो जिनदत्तान एक आदमीको अपने

भाईके पास भेजा और उसके द्वारा यह समाचार भिजवाया कि हे भैया, तुमने मुनिराजके निकट जो निर्मल सम्यक्त्वका लाभ लिया है और अज्ञातफल न खानेका नियम लिया सो तुमने यह बहुत ही उत्तम कार्य किया है। अब तुम तुरन्त ही मेरे पास चले आओ।

जब जिनदत्ताके द्वारा भेजा गया आदमी ओमकके पास पहुँचा और उसने जिनदत्ताका समस्त सन्देश कह सुनाया तो ओमकने मुनिराजको नमस्कार किया और वह बहिनके पास चल दिया। ज्यो ही जिनदत्ताने अपने भाईको आया हुआ देखा, वह तुरन्त ही उठ बैठी और बडे ही स्नेहके साथ उससे कुशल प्रश्न पूछने लगी। तदनन्तर जिनेन्द्रभक्त जिनदत्ताने इसे बहुत मधुर भोजन कराया, सुन्दर वस्त्र दिये, धन दिया और इसका खूब ही सम्मान किया।

इधर व्यापारियोके उन पुत्रोंने कौशाम्बी नगरीमे खूब ही व्यापार किया और इसके पश्चात् वे बड़ी ही प्रसन्नताके साथ वहांसे चल पडे। ओमक भी इन लोगोके साथ ही चल दिया। चलते चलते इन लोगोंने राजमार्ग छोड दिया और एक पगडण्डी पकड़ ली। फलत. वे मार्ग भूलकर एक वीहड़ वनमे जा पहुँचे और इधर उधर भटकने लगे। इस प्रकार भटकते हुए इन लोगोंको वडे जोरकी भूख लग आई। वे आहारकी तलाश करने लगे और उन्हे उस वनमें एक फला हुआ सुन्दर धतूरेका वृक्ष दिखलाई दिया, इसके फलोंकी सुगन्ध समस्त दिशाओमें व्याप्त हो रही थी। जिस वृक्षको देखते ही मूढ़ व्यापारी-पुत्रोंने, जो भूख और प्याससे एकदम व्याकुल हो रहे थे, इसके मनोहर फल उठा लिए और अपनी भूख शान्त करनेके लिए उन्हे उदरस्थ कर गये। परिणाम यह हुआ कि वे सबके सब मूर्च्छित होगये। ओमकने अज्ञातफल न खानेका नियम लिया था सो वह अपने मनके ऊपर संयम रखनेके कारण नही मरा।

तदनन्तर एक देवीने वृद्धाका रूप धारण करके ओमकके व्रतकी परीक्षा करनी चाही । सो ज्यो ही उसने ओमकको अकेला जीवित देखा, वह ओमकसे कहने लगी—पुत्र, जब तुम्हे खूब जोरकी भूख और प्यास सता रही है और इस वनमें भोजनका कोई अन्य प्रबन्ध भी नही है तो इन फलोको तुमने क्यो नही खाया ?

"माता, मैने मुनिराजके निकट यह व्रत लिया है कि मै कभी भी अज्ञात फलोका भक्षण नही करूँगा । इसलिए मैने अपने इस व्रतको खण्डित करना उचित नही समझा—ओमकने उत्तर दिया ।

जब देवीने यह बात सुनी और उसे अपने व्रतके प्रति इस प्रकार दृढप्रतिज्ञ पाया तो उसे बडी ही प्रसन्नता हुई और उसने अपना रूप प्रकट कर दिया । तत्पश्चात् वह ओमकसे कहने लगी—पुत्र, मै इस समय तुम्हारे ऊपर खूब ही प्रसन्न हूँ । तुम मनवाछित वर माग सकते हो ।

जब ओमकने देवीकी यह बात सुनी तो वह देवीसे कहने लगा—देवि, तुम हमारे इन समस्त मित्रोको जीवित कर दो ।

देवीने ओमककी यह बात सुनकर समस्त व्यापारीपुत्रोको चैतन्य करदिया । इसके पश्चात् देवी ओमकसे कहने लगी—पुत्र, मेरा हृदय खूब ही सतुष्ट है । सो अब जब तुम उज्जयिनी पहुँच जाओगे, तब मै फिरसे तुम्हारा सम्मान करूँगी । देवीने उन व्यापारीपुत्रोको उज्जयिनीका मार्ग दिखला दिया और वह जल्दीसे अपने स्थानको चली गई ।

इस घटनासे समस्त व्यापारीपुत्र बडे ही प्रसन्न हुए । वे ओमकके साथ वहाँसे चल पड़े और उज्जयिनी नगरीमे आ गये ।

जब देवीको मालूम हो गया कि ओमक कुमार उज्जयिनी नगरीमें पहुँच चुका है, तो वह बड़ी ही प्रसन्नताके साथ ओमक-

के पास आयी । उसने आते ही राजा तथा जनताकी उपस्थिति-मे लोगोंके मनको विस्मयमे डालने वाली पूजासे ओमक कुमार-की खूब ही पूजा की । उस समय देवीने ओमक कुमारको ऊपर पांच वर्णके मणियोकी, जो अपने प्रभा-पुञ्जसे सूर्यकी प्रभाको भी तिरस्कृत कर रहे थे, वृष्टि की । इसके सिवाय आकाशसे पुष्प वृष्टि आदि अन्य अतिशय भी हुए । तथा आकाशमे स्थित देवोने ओमकके दृढ़ व्रतित्वकी खूब ही प्रशसा की ।

जब राजा तथा जनताने इस देवकृत अतिशयको देखा तो उन्होंने भी ओमक कुमारकी महान् वैभव तथा श्रद्धासे पूजा की।

नरपाल आदिको इस घटनासे बड़ा ही वैराग्य हुआ। उन्होंने अपना राज्य अपने पुत्रोको दे दिया और वे धरसेन आचार्यके निकट दीक्षा लेकर साधु हो गये ।

ओमक आदिको भी इस धार्मिक प्रभावनासे बडी प्रसन्नता हुई तथा बहुतसे व्यक्तियोने सम्यक्त्व और जैनधर्मका लाभ लिया और सच्चे श्रावक बन गये ।

इस प्रकार अर्हद्दास सेठकी पत्नी कनकलता उससे कहने लगी—श्रेष्ठिन्, ओमकको देवी द्वारा इस प्रकार पूजित होते देखकर मेरा सम्यक्त्व सुदृढ़ हुआ है ।"

इस प्रकार अज्ञात फल भक्षणके परित्यागसे दृढ सम्यक्त्वी तथा
देवता द्वारा पूजित ओमकके दर्शनसे कनक लताके
सुदृढ सम्यक्त्वको बतलाने वाला यह
सातवा कथानक सम्पूर्ण हुआ ।

—०—

७० विद्युल्लता आदिकी कथा

तदनन्तर सेठ अर्हद्दास अपनी सातवी पत्नी विद्युल्लतासे पूछने लगे–प्रिये, अब तुम बतलाओ कि तुम्हारे सम्यक्त्वमें किस प्रकारसे दृढता आई ? यह कहकर सेठका मन विद्यु-ल्लताका कथानक सुननेके लिए उत्सुक हो उठा। वह कहने लगी–

"अपने इस समृद्ध देशमे एक मनोरम सूर्य कौशाम्बी नामकी नगरी है।इस नगरीमे एक शकट नामका राजा रहता था। इसकी पत्नीका नाम विजया था। विजया इस राजाकी महादेवी थी और वह बहुत ही प्रसिद्ध थी। इसी नगरीमे एक सेठ रहता था, जिसका नाम शूरदेव था।

एक बार शूरदेव कलिङ्ग देशसे एक जात्यश्व नामक महान् घोड़ा लाया, जो मनके समान बेगवान था। शूरदेवने यह घोडा शकट महाराजको भेट किया और इसके उपलक्ष्यमे शकटने इसे बहुतसा धन दिया। शूरदेव भी राजाके इस असीम धनको प्राप्त करके महान् धनाढ्य बन गया और आनन्दके साथ अपना जीवन बिताने लगा।

एक दिनकी बात है। एक महीनेका उपवास किये हुए श्रीषेण नामके मुनिराज गृह पक्तिके क्रमसे चर्या करते हुए शूरदेवके घर पधारे और ज्यो ही शूरदेवने मुनिराजको अपने घरकी ओर आते हुए देखा, वह तुरन्त ही उठ खड़ा हुआ और उनको पडगाह लिया। तत्पश्चात् उसने मुनिराजको पवित्र और उच्चासनपर बिठलाया,चरण-प्रक्षालन किया, उनकी पूजा की, नमस्कार किया और मन शुद्धि, बचन शुद्धि और काय शुद्धि की तथा आहार शुद्धि पूर्वक शूरदेवने उन योगीको बड़ी ही भक्तिके साथ आहारदान दिया। मुनिराजको आहार देनेके पश्चात् ही शूरदेवके यहाँ पञ्चाश्चर्य हुए। ठीक है, सच्चे मुनिराजकी भक्तिसे क्या नही होता है ?

इस नगरीमें एक सागर नामका अन्य सेठ रहता था। इसकी पत्नीका नाम श्रीदत्ता था। इन दोनोंके एक समुद्रदत्त नामका पुत्र था। समुद्रदत्त अत्यन्त दरिद्र था। सो जब उसने शूर-देवके घरमे धनकी वृष्टि आदि पंचाश्चर्य देखे तो वह अपने मनमें सोचने लगा—मै भी कलिङ्गदेशमें जाकर जात्यश्व ले आऊँ और इस प्रकारकी सुखद तथा असीम विभूतिको प्राप्त करूँ। यह सोच कर वह अपने समवयस्क वणिक् पुत्रोके साथ धनकी इच्छासे देशान्तरके लिए चल पडा। तत्पश्चात् धनराशिके इच्छुक उन सबने एक स्थानपर मिल कर बड़े ही सतोषके साथ यह निश्चय किया कि हम सब लोग बडे ही आनन्दके साथ अपना क्रय-विक्रय समाप्त करके पलाश नामक गावमे एकत्रित हो जावेगे। यह निश्चय करके वे एक दूसरेसे अलग होकर धनकी चिन्तामे अपनी-अपनी दिशामे चले गये।

समुद्रदत्त एक समृद्ध गाँवमे ठहर गया। इस गावमें एक अशोक नामका गृहस्थ रहता था, जो बडा ही धनाढ्य था और उसके पास अपार गोधन था। अशोकको अपने घोडोकी परिचर्याके लिए एक आदमीकी आवश्यकता थी। सो जब समुद्रदत्तको यह समाचार मालूम हुआ तो वह अशोकके पास जा पहुंचा। अशोकने उससे पूछा-भद्र, तुम मेरे पास किस लिए आये हो?

समुद्रदत्त कहने लगा—मुझे पैसेकी आवश्यकता है और मुझे मालूम हुआ है कि आपको एक आदमीकी आवश्यकता है। सो यदि आपकी इच्छा हो तो मैं आपके यहां कार्य करनेको तैयार हूँ।

समुद्रदत्तकी बात सुन कर अशोक उससे कहने लगा—भद्र; अच्छी बात है। तुम हमारे यहाँ काम करने लगो, परन्तु तीन वर्ष व्यतीत होनेपर ही मैं प्रधान घोड़ोंको तुम्हारे अधीन करूँगा।

समुद्रदत्तने अशोककी यह बात मंजूर कर ली और वह उसके आज्ञानुसार ही घोडोंको देख भाल करने लगा। प्रभातके समय वह घोडोको जल और घास वाले वनमे ले जाता और दिन भर प्रसन्नताके साथ उनकी देख भाल करता तथा सन्ध्याके समय वह अनेक प्रकारके पके हुए फल तथा कोमल एवं सुगन्धित फूलोको लेकर वनसे लौटता और उन्हे गृहपतिकी कन्या कमलश्रीकी भेट किया करता। इस प्रकार कालक्रमके अनुसार फलोंकी भेट तथा मधुर सभाषणसे कमलश्री और समुद्रदत्त-दोनोंमें प्रगाढ मैत्री हो गई।

एक बार अशोककी कन्या कमलश्रीने अपने मनमे सोचा कि यदि मेरा विवाह हुआ तो वह समुद्रदत्तके साथ ही होगा, अन्य मनुष्यके साथ नही हो सकता।

एक दिनकी बात है। समुद्रदत्तने बडे ही स्नेहिल मनसे कमलश्रीसे कहा–प्रिये, अब तो मै अपनी जननीके समान प्रिय जन्म भूमिको लौटना चाहता हूँ। समुद्रदत्तकी बात सुन कर कमलश्रीने कहा प्रियतम, मैं भी तुम्हारे साथ चलनेको तैयार हूँ, हमारी अश्वशालामे दो जात्यश्व बधे हुए है, सो उन्हे मेरी सम्मतिसे ले लो ओर फिर यहाँसे प्रस्थान करो।

कमलश्रीकी बात सुनकर समुद्रदत्त अश्वशालामे गया और उसने समस्त घोडे लाकर कमलश्रीके सामने करदिए और उससे पूछने लगा–प्रिये, बतलाओ, इनमें प्रधान अश्व कौन है जिन्हे मै ले लूँ।

समुद्रदत्तकी बात सुनकर कमलश्री उसके प्रेममे अनुरक्त होकर घोडोकी ओर सकेत करके कहने लगी–प्रियवर, इन घोडोमे ये ही घोडे श्रेष्ठ है और मनके समान तीव्र वेगवाले है। इनमेंसे एक वडे ही वेगके साथ आकाशमे उडता है और दूसरा जलके ऊपर दौडता है। ये दोनो ही घोड़े बहुमूल्य और मनोहर है। तुम इन दोनोको ही ले लो।

समुद्रदत्तने पुन: कमलश्रीसे पूछा—हे मनस्विनि, तुम यह बतलाओ कि ये घोड़े किस प्रकार सर्वोत्तम हैं और इनकी क्या पहिचान है ?

कमलश्रीने समुद्रदत्तका आशय समझ लिया और वह उत्तरमें कहने लगी—प्रियवर, एक तो बगुलाके समान सफेद है और दूसरा लाल है; परन्तु उसके नेत्र सफेद है। जो घोडा सीधा हो, उदासीन हो, जिसके कान स्थिर हों, शरीर उत्तम हो, और जो वर्णसे सफेद हो, वही आकाशगामी जात्यश्व है और यही घोड़ोका नायक है। इसके विपरीत जिसके कान वहुत चचल हों और जो सोता हुआ दिखलाई दे तथा वर्णसे जो लाल हो वह जलगामी जात्यश्व है। तुम इन दोनो ही सुन्दर जात्यश्वोंको ले लो।

जब इस प्रकार कमलश्रीन समुद्रदत्तके लिए इन जात्यश्व घोडोकी पहिचान करा दी और समुद्रदत्तने इन्हे अच्छी तरह पहिचान लिया तो उसका मन कमलश्रीके गुणोंके प्रति पहलेसे भी अधिक आकर्षित हो गया और वह कमलश्रीसे कहने लगा-प्रिये, मैंने तुम्हारे उपदेशसे इन सर्वोत्तम घोड़ोंको पहिचान लिया है। अब तुम जो सलाह दो मै उसका पालन करनेके लिए तैयार हूँ। इस समय इन दोनो प्रेमियोंने अपने अपने मनकी वात प्रकट की और फिर दोनो ही चुप रह कर पूर्ववत् अपने दिन बिताने लगे।

इसके वाद समुद्रदत्तके साथी वे समस्त व्यापारीपुत्र इधर उधर घूमकर सवके समागमकी प्रतीक्षा करते हुए पलाशग्राममें आ पहुँचे। तव तक समुद्रदत्तको काम करते हुए भी तीन वरस हो चुके थे। अत: वह अपने स्वामी अशोकसे कहने लगा—स्वामिन्! अव तो मै अपनी मातृस्वरूपा जन्मभूमिको लौटना चाहता हूँ। और अव वहीपर अपना सव कारबार करूँगा।

अशोकने ज्यों ही समुद्रदत्तकी यह बात सुनी, उसका चित्त स्नेहसे गद्‌गद हो उठा और आँखोसे आँसू गिरने लगे। फिर वह सम्हल कर समुद्रदत्तसे कहने लगा—वत्स, तुम जा तो रहे ही हो। अब तुम अश्वशालामेसे समस्त लक्षणोसे सम्पन्न, अत्यन्त सुन्दर, तथा तुम्हारे मन और नेत्रोको जो अच्छे मालूम दें वे दो घोडे अपने लिए ले लो।

समुद्रदत्तने अश्वपति अशोककी यह बात सुनी तो वह कहने लगा—स्वामिन्! आप तो मुझे उन लाल और सफेद दो घोडोंमें से ही कोई एक घोडा दे दीजिए।

अशोकने जब समुद्रदत्तकी यह चातुर्यपूर्ण बात सुनी तो वह कहने लगा—वत्स, ये दोनों ही घोड़े दुष्ट हैं और बहुत ही दूर तक उछलते कूदते हैं। इनका वश अच्छा नही हैं। ये आलसी हैं। बहुत ही बुरी तरहसे हिनहिनाते हैं देशान्तरमे पहुँचकर इनका बहुत ही कम मूल्य उठेगा। इसलिए तुम इन घोडोंकी मांग न करो और अश्व समूहमेंसे अन्य जो घोडे तुम्हें सुन्दर, बहुमूल्य और मधुरभाषी मालूम पडे उनमेंसे किन्ही दोको ले लो।

चतुर समुद्रदत्तने अशोककी यह बात सुनकर कहा—स्वामिन्, मैं उन पूर्वोक्त घोडोंको छोड़कर और कोई घोडा नही लेना चाहता। मेरा निश्चय है।

ज्यों ही अशोकने परदेशीका यह निश्चय देखा, वह तुरन्त ही अपने घर आया और अपने समस्त स्वजनोसे पूछने लगा—यह बतलाओ, इस परदेशीको घोडोकी परीक्षाकी पद्धति किसने बतलाई है? अशोकने अपने सभी स्वजनोसे इस प्रश्नको बार-बार पूछा; परन्तु जब किसीने भी उसके इस प्रश्नका उत्तर नही दिया तो वह एक दूसरेके मुखके देखनेसे समझ गया कि निश्चयस मेरी पुत्री कमलश्रीने ही इस विदेशीको

यह पद्धति बतलाई है। जब अशोकको इस बातका निश्चय हुआ तो उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा।

उसने समुद्रदत्ताको बुलाया और उसे वह घोड़ा तथा अपनी कन्या कमलश्री देनेका बचन दे दिया। तदनन्तर उसने सुन्दर दिन, शुभ योग, शुभ नक्षत्र और शुभ मुहूर्तमे कमलश्री और समुद्रदत्तका विधिवत् पाणिग्रहण सस्कार सम्पन्न कर दिया।

विवाहके इस माङ्गलिक अवसरपर अशोकने समुद्रदत्त-को बहुत सा धन दिया और वे दोनों घोड़े भी दिये। इसके पश्चात् उसने दोनोको आनन्दके साथ विदा कर दिया।

समुद्रदत्त अपनी पत्नी तथा दोनों घोडोको लेकर वणिक-पुत्रोंके साथ जा मिला और जब सबके साथ वह नदी पार करनेके लिए नावपर चढनेको तैयार हुआ तथा स्वयं जल-गामी जात्यश्वपर सवार होकर चलने लगा तो धूर्त नाविक-के मनमे कुटिलता उत्पन्न हुई और वह समुद्रदत्तसे कहने लगा—यदि तुम इन घोडोंमेसे मुझे एक सुन्दर घोड़ा दो तो मैं तुम्हे नदीपार ले जा सकता हूं, अन्यथा नही।

जब समुद्रदत्ताने नाविककी यह बात सुनी तो वह नाविक-से कहने लगा—नाविक, हमारी जो तुमसे पहले बात हो चुकी है, मै तुम्हे उतनी ही मजदूरी दूगा।

जब नाविकने समुद्रदत्तकी यह बात सुनी तो वह कहने लगा—महाशय ! यदि आप मुझे घोड़ा नहीं देना चाहते है तो आप इसी क्षण मेरी नावसे उतर जाइए।

नाविककी बात सुनकर समुद्रदत्त कहने लगा—अच्छी बात नाविक, मै अभी तुम्हारी नावसे उतर जाता हू। परन्तु तुम्हें घोडा नही दे सकता। इस प्रकार कहकर समुद्रदत्त तुरन्त ही नौकासे उतर पड़ा। अब उसने जलगामी घोड़की लगाम अपने हाथमे ली और आकाशगामी घोड़े पर वे दोनों

सवार हुए और इस प्रकार शीघ्र ही अपनी सूर्यकौशम्वी नगरमे आ पहुचे। वहां पहुचनेपर समुद्रदत्तने जलगामी घोडा तो कमलश्रीको सौंपा और आकाशगामी घोडेपर स्वयं सवार हो कर वह शकट राजाके पास जा पहुंचा।

शकट राजाने जब इस घोडेको जात्यश्व पाया तो वह समुद्रदत्तसे बडे ही स्नेहके साथ मिला। उसने उसे अपने शरीरके सब आभूषण दिये, अनङ्गसेना दी, सतखण्डा महल दिया और आधा राज्य देकर उसके पाससे वह जात्यश्व ले लिया। तथा इस घोडेको पालित-पोषित करनेके लिए महात्मा ऋषभसेन श्रावकको सौंप दिया।

ऋषभसेन बडी सावधानीके साथ अपने ही हाथसे इस घोडेको ले गया और उसे अपने तलघरेमे बाध दिया।

सेठ ऋषभसेन पर्वके दिन उस सुन्दर अश्वपर सवार होकर विजयार्ध गिरिपर जाता और वहाके चैत्यालयोकी वन्दना करता। वह इस पर्वतपर स्थित सिद्धकूट चैत्यालयके निकट उस घोडेसे उतर पड़ता और फिर मन्दिरकी प्रदक्षिणा दे कर उसके अन्दर विराजमान जिनप्रतिमा की स्तुति करता। घोड़ा भी बड़ी ही विनय और शान्तभावसे मन्दिरके प्राङ्गणमें खडा रहता। सेठ ऋषभसेन पूर्ववत् जिनस्तुति करता और फिरसे उस जात्यश्वपर सवार होकर सूर्यकौशाम्वी आ जाता।

एक दिनकी बात है—सूर्य कौशाम्बीमे एक विशाल मुनि-संघके साथ जिनदत्त आचार्य पधारे। जब ऋषभसेनको यह शुभ समाचार मिला तो वह बडी ही भक्तिके साथ मुनि-सघ की वन्दना करनेके लिए तैयार हुआ। वह अपने आकाश-गामी घोडेपर सवार हुआ और तुरन्त ही मन्दिरके निकट जा पहुँचा। ऋषभसेनने घोडेको बाहर बांध दिया और आप स्वयं मन्दिरके अन्दर मुनि-सघके दर्शन करने चला। पहले सेठने जिनमन्दिरकी तीन प्रदक्षिणाएं दी और फिर भीतर

जा कर जिनेन्द्र भगवान्की तथा मुनि-सघकी भक्ति पूर्वक स्तुति की । तत्पश्चात् सेठ ऋषभसेन अपने घोडेपर सवार हो बातकी बातमे अपने घर आ पहुचा ।

एक दूसरे दिनकी बात है—शकट राजाके पड़ौसके एक बलवान् जितशत्रु नामक राजाने सभा-भवनमें हाथ जोडे खडे हुए सभासदोंसे कहा—सभासदो, सूर्यकौशम्बी नगरीमें शकट राजाके एक जात्यश्व जातिका घोडा है, जो आकाशमे उडता है और ऋषभसेन सेठके घर बधा रहता है। सो आप लोगों मे से जो कोई उस गगन विहारी और मनके समान तीव्र वेग-वान घोडेको ला सके और मुझे दे सके मै उसे बहुत ही धन दूंगा ।

जितशत्रु महाराजकी यह बात सुन कर एक सहस्त्रभट नामका सुभट बड़ी ही विनयके साथ राजासे निवेदन करने लगा—राजन्, आप आज्ञा दे तो मै सूर्यके रथका घोडा भी ला सकता हूँ। पृथ्वीपर का घोडा आपकी सेवामे हाजिर करना तो मेरे लिए कोई कठिन नही है ।

सहस्त्रभट इतना कह कर राजा जितशत्रुके निकटसे चल दिया । उसने क्षुल्लक का वेष बनाया और वह सूर्यकौशाम्बी मे जा पहुचा ।

ज्यों ही सेठ ऋषभसेनने इस क्षुल्लकको देखा, उसने धर्म-वात्सल्यके कारण उसे इच्छाकार की और उसे अपने चैत्यालयमे ठहरा दिया । वहॉ इस दुष्ट बुद्धिने बहाना बनाया कि उसकी ऑखें दुखने लगी है, सो वह दिनरात रोता-चिल्लाता हुआ पडा रहने लगा । कतिपय सत्यभाषी सज्जनोंने सेठ ऋषभसेनसे कहा—सेठजी, यह क्षुल्लक धर्मका ढोंग रच रहा है । वस्तुत यह बड़ा ही धूर्त है । परन्तु धर्म-प्रेमी सेठने यह सब सुनते-समझते हुए भी उसे अपने घरमे ही बना रहने दिया। और एक बार जब इस धर्तने सेठसे जात्यश्व

घोडेको दिखलानेके लिए कहा तो सेठने उसे वह सुन्दर घोडा भी दिखला दिया ।

जब इस चोरने जात्यश्व घोडेको देखा तो वह बहुत ही नम्र बन कर सेठसे कहने लगा–श्रेष्ठिन्, यदि आप आज्ञा दें तो मैं ही अब इसकी सावधानीके साथ देख-भाल किया करूँ।

सेठने जब इस क्षुल्लककी बात सुनी तो वह कहने लगा– अच्छी बात है । क्षुल्लक महाराज, आप ही इसकी आजसे देख-भाल कीजिए। इतना कह कर उसने क्षुल्लकको वह घोडा सौंप दिया और वह उसकी रक्षा करने लगा ।

एक रात यह क्षुल्लक वेषधारी सहस्रभट इस घोड़ेको लेकर सूर्यकौशाम्बीसे चल पडा । परन्तु ज्यो ही यह घोडा वेगके साथ आकाशमे उडने लगा, उसने सहस्रभटको एक बहुत ही भयंकर स्थानमे गिरा दिया जिससे उसकी तत्काल ही मृत्यु हो गयी ।

इधर घोडा विजयार्धगिरिके सिद्धकूट चैत्यालयमे जा पहुचा । उसने वडी ही भक्तिके साथ इस चैत्यालयकी तीन प्रदक्षिणाए दी और आकर उसके प्राङ्गणमे ठहर गया ।

उस समय इस चैत्यालयमे चित्रगति और मनोगति नाम के दो चारण मुनि ठहरे हुए थे । सो ज्यो ही एक विद्याधरने सिद्धकूट चैत्यालयके प्राङ्गणमे खडे हुए इस घोडेको देखा, उसका मन एकदम विस्मयसे भर गया और वह दिव्यज्ञानी चित्रगुप्त निराजसे पूछने लगा–भगवन् ! आप मुझे यह बत-लाइए कि उतुङ्ग चैत्यालयके प्राङ्गणमें यह किसका घोडा खडा हुआ है ?

जब दिव्यज्ञान रूपी नेत्रधारी मुनिराजने विद्याधरके चित्त-को अत्यन्त आश्चर्यान्वित पाया और उसकी यह बात सुनी तो वे उससे कहने लगे-वत्स! सूर्यकौशाम्बी नगरीमें शकट नाम-का राजा रहता है । गगनविहारी जात्यश्व घोड़ा उसीका है।

राजाने इसे ऋषभसेन सेठके यहाँ छोड रक्खा है। परन्तु जितशत्रु राजाकी इस पर नजर लग गयी सो उसकी अनुमतिके अनुसार सहस्रभट नामका सुभट उसे छल पूर्वक वहाँसे उड़ा लाया और ज्यों ही वह इसपर सवार होकर आकाश मार्गसे जाने लगा त्यो ही घोड़ेने छलाग लेकर उसे गिरा दिया और वह मर गया। मुनिराज कहने लगे–हे विद्याधर, पहले यह इस सिद्धकूट चैत्यालयमे ऋषभसेन सेठके साथ आया था, सो अब भी वह स्थिर चित्तके साथ यहाँ आ खडा हुआ है। तुम इस समय तीनवार इस गगनविहारी घोड़ेको गलेमे सहलाओ। चारण मुनिराजकी बात सुनकर विद्याधरने तीन वार हाथसे घोड़ेके स्कन्ध प्रदेशको सहलाया और इसके पश्चात् वह इस घोडेपर सवार हो गया। घोडेने बडे ही वेगके साथ उसे सूर्यकौशाम्बी नगरीमे ला रक्खा।

जब सेठ ऋषभसेनको मालूम पडा कि उसका गगनविहारी घोडा उस मायावी दुरात्माने हरण कर लिया है, तो वह अपने उद्यानके चैत्यालयमे दो प्रकारके प्रत्याख्यानको ले कर कायोत्सर्ग करने लगा।

इस बीच जब राजाको खबर लगी कि किसी धूर्तने सेठके यहांसे जात्यश्वको उड़ा दिया है तो वह इस असावधान और अपराधी सेठके प्रति बहुत ही क्रुद्ध हुआ। वह दसों दिशाओंको कपित करने वाली गंभीर ध्वनिसे अपने निकटवर्ती मनुष्योंसे कहने लगा–रे मनुष्यो, तुम लोग अभी जा कर उस दुराचारी और प्रमादी ऋषभसेन सेठको मार डालो और उसकी समस्त धन-सम्पत्ति छीन कर मेरे पास ले आओ।

इस प्रकार राजाज्ञा पा कर ज्यों ही ये राज-पुरुष सेठ ऋषभसेनके निकट पहुंचे तब तक देवताने उन सबको जिन-मन्दिरमे ही स्तभित कर दिया। इतनेमे वह जात्यश्व भी वहाँ

आ पहुँचा। उसने चैत्यालय की तीन प्रदक्षिणाए की और बडी ही विनयके साथ अपना मस्तक झुकाये हुए वह सेठके पास जा खडा हुआ।

यह दृश्य देख कर आकाशमे स्थित देवगण बडे ही आनन्द के साथ कहने लगे—दृढव्रती सेठ धन्य हो, तुम्हारी धार्मिक दृढता धन्य है और तुम्हारी जिनेन्द्र भक्ति भी धन्य है। जैनधर्मका माहात्म्य भी इतना आश्चर्यकारी और लोकातिशायी है जो देवता तक इस प्रकारके उपसर्गोका निवारण किया करते है।

जब ऋषभसेन सेठका उपसर्ग दूर हो गया तो देवताओंके मनमें भी महान् आश्चर्य हुआ और उन लोगोने बडे ही भक्ति भाव और वैभवके साथ सेठकी पूजा की। इस प्रकार जब राजा और पुरवासी जनताने देखा कि ऋषभसेन सेठकी देव तक महत् श्रद्धा-भक्तिके साथ पूजन कर रहे है तो इन लोगोके मनमे भी बडा विस्मय और आनन्द हुआ तथा सब ही ने मिलकर सेठसे क्षमा याचना की।

इसके बाद राजाने, सेठने, मन्त्रीने और बहुतसे नगर निवासियोने भी शुद्ध हृदय हो कर जिनदत्त मुनिराजके निकट दीक्षा ले ली।

गुणवान् सेठकी इस आश्चर्य पूर्ण घटनाको देख कर समुद्रदत्तने कमलश्रीके साथ तथा अन्य बहुतसे नगर निवासियोने विस्मित मनके साथ जैनधर्म तथा सम्यक्त्वका लाभ लिया और सच्चे श्रावक बन गये।

इस घटनाको सुनते सुनते अर्हद्दास सेठका मन आश्चर्यसे परिपूर्ण होता जा रहा था, सो विद्युल्लताने जिनेन्द्र भगवानके चरण-कमलके प्रति भ्रमर स्वरूप और पत्नियोसे घिरे हुए सेठसे कहा—श्रेष्ठिन्, देवताओके द्वारा किये गये इस आश्चर्यपूर्ण दृश्यको देख कर ही मेरा सम्यक्त्व सुदृढ़ हुआ है।

अर्हद्दासने विद्युल्लताके इस सुन्दर कथानकको सुना और सुन कर कमलके समान सुन्दर नेत्रवाली तथा विनयशील अपनी स्त्रियोंसे वह कहने लगा–प्रियाओं ! आप लोगोने बहुत ही उत्तम घटना सुनी देखी और कही तथा हम लोगोने भी उसे सम्पूर्ण विश्वासके साथ सुना। इसके सिवाय हम लोगोको यह श्रद्धा है कि यह घटना इस प्रकारकी ही होगी और उसका प्रत्यय भी है। तथा यह घटना हमे रुचिकर है।

जब अर्हद्दासकी अन्तिम पत्नी कुन्दलताने अर्हद्दासकी यह बात सुनी तो उसका मन बडा ही आश्चर्यन्वित हुआ और वह विद्युल्लतासे कहने लगी–बालिके, तुमने जो सेठको आश्चर्य पूर्ण कथानक सुनाया है सो उसे न तो तुमने ही सच्चा-सच्चा सुनाया है और न मैंने ही उसे ठीकसे सुना है। इसके सिवाय तुम्हारे इस कथानकपर न तो मुझे जरा भी श्रद्धा है, और न प्रत्यय ही। और न मुझे यह घटना जरा भी रुचिकर मालूम, हुई तथा मेरे अनुभवमें तो यह बिलकुल ही नही आ रही हैं। कुन्दलता कहती गयी–और इस व्याकुल चित्त सेठके वृत्तान्तको सुनकर न मेरा सम्यक्त्व ही दृढ़ हुआ है और न मेरी बुद्धि ही धर्मम‍े स्थिर हुई है।

जब वृक्षके नीचे बैठे हुए राजा और मन्त्रीने तथा वृक्ष पर चढ़े हुए चोरने कुन्दलताकी यह बात सुनी तो उनके मनमे बड़ा ही विस्मय हुआ और राजाने सोचा–"मै प्रभात होते ही सेठकी इस पत्नी कुन्दलताको अवश्य ही अपने हाथसे दण्ड दूगा। यह बड़ी ही दुष्ट स्त्री है। इसके सिवाय सेठकी उन अन्य पत्नियोकी, जिनका चित्त इस घटनाको सुन कर विस्मित हुआ, मै महान् वैभवके साथ खूब ही भक्ति और सम्मान करूगा।

राजाने बहुत देर तक इस प्रकार अपने मनमें विचार किया और प्रभात होते ही वह वृक्षसे निकल कर शीघ्र ही अपने नगर मे चला आया। इसके पश्चात् वह सेठके घर पहुँचा और रात

के आख्यान तथा उपवासकी कठिनाईको उससे पूछने लगा। इसके सिवाय वार्तालापके प्रसङ्गमें राजाने सेठके सामने ही उसकी पत्नियोंसे भी पूछा कि आप लोग कृपया यह बतलाइये कि जब आप बडे ही स्नेह तथा धर्म बुद्धिके साथ अपने अपने आख्यान सुना रही थी तो आप लोगोमेंसे वह कौन महाशया थी जो यह कह रही थी कि–"इस घटनाको न तो तुमने अच्छी तरह दे ा है और न अच्छी तरहसे कहा ही है। यह घटना असम्बद्ध है सो मैंने इसे अच्छी तरहसे सुना भी नही है। और न मुझे इस घटनाके बारेमें कुछ भी श्रद्धा है और न प्रत्यय ही।" और जो यह भी कह रही थी कि मुझे तुम्हारा यह कथानक बिलकुल ही रुचिकर नही लगा है और अनुभवमें तो कुछ भी नही उतर रहा है। सो देवियो, आप यह सब मुझे सक्षेप में बतलाइए कि यह बात क्या वह जान बूझकर कह रही थी अथवा अनजान में ?"

जब कुन्दलताने राजाकी यह बात सुनी तो वह राजासे कहने लगी–महाराज, रातमे मैंने वह बात उक्त आख्यानोको केवल आख्यान समझ कर ही कही थी।

कुन्दलताकी बात सुनकर राजा, मन्त्री और चोर तीनो ही विस्मित मनके साथ उससे कहने लगे–देवि, शूली पर चढाये गयेके कथानकको तो हम लोगोने अपनी आँखसे देखा है, सुना है और उसका हम सबको प्रत्यक्ष अनुभव भी है। फिर तुम किस प्रकार कह रही थी कि न यह कथानक ठीक तरहसे देखा गया है, न ठीक तरहसे सुना गया है और न ठीक तरहसे कहा ही गया है। और न मेरी इस पर कुछ श्रद्धा है न प्रत्यय है। तथा न यह बात मुझे कुछ भी रुचिकर है और न मेरे अनुभव मे ही आ रही है ?

जब राजा, मन्त्री और चोर इतना कह कर रुक गये तो कुन्दलताने कहा–राजन्, ये सबकी सब जिनधर्ममें प्रवीण है।

जिनधर्मके माहात्म्यसे परिचित होनेके कारण इनके चित्त भी आश्चर्य पूर्ण है और इसी कारण ये सब अपने-अपने आख्यान सुना रही है, और कोलाहल कर रही है। परन्तु स्वर्ग और मोक्षके देनेवाले जैनधर्मका माहात्म्य तो कर्मको नष्ट करनेवाले तपमे है जिसे वीर लोग भी नही करते। राजन्, मैने केवल इसी प्रयोजनसे रातमे उन आख्यानोके सम्बन्धमें कहा था कि न ये अच्छी तरह देखे गये है, न सुने गये है और न अच्छी तरहसे कहे ही गये है। राजन्, यद्यपि रातमे जैनधर्मके माहात्म्यके सम्बन्धमे काफी विवेचन हुआ है, परन्तु मैने अब तक कुछ भी प्रत्यक्ष अनुभव नही किया था। आज मैने उसका माहात्म्य देखा है अत मैं उसे धारण करके निर्मल तपस्या करूँगी।

कुन्दलताकी बात सुन कर वे तीनो ही बहुत सन्तुष्ट हुए और उससे कहने लगे—भद्रे, तुमने वस्तुत ठीक बात बतलायी है। वस्तुतः तुम ही दृढ सम्यक्त्वी और जिनधर्म परायणा हो; जिसको इतनी प्रशस्त गुणसम्पन्न बुद्धि उत्पन्न हुई।

अन्तमें राजाने इन कुन्दलता आदि समस्त स्त्रियोके चन्द्रकी तरह निर्मल उदार तथा सुन्दर शीलकी खूब ही प्रशंसा की और तत्पश्चात् उदितोदय राजा, सुबुद्धि मन्त्री, अर्हद्दास सेठ और सुवर्णखुर चोरने अपनी अपनी सम्पति अपने-अपने पुत्रोंको दे दी और सबके सब एक दम विरक्त हो कर आचार्य श्रीधरके निकट दीक्षित हो गये।

तदनन्तर उदितोदय महाराजकी महादेवियां और सेठकी मित्रश्री आदि पत्नियां भी ऋषभा आर्यिकाके निकट दीक्षित होकर आर्यिकाएँ हो गयी।

बहुतसे अन्य जन भी इस घटनाको देखकर बडे ही

विस्मित हुए और उन्होंने शुद्ध हृदय हो कर सम्यक्त्व सहित जैनधर्मको अङ्गीकार कर लिया।

इस प्रकार अर्हद्दास सेठकी मित्रश्री आदि
आठ पत्नियोके दृढ सम्यक्त्वको
सूचित करने वाला यह
कथानक पूर्ण हुआ

—o—

७१. बलिके बकरेकी कथा

नासिक नगरकी पश्चिम दिशामें एक कुकुम नामका देश था। यह देश बहुत ही जनाकीर्ण था। इसमे एक पलाश नामका गाँव था। यह गाँव भी धन धान्यसे सम्पन्न था।

इस गाँवके प्रधानका नाम सुदास था, जो बहुत ही धन-सम्पन्न था तथा इसकी पत्नीका नाम सुदासी था। सुदासी बहुत ही सुन्दर थी और सुदासके मन तथा नेत्रोको बड़ी ही प्रिय थी।

इन दोनोके एक वसुदास नामका पुत्र था। यह अपने माता-पिताके मनको वडा ही प्रिय था, बडा ही विनीत, रूपवान और जनप्रिय था।

एक बार सुदासने एक महान् सरोवर बनवाया, जिसमे कमल खिल रहे थे और और चक्रवाक आदि मधुर शब्द कर रहे थे। इस सरोवरके निकट ही उसने एक विशाल नन्दनवन बनवाया, जिसमें अनेक पक्षीगण चहचहाया करते थे और जो अनेक प्रकारके वृक्षोसे मण्डित था।

इस नन्दनवनके बीचमे सुदासने एक गगनतलस्पर्शी और ध्वजासे सुशोभित उन्नत मन्दिर बनवाया और उसमें दुर्गादेवी-की मूर्ति प्रतिष्ठित की, जिसका मुख अत्यन्त विकराल था और ललाटकी भृकुटिया भयंकर थी तथा जो जीवोंका सहार करने वाली मारीके समान मालूम देती थी ।

सुदास प्रति छह महीनेमें अपने हाथसे मारेहुए भैसों और बकरोंसे एक विशाल समूहके साथ दुर्गादेवीकी पूजा किया करता था ।

एक दिनकी बात है । सुदास अचानक बहुत बीमार हो गया और उसे अपने जीवित रहने तककी आशा न रही । उसने एक आदमी भेज कर तुरन्त ही अपने पुत्र वसुदासको बुलवाया । सुदासके प्राण कण्ठगत हो चुके थे और वह चण्डिका-की भक्तिमे सलग्न था । ज्यो ही उसने अपने पुत्र वसुदासको सामने उपस्थित देखा, वह उससे कहने लगा—पुत्र, तुम प्रत्येक वर्षके प्रति छठे महीनेमे भैसे आदिसे अवश्य ही चण्डिकाकी पूजा किया करना ।

सुदासकी बात सुन कर वसुदास भी कहने लगा—अच्छी बात है, पिताजी, मै अवश्य ही भैसे-बकरे आदिसे चण्डिकाकी पूजा किया करूँगा ।

सुदासने इस प्रकारसे जब अपने पुत्रको अपने ही मतके अनुकूल पाया तो उसे बडी प्रसन्नता हुई और वह क्रूरहृदय चण्डीका ध्यान करते करते ही परलोक वासी हो गया । तथा अपने पूर्वजन्मके तीव्र पापके कारण इसी पलाश गाँवमे बकरा हुआ ।

जब यह दीन बकरा छह महीनामे युवा हुआ तो वसुदासने अपने पिताके आज्ञानुसार इसे एक पीसे गये लेपसे मण्डित किया, पुष्प मालाएँ पहिनायी और इसके पश्चात् उसने चण्डिका देवीके पाद-मूल मे इसकी हत्या कर दी । इस बकरेका मास

वसुदासके भोजन गृहमें पहुचा वहाँ वह पकाया गया और वसु-दासने बडे ही सतोषके साथ उसका भक्षण किया। सुदासका जीव इस प्रकार लगातार सात जन्मोमे बकरा हुआ और वसु-दासने उसे अपने मृत पिताकी आज्ञाके अनुसार मार कर देवीकी बलि चढ़ाया और खाया।

कर्मयोगसे वसुदासके पिताका यह जीव फिर आठवे भवमे बकरा हुआ। वसुदासने इस बार भी इसे पीले लेपसे सज्जित किया, और पुष्प मालाएँ पहिना कर बलिके लिए चण्डिका देवीके पास ले जाने लगा। वसुदास इसे ले कर नन्दनवनमे पहुचा कि बकरेको उस उद्यानमे विराजमान एक समाधि-गुप्त नामके विद्वान् मुनिराज दिखलायी दिये। यह मुनिराज एक वृक्षके नीचे शान्त भावसे बैठे हुए थे, सो ज्यो ही बकरेने इन मुनिराजको देखा, उसे जातिस्मरण हो आया। वह मुनि-राजके निकट जा पहुँचा और बहुत ही दीनता पूर्वक उनसे गिड़गिड़ाने लगा—हे महामति भगवन्! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होकर शीघ्र ही मुझे इस बन्धनसे मुक्त करा दीजिए, जिससे मै स्वेच्छापूर्वक पृथ्वीपर विहार कर सकूँ।

जब मुनिराजने बकरेकी यह प्रार्थना सुनी तो वे कहने लगे—भद्र, मै तुम्हें बन्धन-मुक्त करनेके लिए जरा भी समर्थ नही हूँ। तुमने पूर्व जन्ममे जो अशुभ कर्म किये है, पृथ्वीपर ऐसा कोई व्यक्ति नही है जो तुम्हे उनके फल-भोगसे मुक्त करा सके।

जब वसुदासने मुनिराजकी यह बात सुनी तो वह मुनिराजसे कहने लगा—भगवन, आप इस बकरेके साथ क्या बात कर रहे है? क्या मुझे भी बतला सकेगे? इतना कह कर वसुदासका मन मुनिराजका उत्तर सुननेके लिए उत्कण्ठित हो उठा।

मुनिराज भी बहुतसे जन-समूहसे घिरे हुए वसुदाससे

कहने लगे–"वसुदास, यह बकरा, तुम्हारे पिता का जीव है और तुम इसे सात बार मारकर चण्डिका देवीके पाद-मूलमें बलि चढा चुके हो। अब आठवी बार यह फिरसे बकरा ही हुआ है और इस बार भी तुम इसे देवीके पाद मलमें बलि चढाने ले जा रहे हो। वसुदास देखो, इस बकरेका सम्पूर्ण शरीर भयसे किस प्रकार काँप रहा है और इसका चित्त किस प्रकार त्रस्त हो रहा है? इस बकरेने मुझे देखा और देखते ही यह मुझसे गद्‌गद वाणीमे कहने लगा–मुनिराज, आप समस्त प्राणियोपर दया भाव रखते है और समस्त जनताके बन्धु है। इसलिए आप शीघ्र ही मुझे इस बन्धनसे मुक्त करा दीजिए। वसुदास, इस बकरेने मुझसे यह भी कहा–हे पतित पावन स्वामिन् आप मुझे बचाइए, ससारमे मेरा कोई रक्षक नही है। मै बडा पापी हू और पूर्व जन्मके पापसे ही मुझे इस दुर्गतिमे जन्म लेना पड़ा है। इस प्रकार इस बकरेने यह कहते हुए अपने आक्रन्दनसे आकाशको मुखरित कर दिया और देखो तो इसका हृदय कितना व्याकुल हो रहा है। भो वसुदास, इसकी आर्तवाणी सुनकर मैने इससे कहा है कि तू पूर्व जन्मभे बडा ही पापी, दुष्कर्मी और अभागा रहा है और तूने वैभवके लोभमे न जाने, कितने प्राणियोंका वध किया है। इस कारण मै तुम्हारी इन दुष्कर्मोंके फल भोगसे एक क्षणके लिए भी रक्षा नही कर सकता।"

जब वसुदासने मुनिराजकी यह बात सुनी तो उसे बडा ही क्रोध हो आया और वह लाल-लाले आँखे किए सबके सामने मुनिराजसे कहने लगा–"मुनिराज! हमारे पिताने इस प्रकारका शुभ्र मन्दिर बनवाया है, सुन्दर उद्यान लगवाया है और कमलोसे सुशोभित यह सरोवर निर्माण कराया है। उन्होने अपने हाथसे अनेक जीवोको मार करके देवताकी पूजा की है और वह कृतकृत्य हो कर शुद्ध मनके साथ मरे है। मुनिराज,

इस प्रकार हमारे पिताको दैवयोगसे यदि मोक्ष नही मिला है तो स्वर्ग तो उन्हे जरूर ही मिलना चाहिए। हमारे पिता बहुत ही धर्मात्मा थे। वे इतने पापी तो कभी भी न थे कि उन्हे पशु-गतिमें आकर बकरा होना पडता।

मुनिराज दिव्यज्ञानी थे और उनका समस्त शरीर धर्म-से सुशोभित था। उन्होने वसुदासकी यह बात सुनी तो वे कहने लगे—वत्स, जीवोकी हिंसा करनेवाले पापी प्राणियोको कभी भी स्वर्ग नही मिल सकता है।

"जब वसुदासने मुनिराज की यह बात सुनी तो वह मुनि-राजसे कहने लगा—व्यर्थके कोरे बकवादसे कोई अर्थ सिद्ध होने वाला नही है। हाँ, हमारे पिता जब मरने लगे थे सो उन्हे अपने धनके प्रति ममत्व भाव जागृत हो उठा था। इस लिए वे हम लोगोको पृथ्वीमें गडा हुआ धन नही बतला गये। मुनि-राज, मुझे उस धनका कोई पता मालूम नही, सो मैंने उसे बहुत देखा-भाला, परन्तु वह मुझे हस्तगत नही हो सका और उसके प्राप्त न हो सकनेसे मेरे मनमें बहुत ही दुःख है। सो यदि यह उस गडे हुए धनको मुझे दिखला दे तो मैं इसे अपना पिता मान सकता हूँ। आपके कहने मात्रसे नही।"

वसुदासकी बात सुन कर मुनिराज उस बकरेसे कहने लगे—भद्र! यदि तुम अपना गडा हुआ धन वसुदासको बतला दो तो यह तुम्हारा पुत्र वसुदास तुम्हे अभी हाल छोडे देता है। और यदि तुम्हे अपने उस धनके प्रति अब भी लोभ बना हुआ है और अब भी उसे नही बतलाना चाहते हो तो यह तुम्हे कभी भी नही छोड़ सकता।

जब बकरेने मुनिकी यह बात सुनी तो वह अपनी ध्वनिमें मुनिराजसे कहने लगा—मुनिराज, यदि यह वसुदास मुझे छोड़ देनेकी प्रतिज्ञा करे तो मैं इसे अभी हाल सारा धन

बतलानेके लिए तैयार हूँ। भला धन क्या प्राणोंसे भी प्यारा हो सकता है ?

वसुदास मुनिराज और बकरेके बीचकी बातसे बहुत ही आश्चर्यान्वित हो रहा था। सो मुनिराजने जब अपने दिव्य ज्ञानसे बकरेकी भाषाका अर्थ समझ लिया तो वह वसुदाससे कहने लगे—वसुदास, अपने पैरोंसे चलकर यह बकरा जिस स्थान पर पहुचे और जिस स्थानको अपनी नाकसे सूघे, बस समझ लेना तुम्हारा सम्पूर्ण धन वही पर गडा हुआ है। मुनि-राज वसुदाससे इस प्रकार कहकर बकरेसे कहने लगे—बकरे, तुम अब अपने घर जाओ और धनके स्थानको नाकसे सूघकर अपने पुत्रको बतला आओ।

जब मुनिराजने बकरेसे इस प्रकार कहा तो वह भी मुनि-राजके आज्ञानुसार अपने महान् धन-सम्पन्न स्थानमे जा पहुचा इस समय बहुतसे मनुष्य इस बकरेको घेरे हुए थे। बकरा बड़ी ही प्रसन्नताके साथ धनके स्थानपर पहुँचा। उसने अपने पैरकी खुरसे धनस्थानको खोदा और उसे सूघकर वसुदासको बतला दिया।

वसुदासने उस स्थानको खोद करके जब उसमे रक्खे हुए अमूल्य रत्न, अपार चादी-सोना, मोती-मूगा आदि धनराशि देखी तो वह डर गया। उसके मनमे उत्कट वैराग्य भाव जागृत हुआ और वह इस प्रकार विचार करने लगा—देखो तो मेरे पिताका यह जन्म जन्मान्तर सम्बन्धी दिव्यज्ञान ! और इस साधुको भी देखो, जिसने यह सब समाचार जान लिया !

इस प्रकार विचार करके वसुदासने अपना यह समस्त धन अपने पुत्रको दे दिया और स्वय समाधिगुप्त मुनिराजके निकट तप ले लिया। बकरेने मुनिराजके निकट सम्यक्त्व-पूर्वक पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ले

लिये। इस प्रकार गृहस्थ धर्मको स्वीकार करके वह मुनिराज-के निकट ही प्रसन्नताके साथ रहने लगा।

जब सम्पूर्ण जनताने इस आश्चर्यपूर्ण घटनाको देखा तो सब लोग देवताके लिए बकरेकी बलि करनेसे डर गये। उन्हों-ने महत् दुःख देनेवाली जीव-हिंसा छोड दी और स्वर्ग तथा मोक्षको देनेवाला जैनधर्म स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार पलाशकूट गाँवमें उत्पन्न हुए वसुदासके द्वारा
देवीके लिए की जानेवाली हिंसासे सम्बन्धित
बकरेका कथानक सम्पूर्ण हुआ।

——o——

७२. मृगसेन धीवरकी कथा

अवन्ती नामके देशमे सिप्रा नदीके किनारे एक शिशप नाम-का गाव था। इस गाँवमें बहुतसे धीवर रहते थे।

इसी गाँवमे एक भवदेव नामका धीवर रहता था। उसकी पत्नीका नाम भवश्री था और इन दोनोंके एक मृगसेन नामका लडका था।

तथा इसी गाँवमे एक सोमदास नामका दूसरा धीवर रहता था, जो हृदयसे बडा ही क्रूर था। इसकी पत्नीका नाम सेना था तथा इन दोनोके एक घण्टा नामकी कन्या थी।

कुछ दिनोके पश्चात् मृगसेनने इस घण्टाके साथ विधिवत् विवाह कर लिया। घण्टाने अपनी भक्तिसे पतिदेवका हृदय जीत लिया और वह आनन्दके साथ मृगसेनके घर रहने लगी।

इसी गाँवमे भगवान पार्श्वनाथका एक सुन्दर, विशाल और गगनतलस्पर्शी मन्दिर था। एक बार जयधन नामके मुनिराज सघके साथ विहार करते हुए इस पार्श्वनाथ मन्दिर-में आ पहुँचे।

मृगसेनने जब यह समाचार सुना तो वह भी मुनिराजके निकट पहुचा और मुनिराजके मुखसे जैनधर्मका उपदेश सुना। उसने मुनिराजके पास यह नियम लिया कि वह सदा ही पहले पहल जालमे फॅसी हुई मछलीको छोड दिया करेगा। जयधन महाराजके निकट यह व्रत ले कर और शीघ्र ही कन्धेपर जालको लटकाये वह नदीकी ओर चल दिया।

नदी पहुंच कर मृगमेनने उसके गहरे प्रवाहमे छपाकसे जाल डाल दिया और विश्वस्त हो कर मछलीके फसनेकी प्रतीक्षा करने लगा। इतनेमे एक महान् वृद्ध मत्स्य जालमें फंसा, सो उसने नियमके अनुसार उसे छोड़ दिया। तदनन्तर इसने पुनः नदीमे जाल डाला और फिर वही वृद्ध मत्स्य जालमे आ फसा। इसबार भी उसने इस मत्स्यको छोड दिया। इस प्रकार मृग-सेनने बार-बार नदीमें जाल डाला, वार-बार वही वृद्ध मत्स्य जालमे फसता और वह उसे छोड देता। अन्तमे इसने एक बार फिर नदीके जलमे जाल डाला तो दैवयोगसे वही पुराना मत्स्य फिर जालमे आ फसा। मृगसेनने फिर इसे छोड दिया और अपना रिक्त जाल कन्धेपर लटका कर खाली हाथ घर आ पहुंचा।

जब उसकी घरवाली घण्टाने मृगसेनको खाली हाथ घर आया देखा तो वह वडे ही रूखे स्वरमे बोली—अरे पापी, दुरा-चारी, घरमें खाली जाल ले कर क्यो आया है?

जव मृगसेनने अपनी पत्नी घण्टाकी यह कठोर वाणी सुनी तो उससे कहने लगा—प्रिये, मैंने मुनिराजके निकट एक इस प्रकारका व्रत लिया है कि पहली वार जाल डालने पर जो मछली जालमे फंसेगी, वह चाहे कितनी ही वड़ी क्यो न होगी, मै उसे अवश्य ही छोड दिया करूंगा। प्रिये, मैं यह व्रत ले कर शीघ्र ही अन्य साथी धीवरोंके साथ सिप्रा नदीमे मछ-लिया पकड़नेके लिए पहुँचा नदीक जलमें चार वार

जाल डाला, परन्तु चारों ही बार वही वृद्ध मत्स्य आ फंसा, जो पहली बार जालमे आ फसा था। सो मैंने इस मत्स्यको छोड़ दिया, आज खाली जाल घर आनेका यही कारण है।

उसकी यह बात सुनकर मृगसेनकी पत्नी घण्टा क्रुद्ध होकर कहने लगी—तो आज मुझे भी बच्चोके साथ ही भूखों मरना होगा। दुष्ट, पापी, तू इसी वक्त घरसे चला जा।

पत्नीकी यह कठोर वाणी सुनकर मृगसेन शीघ्र ही मकानसे चल पडा। रातका समय था। वह घरसे निकल कर एक सूने देवकुलमे जा सोया। वहा उसे सापने काट खाया और वह तत्काल ही मर गया।

उधर मृगसेनकी पत्नीका जी जब भूखसे छटपटाने लगा तो वह मृगसेनको खोजती हुई देवकुलमे पहुची और जाकर देखा तो उसे मरा हुआ पाया। जब उसने अपने पतिको इस प्रकार व्रतके पीछे ही अपनी जीवन लीला तक समाप्त करते हुए देखा तो वह भी कहने लगी कि अब मै भी पतिदेवका ही व्रत स्वीकार करती हूँ। और इस प्रकार सोच करके उसने सांप-के बिलमें हाथ डाल दिया। सो उस दुष्ट सापने घण्टाको भी काट खाया और वह भी तत्काल ही मर गई। ठीक है, नियति-को कौन लांघ सकता है?

उज्जयिनी नामकी समृद्ध नगरीमे वृषभदत्त नामका राजा रहता था। वह बडा ही प्रतापी था और अनेक सामन्त इसकी सेवा किया करते थे। इसकी पत्नीका नाम वृषभदत्ता था। वृषभदत्ता बहुत ही रूपवती और युवती थी।

इस राजाका एक गुणपाल नामका सेठ था, जो बडा ही धनी था। इसकी पत्नीका नाम गुणश्री था। इसने अपने गुणो-से भूतलको अनुरञ्जित कर रक्खा था। घण्टा नामकी धीवरी

मन्द कषायसे मरकर इन दोनोंके विषा नामकी मनोहर पुत्री हुई।

तथा इसी उज्जयिनी नगरीमें एक श्रीदत्त नामका बहुत धनाढ्य व्यापारी रहता था। इसकी पत्नीका नाम श्रीमती था। मृगसेन धीवर इन दोनोंके सोमदत्त नामका विनीत और रूपवान् पुत्र हुआ।

परन्तु ज्यों ही सोमदत्त माताके गर्भमें आया, इसके पिताकी मृत्यु हो गई। और ज्योंही यह उत्पन्न हुआ, इसकी माताकी मृत्यु हो गई। वह इतना अभागा निकला कि ज्यों-ज्यों वह बढ़ने लगा, पूर्व पापके कारण उसका समस्त कुल मूलसे ही क्षय होने लगा। इस प्रकार जब धीरे धीरे सम्पूर्ण कुलका क्षय हो गया और सोमदत्त भूखो मरने लगा तो वह पेट भरनेकी इच्छासे गुणपालके घर जा पहुंचा। वह गुणपाल सेठके भोजनकी थालियोंमें बचे हुए भोजनको प्रीतिपूर्वक खाने लगा और उसके घर पर रह कर ही अपना जीवन यापन करने लगा।

एक दिनकी बात है। दो सयमी मुनिराज विहार करते हुए उस स्थानपर आये। उनमेमे छोटे मुनिराजने जब देखा कि यह सोमदत्त बालक शरीरसे अत्यन्त सुन्दर होनेपर भी माता-पिता तथा बन्धु बान्धवोसे विहीन है और सेठकी जूठन खाता हुआ भी आदरके साथ अपना जीवन व्यतीत कर रहा है तो उन्होने बड़े मुनिराजसे कहा—जब इस प्रकारके सुन्दर और शुभलक्षण सम्पन्नकी भी यह दशा हो सकती है तो धिक्कार असार संसार को।

छोटे मुनिराजकी बात सुनकर बडे मुनिराजने अवधिज्ञानसे सोमदत्तका सम्पूर्ण रहस्य जान लिया और वे कहने लगे— भद्र, यह बालक बहुत शीघ्र बुद्धिमान् गुणपालके समस्त धनका स्वामी होकर सेठ बनेगा।

जब गुणपालने जाते हुए मुनिराजकी यह बात सुनी तो

उसके मनमें बडा ही विस्मय हुआ और वह विचार करने लगा-क्या मेरा समस्त धन इस सोमदत्तका हो जायगा ? वह फिर सोचने लगा-ससारमें श्रमणोंकी बात कभी भी असत्य नही निकलती ।

यह सोचकर उस नर पिशाचका हृदय एकदम क्रूर हो उठा। उसने एक दुष्ट मनुष्यको बुलवाया और उससे कहा-यदि तू बालकको जगलमें ले जाकर मार डालेगा तो मैं तुझे बहुत धन दूगा।

वह मनुष्य गुणपालकी यह बात सुनकर उस बालकको शीघ्र ही एक सघन जगलमे ले गया, और उसे एक नदीके तटवर्ती वटवृक्षके पास छोड, घर आकर सेठसे कह-दिया कि मैंने उस बालकको मार डाला।

इधर बालक सोमदत्तने नदीमें स्नान किया, पानी पिया, फल खाये और वह वट वृक्षके नीचे आरामसे बैठा बठा ही सो गया ।

इतनेमें ही एक गोविन्द नामका धनी गोपाल वहा आया । उसने वटके नीचे सोते हुए इस सुलक्षण बालकको देखा। वह इस बालकको सानन्द अपने साथ लिवा ले गया और उसे अपना पुत्र बतलाते हुए अपनी धनश्री पत्नीको सौंप दिया। धनश्रीने भी कामके समान सुन्दर कुमारको दही, दूध और घी आदिसे पुत्रकी तरह पाल पोसकर बड़ा किया और इस प्रकार सोमदत्त धीरे धीरे यौवनके द्वारमे प्रवेश करने लगा।

एक दिनकी बात है। गुणपाल सेठ गोविन्दके घर आया और उसके घर इस युवा सोमदत्तको देखकर उसका मन एक-दम विस्मयसे व्याकुल हो उठा। उसने तत्काल ही समझ लिया कि यह वही पुराना लड़का है, जिसे मैंने मार डालनक लिए मातङ्गको सौंपा था। यह सोचकर उसने गोपालसे पूछा-यह विनीत, रूपवान् , सौम्य, समुद्रकी तरह गभीर और मूर्तिमान्

कामके समान सुन्दर पुत्र किसका है ? गोविन्द बोला–श्रेष्ठिन्, यह कुलदीपक मेरा पुत्र है।

तदनन्तर सेठ गुणपाल प्रसन्न हृदय गोविन्दसे कहने लगा–गोविन्द, तुम एक दिनके लिये अपने इस पुत्रको हमारे यहाँ भेज दो। गोविन्दने सेठकी बात सुनकर अपने पुत्रको सोलह प्रकारके आभूषण पहनाकर और अमूल्य वस्त्रोंसे सुशोभित करके तैयार कर दिया। गुणपालने गोविन्दके सामने सोमदत्तके प्रति अपनी बड़ी हितैषिता दिखलाई और अपनी पत्नीके लिए एक पत्र देकर सोमदत्तको अपने घर भेज दिया। गुणपालने उस पत्रमे अपनी पत्नीको लिखा–प्रिये, तुम चतुराईके साथ इस पत्रवाहकको अवश्य ही विष दे देना।

सोमदत्तने गुणपालके उस पत्रको ले लिया और वह बहुत शीघ्र वहाँसे चलकर उद्यान वनमें आया और एक वृक्षके नीचे सो गया। इतनेमें ही वहां वसन्ततिलका नामकी साक्षर वेश्या आ पहुँची। उसने इस रमणीय युवाके गलेमें बंधे हुए एक पत्रको देखा। सो वह अपने हाथसे उसके गलेमें बंधे हुए पत्रको खोलकर बाँचने लगी। वसन्तसेनाके नेत्र इसके पहले ही युवा सोमदत्तकी रूपमाधुरीके प्यासे हो चुके थे।

जब वसन्ततिलकाने इस पत्रको पढा तो उसने सोचा कि यह रूपवान् युवा कभी भी नही मरना चाहिए। सो वसन्ततिलकाने उस लेखमे तत्काल सशोधन करके 'तावद्विष प्रदातव्य लेखवाहाय सत्वरम्'के स्थान पर'तावद्विषा प्रदातव्या लेखवाहाय मत्सुता' बना दिया। जिसका अभिप्राय यह था कि पत्रवाहकको तत्काल ही विषा नामक पुत्री विवाह देना।

वसन्ततिलकाने उस पत्रमे इतना संशोधन करके सोमदत्तके गलेमे जहाँका तहाँ बांध दिया और वह शीघ्र ही वहासे चली गई।

इसके बाद सोमदत्त वृक्षके नीचेसे सोकर उठा और अपनी

रूप सुधासे स्त्री-समूहको मोहित करता हुआ गुणपालके घर पहुँच गया। वहा पहुचकर वह यथोचित स्थानपर जा बैठा और बडी ही प्रसन्नताके साथ उसने सेठ गुणपालका वह पत्र उसके पुत्र महावलके सामने रख दिया।

बलशाली महाबलने उस पत्रको अपने हाथमे ले लिया और वह उसे अपनी माता तथा बन्धुजनोके सामने पढने लगा। उसने पढा—हे महाबल, तुम माता, बन्धु-बान्धव तथा महान् जन-समूहके सामने बडी ही प्रसन्नताके साथ अपनी बहिन विषाका विवाह पत्रवाहकके साथ करदेना।

इस पत्रको पढकर महाबलके शरीरमे रोमाञ्च हो आये। तथा उसने पत्रका आशय तुरन्त ही अपनी माँ तथा बन्धु-लोगोको समझा दिया। तत्पश्चात् शुभ दिन, शुभ नक्षत्र, शुभ योग और शुभ मुहूर्त्तमे महाबलने हाथी, घोडे, रत्न, सुवर्णके आभूषण, वाद्ययन्त्र, वीणा और वस्त्र आदि माङ्गलिक वस्तुओ-के साथ अपनी बहन विषाको महाबलके साथ विवाह दिया।

जिस समय ये दोनो वधू-वर विवाहवेदीके सामने बैठे हुए थे कि गुणपाल अपने घरपर आ पहुँचा। उसने ज्यो ही इन दोनोको वधू-वरके रूपमे देखा, क्रोधसे उसकी आँखें लाल हो गयी। सो वह धूलिसे धूसरित शरीर होनेपर भी क्रोधके मारे शय्यापर जा लेटा।

जब महाबलने पिताको शय्यापर पडे हुए तथा क्रोधसे लाल देखा तो वह अपने पितासे बोला—पिताजी, मैंने तो आपकी सम्मतिसे ही यह विवाह सम्पन्न किया है, फिर आप क्यो मौन लेकर इस प्रकार पराये जनकी तरह पड गये ह? इतना कहकर महाबल गरम गरम श्वासे छोडने लगा तथा उसका मुख-कमल मुरझा गया। गुणपालने जब महाबलकी यह बात सुनी तो वह उससे कहने लगा—'महाबल, यह बतलाओ,

जबतक मै घर नही आपाया, तुमने विषाका विवाह क्यों कर दिया ?

महाबल कहने लगा–पिताजी, मैने आपके लेखसे ही बहिन विषाका विवाह किया है। पिताजी, इतना ही नही, मैने यह विवाह समस्त सामन्तगणोकी साक्षीमे किया है और वर-वधू दोनोके लिए खूब धन भी दिया है।

गुणपालने जब अपने पुत्र महाबलकी यह बात सुनी तो उसे बडा ही दुःख हुआ और वह ठगा हुआसा होकर शय्यापर ही पडा रहा।

जब सेठकी पत्नी गुणश्रीको अपने पतिदेवके चिन्तित होनेका समाचार मिला तो वह भी सेठके पास पहुची। सेठको देखकर उसका मन बहुत ही विस्मित हुआ और वह उससे शोकका कारण पूछने लगी। गुणपाल सेठने जब गुणश्रीकी यह बात सुनी तो उसने अपनी स्त्रीसे पहलेका सब वृत्तान्त सुना दिया।

एक दिनकी बात है। गुणपालने सन्ध्याके समय अपने दामादको धूप और पुष्प आदि देकर अकेले ही नागमन्दिर भेज दिया। सो महाबलने सन्ध्याके समय पुष्प और धूप आदि लिए हुए अपने बहनोई सोमदत्तको अकेले नागमन्दिर जाते हुए देखकर उसके हाथसे बलि सामग्री ले ली तथा उसे बाजारमे बैठाकर वह स्वय ही विनीत वेषमे नागमन्दिर चला गया।

सोमदत्तसे रुष्ट गुणपाल सेठने इस नागमन्दिरमें एक आदमीको बैठा दिया था और उससे कह दिया था कि सन्ध्याके समय यहां जो कोई बलि लेकर आवे तू उसे तुरन्त ही मार डालना। सो ज्यों ही यह महाबल प्रसन्न मनसे उस नागमन्दिरके अन्दर प्रवेश करने लगा, उस मातङ्गने चमकती हुई तलवारसे उसका प्राणान्त कर दिया।

जब गुणपाल सेठने अपने दामादको नगरमे जीवित पाया

और अपने महावल पुत्रको मरा हुआ देखा तो उसके दुःख-का पारावार न रहा किन्तु वह मौन होकर रह गया।

एक दिन गुणपाल सेठ बहुत ही दुखी होकर अपनी पत्नी-से बोला—प्रिये, यह दामाद हमारा शत्रु है। मैं इसे मारना चाहता हूं परन्तु मारनेका कुछ भी साधन समझमें नहीं आता। यदि किसी उपायसे इस दामादका विनाश हो सके तो मुझे वह उपाय बतलाओ।

गुणपालकी बात सुनकर गुणश्रीने तुरन्त ही सुगन्धसे दसो दिशाओंको सुगन्धित करने वाले विष मिश्रित लड्डू तैयार किए। तत्पश्चात् वह दुष्टा अपने पुत्री विषासे कहने लगी—पुत्री, तुम इन लड्डुओंको अपने पतिदेवको ही देना, अन्य किसी को न दे देना। इतना कहकर गुणश्री अपने घरसे चली गयी।

इतनेमें ही सेठ गुणपालको वडे जोरकी भूख लगी। सो वह अपने पुत्री विषाके पास आया और कहने लगा—पुत्रि, मुझे राजाने किसी महान कार्यवश अभी हाल बुलाया है, घरमें जो कुछ भोजन हो, मुझे जल्दी ही दे दो।

ज्यो ही विषाने अपने पिताकी यह बात सुनी और उसको भूखसे व्याकुल देखा, तो उसने हितदृष्टिसे ही गुणपालको वे विष-मिश्रित लड्डू दे दिये। परन्तु विषाके द्वारा हितवुद्धिसे दिये गये इन लड्डुओंको खाकर गुणपालके समस्त शरीरमें विष व्याप्त हो गया और अन्तमें वह मर गया।

गुणश्रीने जब अपने पतिको मरा हुआ देखा तो वह बहुत ही विह्वल हुई। वह पति-वियोग सहन न कर सकी और विष मिश्रित लड्डू खाकर उसने भी आत्म हत्या कर ली।

जब ये दोनो ही मर चुके तो वृषभदत्त राजाने सोमदत्तको बुलवाया। और उसे अपनी पुत्री, आधा राज्य तथा गुणपालका

सम्पूर्ण धन दिया और राज-सेठका पद दिया । इस प्रकार राजा-से सम्मानित होकर सोमदत्त अपने नगरमे आनन्दके साथ इच्छित भोगोको भोगने लगा ।

सोमदत्तने एक बार सुकेतु आचार्यको विधिवत् आहार-दान दिया । फलत उसके घर दुर्लभ पञ्चाश्चर्य हुए । सोमदत्त-ने इन आचार्यसे अपने पूर्वभव सुने । तत्पश्चात् उसने विरक्त होकर सक्लेशसे शून्य जैन तप अङ्गीकार कर लिया और विधिपूर्वक चार प्रकारकी आराधनाका आराधन करके सर्वार्थसिद्धिमे जा पहुचा ।

कोमल हृदय मृगसेन धीवरने चार बार पकड़ी जाने वाली एक मछलीके ऊपर दया की, सो उसके परिणामसे सोम-दत्तकी पर्यायमे चार बार उसका प्राणान्त होते होते बचा । सोमदत्तने इस दया भावके कारण राजत्वकी विभूति प्राप्त की और सर्वार्थसिद्धिमे अहमिन्द्रत्व पद पाया ।

इस प्रकार मृगसेन धीवरके एक मछलीके प्रति दयार्द्र होनेके कारण सोमदत्तकी पर्यायमें चार बार रक्षित होनेका निर्देश करने वाला यह कथानक समाप्त हुआ ।

—०—०—

७३. यशोधर और चन्द्रमतीकी कथा

अवन्ती नामके देशमे उज्जयिनी नामकी नगरी है । इस नगरीमें कीर्त्योघ नामक राजा रहता था । कीर्त्योघकी पत्नी-का नाम चन्द्रमती था, जो बहुत सुन्दर थी । ये दोनो दम्पति बहुत दिनोसे पुत्र जन्मके अभिलाषी थे, सो इनके एक यशोधर नामका पुत्र उत्पन्न हुआ । यशोधर बड़ा ही रूपवान् विनीत और अपराजित था । इसकी महादेवीका नाम अमृतमती था ।

अमृतमतीका समस्त शरीर रूप राशिसे निखर रहा था। उसके नेत्र नील कमलके समान मनोहर थे और यशोधर राजाको वह बहुत ही प्रिय थी। इन दोनोके एक यशोमति नामका कुमार हुआ। यशोमति बडा ही पराक्रमी विनीत सदाचारी और कुलदीप था।

एक दिनकी बात है। कीर्त्योघ महाराज दर्पणमें अपना मुख देख रहे थे कि उन्हे अपने सिरमे एक सफेद बाल दिखलाई दिया। यह देखकर उन्हे ससारसे बड़ा डर लगा और उनके मनमें तीव्र वैराग्यभाव उदित हो उठा। उन्होने अपनी राज्य-लक्ष्मी यशोधर कुमारको सौप दी और वह अभिनन्दन मुनिराजके निकट दिगम्बरी दीक्षा लेकर मुनि हो गये।

यशोधरको समस्त सामन्त गण नमस्कार करते थे और उसका शासन सभी राजा महाराजा सिरसे स्वीकार करते थे। इस प्रकार यशोधर अपने राज्यको बडी ही कुशलताके साथ सचालित करने लगा और अमृतमती महादेवीके साथ इच्छानुसार भोगोको भोगता हुआ आनन्दके साथ अपना जीवन बिताने लगा।

एक बार एक रातको राजा यशोधरने अपने पत्नी अमृत-मतीको एक कुवडेके साथ रमण करते हुए देख लिया सो इससे उसे बहुत ही वैराग्य हुआ। उसने सोचा कि मै सबेरे राज्य सभामे अपनी मातासे एक इस प्रकारका मिथ्या स्वप्न गढ कर सुनाऊँगा, जिसके कारण मै शीघ्र ही दीक्षा ले सकूँ। यह सोचकर उसने स्वप्नकी रूपरेखा तैयार कर ली। सबेरा होते ही वह राज-सभामे पहुँचा और अपनी माता चन्द्रमतीसे उस असत्य स्वप्नके सम्बन्धमें इस प्रकार कहने लगा—माता, आज मैंने रातके पिछले पहरमे एक स्वप्न देखा है कि मै सतखण्ड प्रासादसे उतरता हुआ जमीनमें पत्थरोके ढेरपर गिर गया हूँ। उसके बाद मेरी मिथ्या स्तुति करनेवाले तथा मायावी मनुष्योने

मुझे उठा लिया और मेरी प्रशसा भी की । इसके पश्चात् मुझे बड़ा भारी वैराग्य हुआ । मैने यशोमति कुमारको राज्य पट्ट बांधा और स्वय जैनेन्द्र तपको अङ्गीकार कर लिया ।

यशोधर महाराजका यह स्वप्न सुनकर उसकी माता चन्द्रमती कहने लगी—पुत्र ! तुमने आज यह अच्छा स्वप्न नही देखा है । फिर भी तुम अपने हाथसे कुल देवताकी पूजा करो और शान्ति विधान करो । तुम्हे फिर किसी प्रकारकी चिन्ता करनेकी जरूरत नही है । जब तुम इस प्रकारसे सम्पूर्ण शान्ति विधान कर चुकोगे तो तुम्हारी थोडीसी दीक्षा तो उस समय ही सम्पन्न हुई समझी जायगी ।

जब यशोधर महाराजने अपनी माता चन्द्रमतीकी यह बात सुनी तो उसने अपने कल्याणकी कामनासे उसे स्वीकार कर लिया और उसने चन्द्रमतीके साथ आटेका बना हुआ मुर्गा मारकर देवताके पादमूलमे चढा दिया ।

इसके बाद महादेवी अमृतमतीने यशोधर महाराज और उसकी माताको लड्डुओंमें विष मिलाकर खिला दिया और वे दोनो तत्काल ही मर गये । इस पापके कारण यशोधर हिमालय पर्वतकी दक्षिणदिशामे अनेक वृक्षोंसे सघन, सिह और व्याघ्रसे भयकर एक उन्नत पर्वतपर मयूरीके गर्भसे मयूर रूपमे उत्पन्न हुआ । इसके उत्पन्न होते ही एक युवा मनुष्यने इसकी माताको मार डाला । तत्पश्चात् कोई आदमी उस पर्वतपर पहुँचा और उसने इस सर्वाङ्ग सुन्दर मयूर शावकको देखकर उठा लिया और लाकर इसे यशोमति कुमारको भेट कर दिया ।

यशोमति कुमारने भी जब इस मयूर शावकको देखा तो उसे बडा ही सतोष हुआ । उसने इसे ले लिया और वह यशोमतिके राज भवनमे क्रीडा करता हुआ रहने लगा ।

यशोधरकी जो पूर्व जन्मकी माता चन्द्रमती थी, वह भी

मरकर करहाट (देश) में कुत्तेके रूपमे उत्पन्न हुई। कोई आदमी वहा पहुचा और उसे यशोमतिको भेटमे देनेकी इच्छासे ले आया। वह उस कुत्तेको लेकर उज्जयिनीमे आया और उसे यशोमति कुमारको भेट कर दिया। यशोमति भी इस कुत्तेको देख कर बडा प्रसन्न हुआ और उसने इसे सावधानीके साथ अपने अङ्गरक्षकको सौप दिया। ये दोनो मोर और कुत्ता पूर्वभवके कारण यशोमतिको बहुत ही प्रिय लगते थे।

एक दिनकी बात है। मयूर प्रासादके शिखरपर बैठा हुआ था। सो उसे एक खिडकी दिखलाई दी और इसमेंसे ज्यो ही उसने रत्नदीपकोकी प्रभासे जगमगाते हुए राजभवनके अन्दर दृष्टि डाली, त्योही उसे जातिस्मरण हो आया। और वह ज्योही अपने अन्त पुरको देखने लगा उसे पूर्वोक्त कुब्जककी गोदमें बैठी हुई अमृतमती महादेवी दिखलाई दी। जब इस प्रकार रति करते हुए इन दोनोको उस मयूरने वहा देखा तो वह इन दोनोके प्रति बहुत ही क्रुद्ध हुआ। उसने अपने पैरके नखोके आघातसे उन दोनो को खूब ही मारा और इधर रतिसे खिन्न इन दोनो प्रेमियोने भी इसे मणिमय आभूषणोमे मारा और यह डरकर उडता हुआ द्यूत क्रीडा करते हुए यशोमति नरेशके पाम पहुँचने वाला ही था कि कुत्तेने इसे राजाके पास आते हुए देखकर तुरन्त ही पकड लिया और मार डाला।

यह देख कर यशोमतिने द्यूतके पासोमे कुत्तेके सिरमें दे मारा। कुत्ता निश्चेष्ट होकर पृथिवीपर गिर पडा और मर गया।

जब यशोमतिने इन दोनोको मरा हुआ देखा तो उसने ऐसा करुण विलाप किया कि उसे सुन कर मनिजनोका मन भी दुखित हो सकता था। राजाने इन दोनोकी मृत्युके कारण दीर्घ कालतक शोक मनाया और इन्हें चन्दनकी लकडीसे जलवा

दिया तथा इनकी हड्डियोंको गंगाके प्रवाहमे छुडवा दिया। तत्पश्चात् यशोमतिने इस अवसरपर बहुत सा सोना, रत्न, चाँदी, गाय, वस्त्र आदि दानमे दिया जिससे इन दोनो प्राणियोकी आत्मा स्वर्गमें सुखी बनी रहे।

सुवेल पर्वतकी दक्षिण दिशामे सिह आदि भयकर प्राणियोसे भरा हुआ एक सघन वन है। सो वह मयूरका जीव इस वनके एक सरोवरमे महान् मगर हो गया। ज्योही वह अपनी माँके पेटसे उत्पन्न हुआ, इसकी माताके स्तन सूख गयें और इसे जरा भी अपनी माका दूध पीनेको नही मिला। यह मकर इतना महान् पापी था कि एक बडे भारी सरोवरमे पैदा होनेपर भी इसे साँपोंको मार-मार कर ही अपना पेट भरना पडता। उधर जो क्रूर चन्द्रमती कुत्तेके रूपमे मरी, वह भी इसी महान् सरोवरके बिलमे काला साँप हो गयी।

एक बारकी बात है। ज्यो ही यह काला साप मेढकोको खानेके लिए उद्यत हुआ, मगरने इसे देखा और इसकी पूँछ पकड ली। यह देखकर साँप भी पीछेकी ओर मुड़ा और उसने एकदम क्रुद्ध होकर मगरके मुँहको अपने दाँतोंसे खूब ही डस लिया। इस प्रकार ये दोनों जब क्रोधके साथ आपसमे एक दूसरेको काट रहे थे कि इतनेमें एक व्याधने आकर तत्काल ही उस मगरको मार डाला। और वह काला साँप भी मगरकी दाढोसे घायल होकर मर गया।

मर कर वह मगर सिप्रा नदीके प्रवाहमे रोहित नामक मत्स्य हुआ और उधर काला साँप भी मरकर इसी नदीके प्रवाहमें भयकर, लम्बा और कालके समान आकारधारी मगर हो गया।

एक बार रोहित नदीके निर्मल जलमे तैरता हुआ विहार कर रहा था कि उसे मगरने वेगसे पकड लिया। इतनेमे ही राजाका अन्तःपुर भी नदीके जलमें क्रीड़ा करनेके लिए प्रविष्ट हुआ।

उस समय एक स्त्री क्रीडा करती हुई इस मछलीके ऊपर जा गिरी। सो उस मगरने मछलीको तो छोड दिया और क्रोधमें आकर इस स्त्रीका पैर पकड लिया। ज्योही मगरने उसका पैर पकडा, वह बडे जोरसे चिल्लाई–देखो, मुझे किसीने पकड लिया, पकड लिया।

तदनन्तर सभी डरते-डरते राजाके पास पहुचे और उन्होन राजासे यह समाचार सुनाया कि महाराज, सिप्रा नदीमे आपकी प्रिय स्त्रीको एक भयकर मगरने पकड लिया है।

ज्यो ही राजाने यह समाचार सुना, उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयी। उसने तत्काल समस्त धीवरोको बुलाया और अपनी ध्वनिसे आकाशको गुञ्जाते हुए वह उन धीवरोसे कहने लगा–

अरे धीवरो! सिप्रा नदीमें जितनी मछलिया हों उन सबको शीघ्र ही पकड कर यहाँ लाओ।

धीवरोने राजाकी यह आज्ञा सुनते ही अपने अपने जाल हाथमे ले लिए और मनमे बडे ही पुलकित होकर तुरन्त सिप्रा नदीकी ओर चल दिए।

उधर मगरसे छूट कर वह मत्स्य डरके मारे उसी क्षण नदीके उस प्रवाहसे भागकर बहुत आगे निकल आया। ठीक ही है–जान बची लाखो पाये।

इसके बाद उन धीवरोने बडे ही रोषसे अपने ओष्ठ चबाते हुए सिप्रा नदीके प्रवाहमे एक साथ ही अपने घने बुने हुए जालोको डाला। जालोके डालते ही धीवरोंने उस मगर-को पकड लिया। वे इसे पकड कर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होने इसे ले जाकर यशोमति महाराजके सामने उपस्थित कर दिया।

ज्यो ही यशोमतिने मगरको अपने सामने उपस्थित पाया

उसने धीवरोंको आज्ञा दी कि तुम शीघ्र ही इस दुष्टको वध-स्थानपर लेजाओ और खूब मजबूतीसे बाध दो, जिससे यह बडे ही दुखके साथ तिल तिल करके मरे।

धीवरोंने मगरको वहासे लेजाकर कस कर बांध दिया। जिसके कारण उसकी बडे ही दु.खके साथ मृत्यु हुई।

एक दूसरे दिनकी घटना है। धीवर पुन: सिप्रा नदी पहुचे। उन्होंने उसके प्रवाहमे जाल डाले और इस बार उन्होंने रोहित मत्स्यको पकड लिया। वे इसे जीवित ही ले आये और यशोमति महाराजको भेट कर दिया।

यशोमति राजाने जब इस मत्स्यको अपने सामने उपस्थित देखा तो उसे बहुत ही प्रसन्नता हुई। उसने इसे तुरन्त ही अपनी अमृतमती माताके पास भेज दिया और कहला भेजा कि इस रोहित मत्स्यके सरस मांससे पितरोकी तृप्तिके लिये ब्राह्मणोको भोजन कराया जाये।

इस प्रकार वह मत्स्य अमृतमतीके सामने लाया गया। ज्यों ही इस मत्स्यने अमृतमतीको देखा और उसका वार्तालाप सुना उसे जातिस्मरण हो आया। परन्तु इतनेमें ही महादेवी-के आज्ञानुसार उसकी पूछ काटकर भोजनके लिए रसोई शालामे भेज दी गयी। इसके पश्चात् यशोमति कहने लगा—माता, अब जो कुछ शेष भाग बचा है, उससे हम दोनोका मजेमें काम चल जायगा। यह सुनकर अमृतमतीने शेष भाग-को तपती हुई कढाईमे डाल दिया और वह मत्स्य तत्क्षण ही मर गया।

मगर मरकर अजशालामे बकरी हुआ और यह मीन मर कर उसके गर्भमे आगया और बकरेके रूपमे उत्पन्न हुआ।

जब यह बकरा धीरे धीरे बढ़ कर युवा हुआ तो अपनी माताके साथ ही प्रसङ्ग करने लगा और ज्यो ही इसके वीर्यके निकलनेका समय आया, इसे एक अन्य बकरेने मार डाला।

इस प्रकार इस बकरेने अपनी माताको ही गर्भाधान कराया और दूसरे बकरेके सीगोसे विदीर्ण होकर मर गया ।

एक दिन यशोमति महाराज शिकार खेलनेके लिए राजभवनसे निकला कि इसे अपने नगरमे यह गर्भिणी बकरी दिखलाई दी। इसे देखते ही यशोमतिने इसमें एक बाण मार दिया। बेचारी बकरी बाणसे घायल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी और मर गई। फिर राजाने अपने साथी शिकारियोको आज्ञा दी कि इस बकरीका पेट फाड दो। उन लोगोंने ज्यों ही राजाकी आज्ञाका पालन किया, बकरीके पेटसे एक सुन्दर बकरा पृथ्वीपर आ गिरा ।

इस बकरेको देखते ही राजाके शरीरमे कुछ सनसनाहट हुई और उसने इसे बकरोकी देखभाल करने वाले गडरिएको सौंप दिया। कालक्रमसे यह बकरा बडा हुआ, युवा हुआ और बकरियोके साथ भोग विलास करता हुआ अपना समय बिताने लगा ।

एक दूसरे दिनकी बात है । राजा शिकार खेलनेके लिए जाने लगा तो उसने निश्चय किया कि यदि मुझे शिकारमें पूरी सफलता मिलेगी तो मै कुलदेवीके लिए बीस भैसोकी बलि चढ़ाऊँगा ।

काकतालीय योगसे उसकी इच्छा पूर्ण हो गयी। इस लिए राजाने अपना मनोरथ पूर्ण हुआ देखकर सहर्ष भगवती कात्यायनीको बीस भैसे बलि कर दिये और उनका सेमरके फूलोकी तरह लाल लाल मास भोजनागारमें पहुँच गया ।

इतनेमे ही यशोमति राजा भी वहा जा पहुँचा। रसोइयाने उसको बतलाया कि इसमेका कुछ मास कौवोने उच्छिष्ट कर दिया है। सो राजन्! यदि वह बकरा इसे 'सूंघले तो यह सब पवित्र होजाय।

पाचककी बात सुनकर राजाके मनमें बडा ही विस्मय हुआ। वह सहर्ष इसके मतसे सहमत हो गया और पाचकसे कहने लगा—भद्र, तुमने बहुत ही सुन्दर कहा है और हमारे हितकी ही बात बतलाई है। जब तुम्हारी बातको देवता और ब्राह्मण तक मानते है तो मै क्यों न मानूगा। इस प्रकार कह कर उसने पाचककी सम्मतिके अनुसार शीघ्र ही बकरेको बुलवा लिया।

इस प्रकार ज्यो ही वह बकरा मांससे आपूर्ण भोजनागारमे पहुंचा, उसे जातिस्मरण हो गया। इतनेमे ही अमृतमती महादेवी पाचकसे कहने लगी— पाचक, मुझे भैंसेका मांस तो जरा भी अच्छा नही लगता। तुम इस समय किसी अन्य जीवका मांस बनाओ, जिससे मेरा चित्त प्रसन्न रह सके।

अत्यन्त मातृ-स्नेह-परायण यशोमतिने माताकी यह बात सुनकर रसोइयेसे कहा—वत्स, तुम मांके लिए इस बकरेका मांस तैयार कर दो, जिससे इनके चित्तको सतोष हो सके।

राजाकी बात सुनते ही रसोइयाने तुरन्त उस बकरेका पिछला पैर काट डाला और उसके मास को अनेक प्रकारसे तैयार करके महादेवी अमृतमतीको परोस दिया। तत्पश्चात् राजाने रसोइयेसे कहा—तुम इसमेसे कुछ मास पिता और पितामहीके नामसे अपनी इच्छानुसार साधु-सन्यासियो को दे देना और कुछ ब्राह्मणोको। इस समय वह बकरा सोचने लगा—देखो, मुझे कितने जोरकी भूख और प्यास लग रही है, मेरा पिछला पैर काट लिया गया है, सम्पूर्ण शरीर भयसे कप रहा है और मै वेदनाके मारे कितनी बुरी तरहसे पीडित हो रहा हूँ, ि र भी मुझे कुछ भी खानेको नही दिया जा रहा है और दूसरोंकी, जो यहां नही है कितनी चिन्ता की जा रही है।

इधर जिस चन्द्रमतीके जीव बकरीको यशोमतिने मारा

था वह कलिङ्ग देशमे भयकर शरीरधारी भैसा हो गया। सो वह भी एकदिन इस देशसे चलकर बडे-बडे भैसोके साथ अपनी पीठपर बर्तन लादे हुए उज्जयिनीमे आ पहुचा। उज्जयिनी तक आते ही मार्गके श्रमकी गर्मीसे उसका सम्पूर्ण शरीर जलने लगा। इसलिए बर्तनोका बोझ उतरते ही वह अपनी थकावट दूर करनेके लिए सिप्रा नदी गया और उसके जलमे जा बैठा। इस प्रकार यह भैसा पानीमे बैठा हुआ अपनी थकावट दूर कर रहा था कि राजाका एक प्रिय घोडा वहां आया और उसे इसने सीगोसे इतना मारा कि वह तत्काल मर गया।

जब राजा यशोमतिको अपने नौकरसे यह समाचार मालूम हुआ, तो वह बहुत ही क्रुद्ध हुआ और उस भैसेको अपने घरपर ले आया। उसने इसे बाध दिया, उसके चारो पैरोमें कीले ठोक दिये और उसके चारो ओर आग लगा दी। इसके साथ ही तपे हुए पानीसे भरकर एक कडाही उसके सामने रखादी। इस कडाहीमें हीग, सैधानमक और त्रिफला आदिक चीजे भी डाल दी। इधर आगके कारण पानी और भी अधिक तपगया। उधर उसकी समस्त आते जलगयी और वह पिछले मलद्वारसे खब ही पतला पतला गोबर पोकने लगा। इसी समय राजान वह बकरा भी, जिसकी एक टाग टूटी हुई थी, भसेके पास ही बाध दिया। आग इतने प्रबलरूपमे धधकी कि समस्त दिशाएँ भासमान हो उठी। ये दोनो प्राणी तुरन्त-ही आगम पकने लगे और बड़ ही दु खसे इन दोनोके प्राण निकले।

परच, उज्जयिनीके निकट मेहतरोका एक बाडा था। वहाँ एक मुर्गी रहती थी। सो माता और पुत्रक जीव उस मुर्गीके गर्भसे मुर्गोके युगलके रूपमे उत्पन्न हुए।

जब चण्डकर्माने मुर्गोके इस जोड़ेको देखा तो उसे पकड़

लिया और यशोमति महाराजको भेट कर दिया। जब यशोमति राजाने इस कुक्कुट-युगलको देखा तो वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। ठीक है, ऐसा कौन बालक है जो अपने माता पिताको देखकर पुलकित नही होता। उसने इसे फिरसे चण्डकर्माके यहा भिजवा दिया।

एक दिनकी बात है। यशोमति अपने अन्त:पुरके साथ उद्यान वनमे क्रीड़ा करनेके लिये आया। चण्डकर्मा भी इसी समय इस कुक्कुट-युगलको लोहेके पिजडेमे बन्द करके उद्यान वनमे आया। यहा आते ही चण्डकर्माने रेशमी वस्त्रके समान अनेक वर्णोंसे उज्ज्वल एक मनोहर भवन देखा। सो चण्ड-कर्माने इस प्रासादके पूर्वद्वारमे स्थित, मणियोंसे उज्ज्वल, शरत्कालीन आकाशके समान स्वच्छ और विचित्र पट-मण्डपमे परस्परमे प्रेमासक्त इस कुक्कुट-युगलको छोड दिया और वह कुक्कुट युगल भी आनन्दके साथ मन्द-मन्द बाँग देने लगा।

इतनेमे चण्डकर्माने अशोक वृक्षके नीचे खड्गासनसे विरा-जमान एक मुनिराजको देखा। मुनिराजकी दोनो भुजाएँ लटकी हुई थी और नाकपर दृष्टि लगाये हुए थे। वे दयालु थे, तपके आगार थे, समस्त इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर चुके थे और मूर्तिमान् धर्मके समान मालूम देते थे।

चण्डकर्माने ज्यों ही इन मुनिराजको देखा, उसने उनकी बेमनसे बन्दना की और निष्ठुर हृदयके साथ उनके सम्बन्धमे वह इस प्रकार विचार करने लगा—मनुष्योके मनमें भीति पैदा करने वाले प्रचण्ड साँपके समान इस मुनिने राजाके निवास स्थानको क्यों अपवित्र किया है ?

वह दुष्ट इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि इतनेमे इन मूर्तिमान् मुनिराजका योग समाप्त हो गया।

जब चण्डकर्माने देखा कि मुनिराज अपना योग समाप्त कर चुके है तो वह बडे ही निष्ठुर मनसे कामदेवको जीतने

वाले मुनिराजसे बोला—हे मुनिराज, आप लोकप्रसिद्ध हैं और जनता आपको मानती-पूजती भी है। फिर भी आप अभी क्या ध्यान कर रहे थे ?

मुनिराजने चण्डकर्माका यह प्रश्न सुना तो वे बहुत ही विशुद्ध हृदयके साथ उससे कहने लगे—भद्र, तुमने जो बात पूछी है, मैं उसे बतलाता हूँ। तुम सावधान होकर एकचित्तसे सुनो। भद्र, मैंने अपने ध्यानमें यह विचारा है कि इस असार संसारमें परिभ्रमण करते हुए मैंने अनन्त शरीर ग्रहण किए और छोडे। सो अनेक योनियोंमें मैंने जो दुख सहे वे किस प्रकार दूर किये जा सकते हैं ?

जब चण्डकर्माने मुनिराजकी यह बात सुनी तो वह कहने लगा—योगिराज, क्या शरीरसे अलग जीव कोई अन्य वस्तु है और उससे शरीर जुदा है ?

मुनिराज अवधिज्ञानी थे, ग्यारह अङ्गके धारी थे, और प्रत्येक प्रकारके सन्देहको दूर करने वाले थे। सो उन्होंने जब चण्डकर्माका यह प्रश्न सुना, तो वे उससे स्पष्ट शब्दोंमे कहने लगे—भोले मानव, तुम्हें इस सम्बन्धमें जरा भी सन्देह नही करना चाहिए। तुम विश्वास रक्खो, शरीर एक अलग वस्तु है और जीव एक अलग वस्तु है।

परन्तु चण्डकर्मा न माना। वह मुनिराजसे कहने लगा—योगिराज न तो जीव अलग है और न शरीर। किन्तु अनेक योनिरूपी वृक्षोंसे मण्डित संसाररूपी वनमें घूमने वाले प्राणियोंकी जो सजीव वस्तु है, वह शरीर ही है। वह इस सम्बन्धके एक उदाहरणको उपस्थित करते हुए कहने लगा—मुनिराज, मैंने एक चोरको एक कोठरीमें बन्द कर दिया और उस कोठरीको सब ओरसे लाखसे मढ दिया। फिर मैंने उसमें एक छेद करदिया। अब वह कोठरीमें पडा हुआ चोर मरगया। पर, मुनिराज, मैंने कभी भी इस छिद्रमेंसे उसके जीवको

निकलते हुए नही देखा। इस लिए योगिराज, इस घटनासे मैं तो यही सत्य समझता हूँ कि वही जीव है और वही शरीर है, दोनों भिन्न भिन्न नही है।

योगिराजने जब चण्डकर्माकी यह बात सुनी तो वे इससे कहने लगे—भद्र, तुम उसी कोठरीमे एक आदमीको शङ्ख देकर बिठलादो और उससे कहो कि वह खूब ही प्रसन्नताके साथ शङ्खको फूंके। जब वह शङ्ख बजाने लगे तो तुम उसकी ध्वनि जरूर सुनोगे, परन्तु उसे उस छिद्रसे निकलती हुई तुम नही देख सकोगे। अन्य कोई मनुष्य भी नही देख सकेगा। भद्र, सो जिस प्रकार शङ्खका शब्द निकलता हुआ भी लोगोको दिखलाई नही देता है, उसी प्रकार शरीरसे जीवके निकलनेपर भी वह दिखलाई नही देता है।

चण्डकर्माने मुनिराजका यह दृष्टान्त सुना और वह उनसे कहने लगा—योगिराज, मै जो उदाहरण आपको सुना रहा हूँ उससे आपकी बातकी सत्यताका स्पष्टीकरण हुआ जाता है। मुनिराज, मैने एक सजीव चोरको तराजूपर तोला फिर उसे जीवरहित करदिया। परन्तु दोनो ही स्थितियोमे उसकी तोल एकसा ही रही। इस लिए मुनिराज, मेरे इस कथनमें आप विश्वास कीजिए कि जैसा मै हूँ, वैसा ही मुर्देका जीव है और वही शरीर है।

मुनिराजने चण्डकर्माके इस दृष्टान्तको बड़े ही ध्यानसे सुना और वे उससे कहने लगे—भद्र! तुम मेरे मनोहारी उदाहरणको सुनो। एक गोपालकने धोंकनीको हवासे भरा और इसके पश्चात् उसे पासग रहित तराजूसे तोला। फिर उसने इसकी वायु निकाल दी और उसी तराजूसे तोला, तो वह जितनी वायुसे भरी हुई अवस्थामें थी उतनी ही वायुशून्य अवस्थामे भी बनी रही। सो हे भद्र, जिस प्रकार धोंकनीको हवासे भर देनेपर भी वह उतनी ही रहती है, उसी प्रकार

अजीव और सजीव आदमी भी उतना ही रहता है—जीवके रहनेसे वजनमे वृद्धि नही होती और उसके निकल जानेसे उसमे कमी नही होती ।

मुनिराज कहने लगे—भद्र, इस दृष्टान्तसे तुम मेरी बात-पर विश्वास करो कि जीव भिन्न वस्तु है और शरीर विभिन्न वस्तु है—दोनो एक नही है ।

योगिराजकी यह बात सुन कर चण्डकर्मा फिर कहने लगा—महाराज, मेरी एक बात और सुन लीजिए। मैने एक चोर-के शरीरको काट डाला और उसके शरीरके जहाँ तक बन सके छोटे छोटे अनेक टुकड़े कर दिये, परन्तु फिर भी उस शरीरके बाहर और भीतर कही भी जीव नामकी वस्तु दिखलाई नही दी । सो मुनिराज, जिस प्रकार एक शरीर-के खण्ड-खण्ड करने पर भी जीव दृष्टिगोचर नही हुआ, उससे यही निश्चित होता है कि उसीका नाम जीव है और उसीका नाम शरीर है ।

योगिराजने चण्डकर्माका यह उदाहरण सुना और वे कहने लगे—भद्र ! अब तुम हमारा भी एक बहुत स्पष्ट उदा-हरण सुन लो । एक आदमी एक अरणी-बासको काटता है परन्तु उसके भीतर रहनेवाली आग उसे नही दिखलाई देती । तत्पश्चात् वह आदमी उस बासके छोटे-छोटे टुकडे भी कर डालता है, फिर भी खूब अच्छी तरह उसे देखनेपर भी उसमे अग्नि दिखलाई नही देती है । मुनिराज कहने लगे—सो हे भद्र, जिसप्रकार अरणी-बासके दण्डमें अग्निके विद्यमान रहने भी और मनुष्यके आँख फाड फाडकर देखनेसे भी दिखलाई नही देती ह । उसी प्रकार शरीरमे विद्यमान भी यह जीव उसके खण्ड खण्ड कर देनेपर भी इन्द्रिय प्रत्यक्ष न होनेसे मनुष्यको दिखलाई नही देता हैं । हे आर्य, इस दृष्टान्तसे तुम मेरी इस बातको सत्य समझो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है ।

मुनिराजकी बात सुनकर चण्डकर्मा कहने लगा–देव, अब तो मै निरुत्तर हो गया। आप बतलाइए कि अब मै क्या करूँ? भगवन्! अब आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइए।

चण्डकर्माकी बात सुनकर मुनिराज उसके प्रति दयार्द्र होगये और कहने लगे–महाभाग, अब तुम धर्म करो। क्योंकि धर्म ही समस्त प्राणियोका बन्धु है।

तब चण्डकर्माने मुनिराजकी सेवामें निवेदन किया कि भगवन्, आप मुझे स्पष्ट रूपसे धर्म और अधर्मके फलको समझाइए। मुनिराज कहने लगे–

सौभाग्य, धन-सम्पत्ति, दीर्घायु, निर्मल यश, वशीकरण और आरोग्य यह सब मनुष्योको धर्मसे प्राप्त होता है। और दरिद्रता, कुरूपता, दुर्भाग्य, बन्धुहीनता, अकालमृत्यु और मूकता यह सब मनुष्योको अधर्मसे प्राप्त होता है।

चण्डकर्माने जब मुनिराजके निकट इसप्रकार संक्षेपमे धर्म और अधर्मका फल सुना तो मुनिभक्तिके कारण उसके शरीरमे रोमाञ्च हो जाये और वह उनसे पुन. कहने लगा–भगवन्, आप ससार समुद्रसे पार करने वाले है, सो मुझ गृहस्थके द्वारा जो धर्म किया जा सके, आप मुझे सक्षेपमें उसका उपदेश कीजिये।

चण्डकर्माकी विनय सुनकर ज्ञानी योगिराजके मनमे करुणा उमड आयी। वे उससे कहने लगे–वत्स, यदि तुम्हारी धर्म पालन करनेकी इच्छा है तो सम्यक्त्व पूर्वक पाँच अणुव्रतोंका पालन करो।

चण्डकर्मा मुनिराजकी बात सुनकर फिर निवेदन करने लगा–तो महाराज, आप मुझे स्वर्ग और मोक्षके हेतुभूत तथा सुख-सम्पत्ति प्राप्त करानेवाले अणुव्रतोका स्वरूप सक्षेपमें समझाइये।

मुनिराजने पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत,

मधुत्याग, पाँच उदुम्बरत्याग, रात्रिभोजनत्याग, पञ्चनमस्कार मन्त्र, सम्यक्त्व और गुरुपूजा आदि सम्पूर्ण गृहस्थ धर्मका संक्षेपमें उपदेश दिया।

योगिराजका उपदेश सुनकर चण्डकर्मा कहने लगा—स्वामिन्, मैने सम्यक्त्व पूर्वक अन्य सब व्रत तो ले लिए; परन्तु अहिंसा व्रत नही ले सकता; क्योकि जीव घात करना हमारा कुल धर्म है। यह सुन कर मुनि राज बोले—चण्डकर्मा, तुम सच कहते हो कि जीवघात करना तुम्हारा कुल-धर्म है। परन्तु तुम्हे मालूम नही है कि अनन्त पापार्जनका कारण यह तुम्हारा जीवघात-जन्य कुलधर्म ही है। सो जब तक तुम इस कुलधर्म को नही छोडोगे, तब तक तुम भी अनन्त दुःख देनेवाली उस मृत्यु परम्पराको उसी प्रकार प्राप्त करते रहोगे जिस प्रकार इस कुक्कुट युगलने अपना जीवघात स्वरूप कुलधर्म नही छोडा और अनन्त दुःख देनेवाली मृत्यु-परम्पराको प्राप्त किया।

मुनिराजकी यह बात सुन कर चण्डकर्माका मन आश्चर्य-से भरगया और वह कुतूहलके साथ उनसे पूछने लगा—योगिराज, बतलाइए तो इन मुर्गोंने पूर्व भवमें कुलधर्मको न छोडनेके कारण किस प्रकारकी मृत्यु-परम्परा प्राप्त की ?

चण्डकर्माका यह प्रश्न सुनकर मुनिराज कहने लगे—चण्डकर्मा, तुम एकचित्तसे सुनो, मै इनके भवान्तर बतलाता हूँ। भद्र, यह मुर्गा यशोमति कुमार राजाका पूर्वजन्मका पिता यशोधर नरेश है। और यह मुर्गी यशोधर राजाकी पूर्वजन्मकी माता चन्द्रमती है। इन्होने अपना कुलधर्म नही छोडा और बडी भक्तिके साथ चण्डिकादेवीकी पूजाके लिए आटेका मुर्गा बनाकर उसका वध किया। उस पापका यह परिणाम है कि वे इस कुक्कुट युगलके रूपमें उत्पन्न हुए, और इसी कारण ये शान्त चित्तसे इस समय धर्मश्रवण

कर रहे हैं। वे दोनों यशोधर और चन्द्रमती मरकर एक भवमे मोर और कुत्ता हुए । दूसरे भवमे साँप और मगर हुए । तीसरे भवमे मत्स्य और मगर हुए । चौथे भवमें बकरी और बकरा हुए । पाँचवे भवमे भौंरा और भवरी हुए । और छठवे भवमे यह कुक्कुट पक्षी हुए ।"

योगिराजकी यह बात सुनकर चण्डकर्माके मनमे अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न हुआ और उसका सम्पूर्ण शरीर भयसे काँपने लगा। वह मुनिराजसे बोला—भगवन्, मैने इस समय मन, बचन और कायसे अपना जीवघातमय कुल-धर्म छोड़ दिया और अब मै सर्वोत्तम जैनधर्म स्वीकार करता हूँ । इसके सिवाय मैने अणुव्रत और सम्यक्त्व आदिक व्रत भी भक्ति पूवक स्वीकार कर लिये है । अब मै सच्चा श्रावक हूँ और मेरे देवता एकमात्र जिनेन्द्र भगवान् है ।

कुक्कुट युगलने भी मुनिराजके मुख. कमलसे निकले हुए सर्वोत्तम धर्मको सुनकर और अनेक दु खोसे परिपूर्ण अपने भवान्तर सुनकर भक्ति पूर्वक जैनधर्मको स्वीकार किया । तत्पश्चात् इन्हें इतना सतोष हुआ कि उसे व्यक्त करनेके लिए इन्होने बड़ी ही मधुर बाग दी ।

ठीक इसी समय यशोमतिकुमार राजा अपनी प्रियतमा कुसुमावलीके साथ पट-मण्डपमे बैठा हुआ था । सो उसने ज्योही कुक्कुटोकी यह बाग सुनी, वह कुसुमावलीसे कहने लगा—प्रिये, तुम मेरे धनुर्वेदके कौशलको देखो, मै एक वाणके आघातसे ही इस कुक्कुट युगलको मार गिराता हूँ।

इतना कहकर उसने तूणीरसे एक वाण निकाला और उसे धनुषकी डोरीपर चढा दिया । यशोमतिने वाणको कान तक खीचा और इसके पश्चात् कुक्कुट युगलके ऊपर छोड दिया । यशोमतिके इस एक ही वाणने कुक्कुट युगलकी जीवन-लीला समाप्त करदी ।

जिनधर्म परायण इस कुक्कुट-युगलने समताके साथ अपने प्राण छोडे और इसके कारण वह कुसुमावलीक गर्भ-में आ गया। कुसुमावलीके गर्भसे ये दोनो कुमार और कुमारी-के रूपमें जन्मे और दोनो ही कला, गुण और सौन्दर्यमे खब ही वृद्धिगत हुए।

एक दिनकी बात है। सुदत्त नामके मुनिराज एक बडे भारी मुनिसघक साथ विहार करते हुए उज्जयिनी नगरीमे आये। इसी बीच राजा यशोमति शिकार खेलनेकी इच्छासे अपने परिवारके साथ उज्जयिनी पुरीसे निकला। ज्योही यशोमतिने सुदत्त नामके आचार्यको एक वृक्षके नीचे विराज-मान देखा, उसने अपने कुत्तोका झुण्ड मुनिराजके ऊपर एक साथ छोड दिया। इस झुण्डमे पाँच सौ कुत्ते थे।

ज्योही ये कुत्ते दौडकर मुनिराजके पास आये, आते ही उन्होंने उनकी तीन प्रदक्षिणा की और बडे ही आनन्दके साथ उनके सामने बैठ गये। यशोमतिने जब इन कुत्तोको मुनि-राजके निकट शान्तभावसे बैठे हुए पाया तो उसकी आँखे क्रोधसे लाल होगयी और अब वह स्वय ही तलवार लेकर मुनिराजको मारनेके लिए दौडा। परन्तु सम्यग्दृष्टि कल्याण-मित्र नामके साहुकारने इसे समझाया और वह यशोमतिको मुनिराजके पास ले आया।

आचार्य महाराजको देखते ही यशोमतिका मन प्रसन्न हो उठा। वह सोचने लगा—मुझ पापात्माने क्योकर मुनि-राजका बध करना सोचा ? इस पापका अब केवल एक ही प्रायश्चित्त है कि मै अब अपनी आत्म-विशुद्धिके लिये अपना सिर काटकर मुनिराजके चरणोमे चढ़ादूं।

इस समय यशोमतिकी आत्मा पवित्र हो चुकी थी। सो वह इस प्रकार विचार कर ज्योही अपना सिर काटनेके

.लए उद्यत हुआ, मुनिराजने इसे तुरन्त रोका। वे कहने लगे-राजन्, आपको यह अशोभनीय कार्य नही करना चाहिए।

जब यशोमतिको मालूम हुआ कि मुनिराजने उसका मानसिक अभिप्राय समझ लिया है तो वह बडा ही लज्जित हुआ और मुनिराजको नमस्कार करने लगा। यशोमतिको इस समय बडा ही वैराग्य हुआ और वह मुनिराजसे प्रार्थना करने लगा—मुनिनाथ, आप मुझ अभागेके दुश्चरितको क्षमा कर दीजिए।

यशोमति महाराजकी बात सुनकर मुनिराज कहने लगे—वत्स, तुम बडे ही भोले हो। उठो,उठो। हम जैसे मुमुक्षुओको तो ससारकी समस्त जनताकी बात सहनी चाहिए ही, परन्तु आप-जैसे राजाओको तो विशेष रीतिसे सहनशील होना चाहिए।

जब राजाने मुनिराजकी यह बात सुनी तो वह पुन. मुनिनाथसे निवेदन करने लगा—भगवन्, आप मुझे स्पष्ट बतलाइए कि मैंने अभी अभी क्या विचार किया था ?

मुनिराज अवधिज्ञानी थे। वे कहने लगे—राजन्, एक चित्तसे सुनो। मैं तुम्हारी मन चिन्तित बात बतलाता हूँ। तुमने यही तो सोचा था कि ससारमें मुनिवध करनेका यही एक प्रायश्चित्त है कि अपना सिर काटकर मुनिराजके चरणोमे अर्पण करूँ। परन्तु राजन्, तुमने यह बहुत ही बुरा विचारा, क्योकि विद्वज्जन आत्म-हत्याको बडा पाप बतलाते है।

यशोमतिको इस समय शोक और सतोष, दोनो ही हो रहे थे। इतनेमे विशुद्धात्मा कल्याणमित्र यशोमतिसे कहने लगा—नरेन्द्र, मुनिराजने तुम्हारी एक चिन्ता जान ली सो तुम इतने मात्रसे ही बडे विस्मित हो रहे हो। मित्र! यह महान् योगी हैं, भूत, भविष्यत् और वर्तमान सब कुछ जानते है।

इसलिए यदि तुम्हे कुछ संशय हो तो इन तपस्वी महाराजसे पूछ सकते हो ।

जब यशोमतिने कल्याणमित्रकी यह बात सुनी तो उसने योगिराजको पुनः नमस्कार किया और वह उनसे पूछने लगा—भगवन्! आप मुझे यह बतलाइए कि मेरे पितामह कीर्त्योघ, पितामही चन्द्रमती, और पिता यशोधर इस समय किस गतिमे वर्तमान है और किस प्रकारके सुख-दुखका अनुभव कर रहे है ? इतना कहकर राजाका मन मुनिराजके प्रश्नोत्तर सुननेके लिए उत्सुक हो उठा ।

तत्पश्चात् अवधिज्ञानरूपी नेत्रधारी मुनिराज यशोमतिसे इस प्रकार कहने लगे—"राजन् आपके पितामह कीर्त्योघने अपने मस्तकमे एक सफेद बाल देखकर दिगम्बरी दीक्षा ले ली थी । उन्होने पाँच रात तक तप करके समाधि पूर्वक मृत्यु की और इस समय वह ब्रह्मोत्तर स्वर्गमे दिव्य सुखका अनुभव कर रहे है । तथा तुम्हारी माता अमृतमती महादेवीने विष देकर अपने पतिको मार डाला था । सो इस कृत्यके कारण वह छटवें नरकमे पहुँची और वहाँकी भयकर तथा असह्य वेदनाका अनुभव करती हुई और अपने जीवनकी निन्दा करती हुई वह बडे ही सक्लेशके साथ अपने दिन काट रही है । और राजन्, जो यशोधर नरेश तुम्हारे पिता थे और चन्द्रमती तुम्हारी पितामही थी, सो इन्होने अपने उस जन्ममें चूनका मुर्गा बनाकर चण्डिका देवीके सामने वलिके लिए उसे मारकर देवीको अर्पण किया था । इस लिए राजन्, इस महान् पापानुबन्धके कारण इन्होने अनेक तिर्यञ्च योनियोमे परस्परमें एक दूसरेको मारा और इस पर्यायमे वे इस कुक्कुट-युगलके रूपमे उत्पन्न हुए थे । तथा पाँच अणुव्रत लेकर पञ्च-नमस्कार मन्त्रका ध्यान ही कर रहे थे कि इतनेमे आपने उन्हे मार डाला और मरकर वे तुरन्त ही कुसुमावलीके गर्भमें आ

गये। राजन्! इस समय ये दोनों आपके पुत्र और पुत्रीके रूपमें हैं। पुत्रका नाम अभयरुचि है और पुत्रीका नाम अभयमती है।

यशोमति इस भव-परम्पराको सुनकर बहुत ही विस्मित हुआ और उसके मनमे तीव्र वैराग्यभाव जागृत हुआ। उसने मुनिराज-के निकट सम्पूर्ण यथार्थ वृत्तान्तको सुनकर अपने अन्तःपुर-परिवारके साथ दीक्षा ले ली।

इधर अभयरुचि और अभयमतीने जब अपने भवान्तर सुने तो इन्हे भी जातिस्मरण हो आया। तथा इनके मनमे भी वैराग्य-भावना आन्दोलित होने लगी। ये दोनों भी दीक्षा लेनेके विचारसे मुनिराज सुदत्तके निकट पहुँचे और बड़े ही शान्त भाव तथा भक्तिके साथ मुनिराजकी तीन प्रदक्षिणाएँ दी और उन्हे नमस्कार किया। इसके वाद वे सुदत्त आचार्यकी सेवामे विनय करने लगे—भगवन! हमे दिगम्बरी दीक्षा दीजिए।

जब आचार्य सुदत्तने इन दोनोकी बात सुनी और दोनों-के कुसुम-सुकुमार बाल्य जीवनको देखा तो इनका धैर्य देखकर मुनिराज भी मनमे बड़े विस्मित हुए और इन लोगोसे कहने लगे—कुमारो, तुम लोगोके शरीर अभी एकदम सुकुमार है, तुमने अब तक किसी प्रकारके बाधा विघ्नोका सामना नही किया है और तुम्हारे चित्त भी बहुत ही भोले है। सो अभी तुम लोगोमे सम्पूर्ण जैन व्रत पालन करनेकी क्षमता नही है। इसलिये तुम लोगोको क्षुल्लक धर्मका पालन करना ही उचित है। इसके पश्चात् तुम्हे दिगम्बरी दीक्षा दे देंगे।"

जिनभक्ति परायण अभयरुचि और अभयमतीने जब मुनिराजकी यह दिव्यवाणी सुनी तो अभयरुचिने बड़ी ही भक्तिके साथ मुनिराजके निकट क्षुल्लक धर्मको स्वीकार कर लिया और अभयमतीने ग्यारह अङ्गकी पाठिका क्षान्तिका

आर्यिकाके निकट बडी ही श्रद्धा और भक्तिके साथ क्षुल्लिकाके व्रतको स्वीकार कर लिया।

यौधेय देशमे राजपुर नामका एक सुन्दर नगर है। इस नगरमें मारिदत्त नामका राजा रहता था। मारिदत्त देवीका बडा ही भक्त था। इसी नगरकी दक्षिण दिशामे चण्डमारी नामकी एक कुलदेवी रहती थी। मारिदत्त आदि जन अपने हाथसे जीवोका वध किया करते और बडी ही भक्तिके साथ इस बलिसे कुलदेवीकी पूजा किया करते थे। ये लोग इस प्रकारकी भक्तिके साथ इस कुलदेवीकी पूजा नही करते तो चण्डमारी इन सबको एक साथ मार डालती। सो एक दिनकी बात है कि मारिदत्त राजा अनेक जनपदोकी जनताको और अपने समस्त अन्तःपुर परिवारको साथ लेकर देवीके मन्दिर-में आया।

ठीक ऐसे ही समय सुदत्त नामके आचार्य भी अपने मुनि-सघके साथ विहार करते हुए इसी राजपुरके निकटवर्ती श्मशान-मे आ विराजे

उस समय चण्डमारीकी पूजा करनेके लिए और उसके पादमूलमें बलि चढानेके लिए सब लोग मोर, मुर्गी आदि अनेक प्रकारके असख्य प्राणी ले आये। इतनेमें राजाके महत्तरोने कहा कि एक समस्त-प्रशस्त लक्षणोसे सम्पन्न मनुष्य युगल और मँगावें।

जब राजाने इन महत्तरोकी बात सुनी तो उसने शीघ्र ही अपने नौकरोको आज्ञा दी कि वे तुरन्त ही एक सुन्दर मनुष्य-युगल ले आवें। नौकरोने राजाकी आज्ञाको देवआज्ञाके समान-स्वीकार किया और वे तुरन्त ही इस प्रकारके नर-युगलको लानेके लिए चलदिये।

इसी समय पूर्वोक्त क्षुल्लक-युगलने मुनिराजको भक्ति-पूर्वक नमस्कार किया और आहार लेनेकी इच्छासे वह नगरकी

ओर चलदिया। यह क्षुल्लक-युगल उन आदमियोंके रास्ते-से ही जारहा था जो बलिके लिए नर-युगलकी खोजमे निकले हुए थे। सो ज्यों ही इन आदमियोंने मन्दगतिसे जाते हुए इस क्षुल्लकयुगलको देखा तो वे परस्परमे कहने लगे—वस्तुतः देवीकी बलिके लिए यह युगल राजाको भी खूब ही पसन्द आवेगा।

क्षुल्लक-युगलने इन आदमियोंकी यह भयकर बात सुन ली और वह निर्भय होकर उसी स्थानपर ठहर गया। उन मनुष्यो-ने भी इतना कहकर इस रूपवान् क्षुल्लक-युगलको पकड लिया और वे उसे महाराज मारिदत्तके निकट ले गये।

जब क्षुल्लक-युगल राजा मारिदत्ताके निकट आया तो उसने देवताके चरणोके निकट हाथमे भयंकर तलवार लिये हुए राजाको देखा। सो ज्यों ही इस क्षुल्लक-युगलने दूरसे ही इस भीममूर्ति मारिदत्तको देखा, इन दोनोने एकसाथ राजासे 'जय-वान रहो' कहा और कहा—राजन्, तुम बहुत ही सम्पन्न हो, सुवर्णके समान सुन्दर हो, निर्मल हो, और कुन्द वृक्षके समान तुम्हारा यश निर्मल है। राजन्, तुम जयवन्त रहो।

ज्योही राजाने मेघकी गर्जनाके समान गंभीर क्षुल्लक-युगलकी यह 'जय ध्वनि' सुनी और मनुष्य तथा स्त्रीके समस्त लक्षणों-से सम्पन्न इस नरयुगलको देखा, वह उनसे पूछने लगा—भद्र, इस अतिशय रूपसे आपने किस कुलको अलकृत किया है और अत्यन्त-सुन्दर होनेपर भी किस कारणसे आप लोगोने अभी-से यह दुर्धर तपस्या धारण की है?

जब क्षुल्लक-युगलने मारिदत्ताकी यह स्नेह-पूर्ण बात सुनी तो उसने बालक, वृद्ध और युवाजनोसे भरी हुई सभामे अपने तपके कारण और राजा यशोधर आदिके समस्त वृत्तान्तको विस्तारके साथ सुना दिया, जिससे सभी उपस्थित जनता बड़े ही आश्चर्यमे पड़ गयी। इतना ही नही, इस घटना चक्रके

सुनानेका यह प्रभाव पडा कि राजा और सम्पूर्ण उपस्थित जनताने देवीके सामने आयोजित जीव वधको छोड दिया और सब शान्त प्रकृतिस्थ होगये ।

जब कुलदेवीने भी इस सम्पूर्ण कथाको सुना तो उसने भी अपना सम्पूर्ण भयकर रूप छोड दिया और सौम्यरूप धारण कर लिया । उसने इस क्षुल्लक युगलकी भाव पूर्वक तीन प्रदक्षिणाएँ की और उसे अर्घ्य दिया । तत्पश्चात् वह हाथोमें कलश लेकर क्षुल्लक-युगलके चरणोमे विनत होगयी । इस क्षुल्लक युगलके प्रति उसकी भक्ति और स्नेह एकदम उमड़ पडा और वह सम्पूर्ण जनताके सामने क्षुल्लक महाराजसे निवेदन करने लगी–हे क्षुल्लक महाराज, आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइए और दया कीजिए । अब आप मुझे शीघ्र ही ससार समुद्रको पार करने वाली जैन दीक्षा दे दीजिए ।

जब क्षुल्लक महाराजने देवीकी यह बात सुनी तथा उसका हृदय भक्तिसे एकदम गद्गद पाया और उसे हाथ जोडे हुए देखा तो वे कहने लगे–भद्रे, उठो, उठो । देखो, तिर्यञ्चो, नारकियो तथा देवोके लिए इस दीक्षाका विधान नही है । मनुष्य ही इस दीक्षाको ले सकते है ।

क्षुल्लक महाराजकी यह बात सुनकर देवी विनयसे एकदम झुक गयी और कहने लगी–स्वामिन् ! यदि मुझ अभागिनीको दीक्षा नही मिल सकती है तो आप मेरे अनुरूप धर्मका उपदेश अवश्य ही दीजिए ।

क्षुल्लक महाराज सामने बैठी हुई इस देवीसे कहने लगे–देवि, देवताओका दो प्रकारका ही धर्म है–सम्यक्त्वका लाभ और जिनपूजा । परन्तु नारकियोके लिए जिनपूजा भी दुर्लभ है । उन्हें केवल त्रैलोक्यचूडामणि सम्यक्त्वका ही लाभ हो सकता है । परन्तु तिर्यंचगतिके जीव सम्यक्त्वके साथ कृत, कारित और अनुमोदना पूर्वक सम्पूर्ण मानव धर्मका पालन कर

सकते है। चण्डमारी देवीने बडी ही भक्तिके साथ क्षुल्लक महाराजके इस प्रवचनको सुना और उसने सम्यक्त्व तथा जिन-पूजाको स्वीकार कर लिया।

इस प्रकार जब चण्डमारी देवीने सम्यक्त्व तथा जैनधर्म-को स्वीकार कर लिया तो वह समस्त जनताके सामने मारिदत्त राजासे कहने लगी—

राजन्, आज दिनसे लेकर कोई भी मनुष्य मेरे लिए प्राणि-हिंसा न करे। सब ही जन शान्तिके साथ रहे। यदि इस प्रकार से समझाये जाने तथा रोके जानेपर भी कभी किसीने प्राणि-हिंसा की तो राजन्, मै उसके सम्पूर्ण कुटुम्बको मार डालूंगी। देवीने मारिदत्त राजा तथा जनतासे इतना कहा और क्षुल्लक युगलको प्रणाम करके अपनें गन्तव्य स्थानकी ओर चल दी।

जब देवताओंने इस घटनाको सुना तो उन्होने आकाशमे स्थित होकर क्षुल्लक महाराजके ऊपर सहर्ष गम्भीर दुन्दुभियां बजायी; प्रसन्न हृदयके साथ उन्हें धन्यवाद दिये, जय जय शब्द किये और संतुष्ट होकर उनके ऊपर पुष्पमालाए छोडी।

इधर जब मारिदत्त राजाने कुक्कुटके वधसे उत्पन्न हुई अत्यन्त भयकर दुःख परम्पराको सुना और देवताओके इस आश्चर्यको देखा तो वह क्षुल्लक महाराजसे विनय करने लगा—स्वामिन्, आप मुझे भवनाशिनी जिनदीक्षा दीजिए, जिससे मै भी आपके प्रसादसे अपना आत्म-हित साधन कर सकूं।

यह बात सुनकर वह मारिदत्तासे कहने लगे—राजन्, आपको मै दीक्षा नही दे सकता। हमारे निर्मलज्ञानी गुरु है वे ही आपको जैन दीक्षा दे सकते हैं।

मारिदत्त राजाने जब क्षुल्लक महाराजकी यह बात सुनी तो उसका मन कौतुकसे पूर्ण हो गया और वह विशुद्ध हृदय-से इस प्रकार विचार करने लगा—देखो, नगरीकी समस्त जनता और सामन्त गण मेरे चरणोंके निकट पड़े रहते है और मै बल-

वान होकर भी देवताके चरणोंमें पडा हुआ था। देवता भी क्षुल्लक महाराजके चरण युगलमें नत हो गये और अब इस सातिशय क्षुल्लक युगलका भी अन्य कोई महान् गुरु है। राजा सोचने लगा–धन्य है मुनिजनोंके इस आश्चर्यकारी तपके माहात्म्यको, जो तपस्वी जन देवता तथा असुरोके द्वारा भी पूजे जाते हैं।

राजा मारिदत्तका चित्त जिनधर्मके उपदेशसे पवित्र हो चुका था और बुद्धि एकदम विशुद्ध। वह क्षुल्लक महाराजके निकट गम्भीर भावसे बैठ गया।

इतनेमे ही सुदत्त आचार्यने अपने दिव्यज्ञानके बलसे वीर क्षुल्लकोंके ऊपर आये हुए महान् उपसर्गको बुद्धिमान मारिदत्त राजाके धर्म ग्रहणको और दीक्षा लेनेके प्रयासको जाना और वह तत्काल ही क्षुल्लक युगलके निकट आ पहुंचे।

मारिदत्त राजाने अपनी स्त्री, पुत्र, सामन्त, भाई, बन्धु-बान्धव आदिके साथ आचार्य चरणोमे नत होकर बहुत ही विनयके साथ उनकी पूजा की और उनसे जिनदीक्षाके लिए प्रार्थना करने लगा। उसने अपने विनत पुत्रको राज्यपट्ट बाधा और वह पुरोहित, महामात्य, सामन्त और अन्त पुर परिवारके साथ सुदत्त महाराजके निकट दीक्षित हो गया।

क्षुल्लक युगलने भी एकदम विरक्त होकर क्षुल्लक धर्म छोड दिया और अपने गुरुमहाराजके पास जिन दीक्षा ले ली। तदनन्तर इस युगलने अपनी आयुके अन्तिम समयमें चार प्रकारके आहारको छोडकर प्रायोपगमन सन्यास लिया, और तीन पक्षके भीतर समाधि पूर्वक शरीरको छोड स्वयप्रभ विमानमें देव हो गये।

इस आश्चर्यको देखकर कुछ लोग मुनि हो गये, कुछ श्रावक बन गये और कुछ तटस्थ रह गये। सुदत्त मुनिराजने

विधिवत् चार प्रकारकी आराधन की और अन्तमें स्वर्गमें जा पहुचे ।

मारिदत्त आदिने भी चार प्रकारकी आराधनाओंका आराधन किया, सम्यग्दर्शनसे पवित्र हुए और अपने अपने भावोके अनुसार यथा योग्य स्वर्गमे चले गये ।

इस प्रकार संसारमे जो प्राणी असावधान होकर एक जीव का भी वध करता है, वह अनेक भवतक ससार परिभ्रमण करता रहता है ।

इस प्रकार चण्डिका देवीके लिए मारे गये आटेके मुर्गेके
कारण सात भवोमें परिभ्रमण करने वाले यशोधर
और चन्द्रमतीका यह आख्यान समाप्त हुआ ।

—०—०—

'जैनधर्म' पर सम्मतियाँ

मैंने पुस्तकको मनोयोग पूर्वक देखा। मुझे कहते हुए प्रसन्नता होती है कि लेखक ने एक ही स्थानपर जैनधर्मके सम्बन्धमें बहुत ही उपयोगी सामग्री एक साथ दी है। लेखन शैली भी उत्तम है। जैनधर्मके मुख्य २ सिद्धान्तोंके सुन्दर परिचयके लिये प्रस्तुत पुस्तक बहुत उपयोगी है।

—वासुदेवशरण अग्रवाल

अधिकारी लेखकने जैनधर्मकी सेवा तो की ही है हम लोगोंका भी बड़ा उपकार किया है। इस पुस्तकसे थोड़ेमें जैनधर्मका परिचय पाकर पाठक कृतकृत्य होंगे।

—मैथिलीशरण गुप्त

पुस्तक मुझे पसन्द आई। अंग्रेजी भाषामें भी ऐसी जैनधर्म सम्बन्धी पुस्तकें कम हैं।

—डा० बी० एल० आत्रेय